हरिदास संस्कृत सीरीज 383

काश्यपमुनिनाविरचित

काश्यपीयकृषिपद्धति

(काश्यपीयकृषिसूक्तिः)

(मूलपाठ-सोदाहरण-मोहनबोधिनी-हिन्दीटीका समुपेता)

सम्पादक एवं टीकाकार
डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'



चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

Haridas Sanskrit Series 383

Sage Kashyapa's

Kashyapiyakrishipaddhati

(KASHYAPIYAKRISHISUKTI)

(An ancient Treatise on Agriculture)

With original text, translation and commentaries.

Editor & Translator

Dr. Shrikrishna 'Jugnu'



CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

VARANASI

Publisher : Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi
Printer : Chowkhamba Press, Varanasi
Edition : First, 2013

ISBN : 978-81-7080-400-0

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
K. 37/99, Gopal Mandir Lane
Near Golghar (Maidagin)
Post Box No. 1008, Varanasi-221001 (India)
Phone : Office : 0542-2333458,
Res. : 0542-2334032 & 0542-2335020
Fax : 0542-2333458
E-mail : cssoffice@sify.com
www.chowkhambasanskritseries.com

Also can be had from :
CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY
K. 37/118, Gopal Mandir Lane
Near Golghar (Maidagin), Post Box No. 1118
Varanasi-221001 (India)
Phone : 0542-2335020

परम श्रद्धेय पिताश्री व सद्गुरु नित्यलीलालीन

पण्डितप्रवर श्रीमद् मोहनलालजी चौहान

की पुण्यस्मृति में....

– श्रीकृष्ण

उपोद्घात

कृषि मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति की दिशा में मानव की सबसे बड़ी खोज है। यह आत्मनिर्भर मानवीय समाज की सूचक है। इसने मानव को सभ्यता का पहला और महत्वपूर्ण पाठ पढ़ाया है। इस कार्य को न तो अकारण कहा गया है न ही अनायास बल्कि नितान्त करणीय और श्रमसाध्य बताया गया है। इसे सभी वर्णों के लिए आवश्यक और अनुसरणीय स्वीकारा गया है। इस कार्य से व्यक्ति व्यर्थ के प्रपंच से दूर होकर अपने पाँवों पर खड़ा होने का सामर्थ्य रखता है। विश्व के सन्दर्भ में कृषि का आरम्भ 9000 ईसापूर्व ही हो गया था किन्तु मानव समुदाय में पशुपालन की प्रक्रिया 6000 और 4000 ईसापूर्व के बीच ही आरम्भ हो पाई थी।

वैदिक काल से ही ऋषियों ने कृषि की सफलता की कामना की और एतद्विषयक सूक्तों की रचना की। ऋषियों ने चाहा कि हल से जोती गई भूमि को इन्द्रदेव उत्तम वर्षा से सींचे और सूर्य अपनी रश्मियों से उसकी रक्षा करें—

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नयौ॥ 1॥

इस वैदिक उक्ति का भाव यह है कि आस्थावान बुद्धिमान लोग विशेष सुखों को प्राप्त करने के लिए भूमि को हल से जोतते हैं और कृषिकार्य करते हैं। (कृषिकार्य न हो तो) वे बैलों के कन्धों पर रखे जाने वाले जुओं को प्रायः उतारकर रखते हैं।

युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम्।
विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमा यवन्॥ 2॥

इस उक्ति में निर्देश है कि जुओं को फैलाकर हलों से जोड़ना चाहिए और फिर भूमि की जुताई करनी चाहिए। सम्यक् रूप से तैयार हो जाने पर उस भूमि में बीजों को बोना चाहिए। इससे अन्न की उपज होगी, खूब धान्य निपजेगा और पक जाने के बाद हमें फल या अन्न मिलेगा।

लाङ्गलं पवीरवत्सुशीमं सोमसत्सरु।
उदिद्वपतु गामविं प्रस्थावद् रथवाहनं पीबरीं च प्रफर्व्यम्॥ 3॥

इस उक्ति में कहा गया है कि कृषि कार्योपयोगी हल में लोहे का कठोर फाल लगा हो, उसको थामने के लिए लकड़ी की मूठ बनाई जानी चाहिए ताकि हल प्ररोह के दौरान सहूलियत रहे। यह हल ही है जो गाय-बैल, भेड़-बकरी, घोड़ा-घोड़ी, स्त्री-पुरुषादि के लिए उत्तम घास और धान्यादि उत्पादित करके पुष्ट करता है।

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाभि रक्षतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम्॥ 4॥

इस मन्त्र में यह कामना की गई है कि हल से जोती गई भूमि पर इन्द्र वर्षा द्वारा उचित सिंचाई करें और धान्य के पोषक सूर्य उसकी सुरक्षा करें। यह भूमि सालों साल उत्तम रस से युक्त धान्य उपजाकर हमें प्रदान करती रहे।

शुनं सुफाला वि तुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अनु यन्तु वाहान्।
शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै॥ 5॥

किसानों के कर्तव्य को लेकर इस उक्ति में कहा गया है कि वे हल के सुन्दर फाल से भूमि की खुदाई करें। किसान हमेशा बैलों के पीछे ही चलें। हवन-यज्ञादि से प्रसन्न हुए वायु और सूर्य इस कृषिकार्य से श्रेष्ठ फलवाली रसमयी ओषधियां प्रदान करें।

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम्।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय॥ 6॥

कृषिकर्ताओं के लिए यह निर्देश है कि बैल सुखपूर्वक रहें। सभी लोग आनन्दित रहें, उत्तम हल चलाकर आनन्दपूर्वक कृषिकर्म किया जाए। हल-बैलादि में रस्सियाँ जहाँ जिस युक्ति से बाँधी जानी हो, बाँधनी चाहिए और आवश्यकता हो तो चाबुक-पराणी को भी उठाना चाहिए।

शुनासीरेह स्म मे जुषेथाम्।
यद्दिवि चक्रथुः पयस्तेनेमामुप सिञ्चतम्॥ 7॥

यह निवेदनात्मक कथन किया गया है कि इस कार्य के निमित्त वायु और सूर्य मेरे हवन को स्वीकारें और जो जल गगनमण्डल में है, उसकी वृष्टि से इस भूमि को सिंचित कर (श्रम को सफल करें)।

सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव।
यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः॥ 8॥

यह सबके लिए ज्ञातव्य है कि भूमि भाग्य प्रदायक होती है। इसीलिए हम सब इसका आदर करते हैं। यह भूमि हमें उत्तमोत्तम धान्य प्रदान करती रहे।

घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।
सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना॥ 9॥
(अथर्ववेद 3, 17, 1-9)

कृषिकर्ताओं के लिए यह निर्देश भी है कि जब कृषियोग्य भूमि घी और शहद से योग्य उपाय करते हुए सिंचित होती है और जल-वायु आदि देवताओं की अनुकूलता उसको सुलभ होती है, तब वह हम सभी को श्रेष्ठ मधुर, रसयुक्त धान्य और फल प्रदान करती रहे।

हमें यह याद रखना चाहिए कि हल आधारित खेती का विकास अर्थव्यवस्था में सुधारात्मक कदम माना जा सकता है। इतिहासकारों ने इसका काल ईसापूर्व 1000-600 निर्धारित किया है। कृषि और उस पर आधारित यज्ञों के लिए भूमि-चयन का आँधार जंगलों का सफाया करने के साथ हुआ होगा क्योंकि शतपथब्राह्मण में आता है कि विदेघमाधव सरस्वती नदी के प्रवाह प्रदेश से चलकर जंगलों को जलाते हुए तब तक बढ़ता गया जब तक कि उत्तरी बिहार में सदानीरा या गण्डक नदी तक नहीं पहुँच गया। इस प्रकार इस पूरे ही प्रदेश पर कृषिकर्म और यज्ञ सत्रों सहित ब्राह्मणावास की बुनियाद रखी गई। इस काल तक हलों का निर्माण गूलर की लकड़ी से होता था, यह समय 600 ईसा पूर्व का माना गया है जबकि हल में छह, आठ और बारह से लेकर चौबीस बैल तक जोते जाते थे। इस समय तक कृषिकार्य मुख्य स्रोत के रूप में उभर चुका था। शतपथब्राह्मण में एक पूरा ही अंश (7, 2, 2) खेतों को जोतने के विधि-विधान पर लिखा गया है। वेदों में तन्त्र-मन्त्र के प्रयोग से भी खेती की रक्षा करने का निर्देश किया गया।

धान्योत्पादन को श्रम और दैवाश्रित भी माना गया है किन्तु फसल खराब हो जाए तो दूसरी फसल की उम्मीद नहीं छोड़ी जाए, इसके लिए चाणक्य ने किसानों द्वारा दूसरी फसल को अनिवार्य बनाने की व्यवस्था दी है। ऐसा राज्य के लिए आवश्यक माना जा सकता है। क्योंकि, अथर्ववेद से यह विदित होता है कि इन्द्र उत्पादित होने वाली द्रव्यादि से एक अंश राजा को देता था। किसान भी उत्पादित होने वाले धान्यादि से एक अंश संग्रहितृ के पास जमा करवाने के लिए लेकर जाते थे। इस समय तक गंगा द्रोणी के उच्चस्थ क्षेत्र में कृषि अर्थव्यवस्था का विस्तार सुदूर तक हो गया था।

भारतीय संस्कृति में आरम्भिक स्रोतों में भूमि को सम्पत्ति माना गया है किन्तु उसके बँटवारे के नियम नहीं दिए गए हैं। मनु व याज्ञवल्क्य ने इस तरह का कोई नियम

नहीं दिया है। हाँ, नारद और बृहस्पति संहिताओं में ऐसा नियम आया है। नारद ने माना है कि सेतु और उपज-निपज वाली भूमि की सीमा इतस्तत हो जाने पर इसको निश्चित करन के लिए क्षेत्र से ऊपर अधिकार को लेकर जो विवाद होता है, वह क्षेत्रज अथवा सीमाबन्ध कहा जाता है। क्षेत्र की सीमा के बारे में विवाद होने से सामन्त अर्थात् सम्मुखस्थ लोगों के द्वारा निर्णय किया जाता है। नगर, ग्राम और गणों के बारे में सीमा संकेत जानने वाले वृद्धतम लोगों को लेकर निर्णय किया जाना चाहिए। ग्राम की सीमाओं में रहने वाले कृषिजीवियों, गोपाल, पक्षिजीवी, व्याध या शिकारी और अन्य वनवासियों के साहाय्य में उनके अपने-अपने लक्षण, उपलक्षण के द्वारा तुष, अंगारे और कपालादि की वस्तुओं के आधार पर सीमा को निर्णीत किया जाना चाहिए। *(नारदस्मृति, 4, 11, 1-4)*

बौद्धग्रंथों में खेतों के तीन प्रकार बताए गए हैं—(1) उत्कृष्ट खेत (2) मध्यम श्रेणी के और (3) अधम कोटि के खेत। *(संयुत्त निकाय 4, 314-17)* इस समय तक छह ऋतुओं को कृषि के योग्यायोग्य रूप में पहचान लिया गया था और 27 नक्षत्रों पर आधारित कृषि पंचांग का प्रचार हो चुका था। गृह्यसूत्रों ने इसे पूरी तरह महत्त्व दिया और बीजों की बुवाई तथा कृषि से जुड़े त्यौहारों को मनाने के लिए ऋतुओं व नक्षत्रों का निर्धारण किया जा रहा था। *(शांखायन गृह्यसूत्र 4, 13, 1 व आश्वालयन गृह्यसूत्र 2, 13, 3)*

जिनको भूमि दान में भी मिलती, उनसे यह आशा की जाती थी कि वह भूमि का स्वयं उपयोग करेगा, दूसरों को उपभोग करने देगा और उस पर खेती करें अथवा दूसरों को पट्टे पर खेती करने दें। खेतों के दान के साथ ग्रहणकर्ता को बैल मवेशी भी दिए जाते थे— फाह्यान ऐसा लिखता है। इससे लगता है कि भूमि को कृषि के उद्देश्य से दिया जाता था ताकि ग्रहणकर्ता आत्मनिर्भर हो सके। ये खेत उद्रंग और उपरिकर जैसी लागतों के साथ दिए जाते थे जिसमें सभी प्रकार की देयताएं सम्मिलित होती थीं। युद्धोन्माद में भी सैनिकगण उनमें प्रवेश नहीं करते, ताकि वह सस्यश्यामला बनी रहें। परती भूमि अप्रहत, खिल, भूमिछिद्र, अवनिरन्ध्र जैसे शब्दों से जानी जाती थी। अंगुत्तरनिकाय में ऐसे आठ प्रकार के खेतों के नाम आए हैं जिनमें ज्यादा उपज नहीं होती थी - असमतलें, चट्टानों व पाषाणों वाले, लवणीय, गहरी जुताई से हीन, जल निकासी रहित, जल अंतर्गम से हीन, जल के प्रबंध से हीन तथा मेढ़हीन खेत। इनमें बीज बोना बेकार बताया गया है जबकि आठ ऐसे खेतों के प्रकार बताए गए हैं जिनमें बीजोत्पत्ति अच्छी होती है। (अंगुत्तर. 4, 237 व अन्य)

कृषि योग्य भूमि की आवश्यकता किसे नहीं रही। मिलिन्दपञ्हो में ऐसे व्यक्तियों का उल्लेख है जो कि भूमि को कृषियोग्य बनाने के लिए जंगलों की सफाई में लगे रहते थे। मनु यह स्वीकारते हैं कि भूमि उसकी है जिसने जंगल को साफ किया हो। (9, 44) महाभारत के परिशिष्ट के रचनाकाल तक पशुपालन को अलग वृत्ति के रूप में भी देखा जाने लगा था। हरिवंश में आया है कि खेती करने वालों की जीविका कृषि है, व्यापार से जीवन चलाने वाले वैश्यों की क्रय-विक्रय जीविका-वृत्ति है और आभीरादि की सर्वोत्कृष्ट-वृत्ति है गायों का पालन, वार्ताओं के ये तीन भेद कहे गए हैं, ये असामान्य देव रूप हैं, जो जिस विद्या को जानता है, वही उसके लिए सर्वोत्तम देवरूप है, वही पूजा-अर्चना के योग्य है और वह विद्या ही उसके लिए उपकार करने वाली होती है—

कर्षुकाणां कृषिवृत्तिः पण्यं विपणिजीविनाम्।
गावोऽस्माकं परा वृत्तिरेतत् त्रैविधमुच्यते॥
विद्यया यो यया युक्तस्तस्य सा दैवतं परम्।
सैव पूज्यार्चना च सैव तस्योपकारिणी॥ *(हरिवंश विष्णुपर्व 16, 3-4)*

यह भी कहा गया है कि जो विप्रगण हैं, वे मन्त्र रूपी यज्ञ करते हैं, किसान सीता-यज्ञ करते हैं जिसका आशय है कि वे खेतों को अच्छी तरह से जोतते हैं और हल को जोतने से जो रेखा बन जाती है, उसकी और हल की पूजा करते हैं और ग्वाले गिरियज्ञ करते हैं, अर्थात् पर्वतीय वन क्षेत्र में जहां गोचारण के योग्य घास मिल जाती है, उस भूमि को साधते हैं—

मन्त्रयज्ञपरा विप्राः सीतायज्ञाश्च कर्षुकाः।
गिरियज्ञास्तथा गोपा इज्योऽस्माभिर्गिरिर्वने॥ *(उपर्युक्त 10)*

इस काल तक पशुपालकों और कृषकों में एक अन्तर रेखा खींची गई मगर पशुपालन किसानों से दूर नहीं हुआ। कृषि अर्थ व्यवस्था का मूलाधार भी पशुधन ही रहा है किंतु यह भी लगता है कि जिनके पास अधिक पशु थे, वे कृषिकार्य के लिए बुलाए जाने पर उत्पाद, राशि आदि की एवज में सहयोग करते रहे होंगे। कृषि कभी मानवीय आवश्यकता से दूर नहीं हुई अपितु जब-जब कृषि का ह्रास हुआ, मानव पर प्राणों का संकट उपस्थित हो गया। पुराणों के युगवर्णन नामक अध्याय इसे सबल रूप से स्पष्ट करते हैं। युगपुराण में इस स्थिति का चरम देखा जा सकता है।

कृषि निःसन्देह रोचक और रोमांचकारी कार्य है। लहलहाते खेतों से परिवेश

कितना सुन्दर दिखाई देता है, यह तो वही जान सकता है जिसने खेतों की भूमि पर जन्म लिया हो, बंजर-मरुप्रदेश का जाया-जन्मा तो केवल विचार ही कर सकता है। किंचित कल्पना की जा सकती है हर्षचरित सहित हरिवंश के इस वर्णन के साथ— जब शरत्कालीन खेती होती है, मोर मौन हो जाने की इच्छा करते हैं, पपीहे जल की याचना करने लगते हैं, नदियों में बाढ़ नहीं होगी और नावों का चलना बन्द हो जाता है, नदियों के तट हंसों और सारसों से भर जाते हैं, मदमत्त क्रौंच नामक पक्षीगण वहाँ कलरव करते दिखाई देने लगते हैं, साँड मतवाले होकर घूमने लगते हैं, गायें प्रसन्न होकर बहुत दूध देने लगती हैं, संसार के लिए जल की वृष्टि करने वाले बादल आकाश में गुम हो जाते हैं, आकाश शस्त्रों की भाँति चमक उठता है, हंस सभी ओर विचरने लगते हैं, बावड़ियाँ और सरोवरों के जल में कमल पैदा होने लगते हैं जिससे उनकी शोभा बढ़ जाती है, खेतों की श्रेणीबद्ध काली-काली क्यारियों में धानों की पकी हुई बालियाँ आगे की ओर से लटकती दिखाई देने लगती हैं, नदियाँ अपने जल का बहाव बीच में कर लेती हैं, व्रजों और गाँवों की सीमाएँ सुन्दर अनाजों से सम्पन्न होकर मुनियों का मन भी मोह लेती हैं, अधिकांश प्रदेशों वाली सारी ही पृथ्वी रमणीय दिखाई देने लगती हैं, पंक्तिबद्ध रास्ते शोभायमान होने लगते हैं, घास और लताओं तथा ओषधियों में फल लग जाते हैं, जगह-जगह ईख की खेती अपने सिर पर बाण धारण किए दिखाई देने लगती है और आग्रहायण तथा वाजपेयादि यज्ञ होने लगते हैं, यह देखने के लिए विष्णु भी अपनी शय्या से जाग उठते हैं। *(विष्णुपर्व अध्याय 19)*

हमारे वांगमयों के प्रमाण यह स्पष्ट करते हैं कि भारत में कभी कृषि पर्यावरण की बलि देकर नहीं की गई। खाद्य की सुरक्षा के नाम पर कृषि को विकृत नहीं होने दिया गया। ऋषियों के कृषिशास्त्र यह भलीभाँति हमें बताते हैं। आज कृषि के सामने कई चुनौतियाँ खड़ी हो चुकी हैं। इनमें मुख्य हैं— जलवायु का बदलाव, पेट्रोलियम आधारित ऊर्जा की बढ़ती दरों के कारण ईंधन उत्पादन के निमित्त कृषिक्षेत्रों का परिवर्तित होता स्वरूप, कृषि के विकास के लिए अत्यावश्यक पारिस्थितिकी को होती जाती क्षति और दिन-ब-दिन बढ़ते कीटनाशक। हालांकि विज्ञान और तकनीकी क्षेत्रों में इस संकट को बराबर समझा जा रहा है और विशेषकर जैवपद्धति, सूचना और संचार एवं अन्तरिक्ष तकनीकी के क्षेत्रों में होने वाले नवीन अनुसन्धानों और खोजों ने पृथ्वी पर विद्यमान पारिस्थितिकी को किसी भी प्रकार की क्षति पहुँचाए बिना एक दीर्घावधि वाली हरित क्रान्ति के युग को प्रारम्भ करने के अवसर सुलभ करवाए हैं।

कृषक आयोग के पूर्व अध्यक्ष एमएस स्वामीनाथन यह मानते हैं कि नवीन

हरित क्रान्ति के मानकीकरण के लिए जैविक और हरित कृषि के दो मार्गों को अंगीकार करने की आवश्यकता है। सामान्यतरूप से जैविक कृषि खनिज उर्वरकों, रासायनिक कीटनाशकों और आनुवांशिक रूपान्तरित फसलों की प्रजातियों का उपयोग नहीं किया जाता। हरित कृषि में, समाकलित कीट प्रबन्धन, पौष्टिक तत्वों और समुचित फसल की प्रजातियों का फसल उत्पादन में उपयोग किया जाता है। जैविक कृषि पद्धति को नई आनुवांशिकी के साथ फसल–पशुधन को सम्मिलित करने की आवश्यकता है किन्तु इसके लिए वैश्विक जैवपद्धति विनियामक व्यवस्था की सहमति भी जरूरी है और जिसका आधार पर्यावरण की सुरक्षा, उपभोक्ता का स्वास्थ्य तथा देश की जैव सुरक्षा होनी चाहिए। जैवपद्धति की विधाओं यथा कोशिका, उत्तक संवर्धन और डीएनए तकनीक की मदद लिए बिना वर्तमान में उभर रही चुनौतियों का सामना करना कठिन ही होगा। उन्होंने माना कि इस कार्य में महिलाओं की भागीदारी को भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में स्वामीनाथन चेन्नई के बायोपद्धति उद्यान का उदाहरण देते हैं। किन्तु, यह वैज्ञानिक सोच फिलहाल बहुत दूर की बात है क्योंकि भारतीय परिवेश इसे स्वीकृत करता है या नहीं, यह भी सोचना होगा।

भारतीय कृषि परम्परा का आधार इसका ऋषि–चिन्तन आधारित दृष्टिकोण रहा है। इसका अपना विधि–विधान और संस्करण रहा है। यही देहात में धान्योपज का हेतु भी रहा है क्योंकि कृषि कभी आस्थाओं से विलग नहीं रही। खेत किसान का धनागार है और खेती उसकी पूंजी। वह श्रम और दैववशात् खेती के प्रति विश्वास करने वाला रहा है, तमाम प्रयोगों और नवाचारों के बावजूद भारतीय किसान ने अपनी आस्थाओं को नहीं त्यागा। वह आज के नए प्रयोगों से थक–चूरकर देशी विज्ञान की शरण चाहता है। ऐसे में ऋषि–कृषि–विज्ञान उसकी अपेक्षाओं को पूरी करता प्रतीत होता है। काश्यप मुनि का यह कृषि विज्ञान 'काश्यपीयकृषिपद्धति' जिसे 'काश्यपीय कृषिसूक्ति' के नाम से जाना जाता है, मैं लोक से लेकर लोक को लोक की अपनी भाषा में लौटाने का प्रयास कर रहा हूँ।

इस प्रयास में मैं जर्मनी के कृषिशास्त्री प्रो. गाइल वोजतिला का आभारी हूँ कि उन्होंने इस शास्त्र को सर्वप्रथम प्रकाशित कर विश्व को सुलभ करवाया। उन्होंने ही मुझे अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ कृषिशास्त्र' भेजकर इस दिशा में कार्य करने के लिए प्रेरित किया। उन्हें चक्रपाणि मिश्र कृत विश्ववल्लभ–वृक्षायुर्वेद और सुरपाल कृत वृक्षायुर्वेद पर किया मेरा कार्य बहुत रुचिकर लगा, अपनी पुस्तक के नवीन संस्करण में उन्होंने इस बात को प्रकट किया है। उक्त दोनों ही ग्रन्थों के सम्पादन–अनुवादादि मेरे

प्रयास को केशवपुरी–यवतमाल के कृषि ऋषि श्रीमान् वाल्मीकि श्रीनिवासन अयंगार ने भी सराहा और इन ग्रन्थों पर आधारित प्रयोगों के द्वारा अरुणाचल प्रदेश और महाराष्ट्र से लेकर राजस्थान तक हजारों बीघा क्षेत्र में खड़े उपवनों–वनों और खेती को बचाया। श्री बिनोद सहारिया जैसे ऑर्गेनिक चाय उत्पादनकर्ता भी उनके आशीर्वादमूलक प्रयासों के साथ मेरे कार्यों के प्रशंसक बने।

भारतीय वैज्ञानिक, तकनीकी ग्रन्थों पर सम्पादन–अनुवाद की दिशा में मैं 2003 ई. से लगा हुआ हूं और विगत एक दशक में वास्तु–स्थापत्य, कला सहित वृक्ष–सस्य विज्ञान पर मेरे अनेक ग्रन्थ देश–विदेश के लोगों तक पहुँचे हैं। किसे भूलूँ और किसे याद करूँ? अपने ही नहीं, सुदूर के अपरिचितों ने भी मेरे कार्यों को सराहा किन्तु उन लोगों की मानसिकता को क्या कहा जाए, जिन्होंने मेरे कार्य और मेरी स्थापनाओं को स्वीकार तो किया, मेरे ग्रन्थों का खूब उपयोग भी किया लेकिन कहीं मेरा उल्लेख करना तक ठीक नहीं समझा। यह कृतघ्नता ही तो है किन्तु ऐसा होता आया है।

काश्यपीय कृषि सूक्ति का यह पाठ पूर्व प्रकाशित पाठों पर ही आधारित नहीं है बल्कि इसमें पाठ का यथामति संशोधन किया गया है और विषयवार श्लोकों के साथ उपशीर्षकों की बहुलता के साथ ही स्थल–स्थल पर पर्याप्त पाद टिप्पणियां भी दी गई हैं। इसे भारतीय वांगमय और विचार की परम्परा के साथ जोड़ने का पूरा–पूरा प्रयास किया गया है। इस ग्रन्थ के साथ हमारी ज्ञान–विरासत पर भी दृष्टि निक्षेप का प्रयास किया गया है, पाठकों और कृषि विशारदों को यह अवश्य रुचिकर लगेगा। इस कार्य में सहधर्मिणी पुष्पा चौहान, पुत्री सौ. कां. अनुभूति चौहान, अनुकृति चौहान, पुत्र चि. गौरव चौहान सहित अनुज श्री अरविन्द चौहान ने पर्याप्त सहायता की। मैं उन्हें धन्यवाद क्या कहूँ, वे मेरे प्रयास–यज्ञ की आहुतियों के होता हैं। स्थले–स्थले उनका सहयोग मेरे प्रयास को सार्थक करने वाला सिद्ध हुआ है। जिन ग्रन्थों, विद्वानों के मतों का मैंने उपयोग किया, उनके प्रति अनेकशः आभार।

इसमें जो अच्छाइयाँ हैं, वे आनन्द–कन्द–नन्द–नन्दन प्रभु श्रीनाथजी की कृपा का सुफल है और जो कमियाँ और त्रुटियाँ हैं, वे मुझ अल्पज्ञ की है। इसके प्रकाशन का दायित्व चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी के संचालक श्रीमान् ब्रजमोहनदास जी गुप्ता ने निभाया है, उनके प्रति अनेकशः धन्यवाद। उन्होंने ही इस विषय पर मेरी पहली पुस्तक सुरपाल कृत वृक्षायुर्वेद का प्रकाशन किया था। यह भी उनके प्रयासों से आपके कर–कमलों तक पहुँच रही है।

विद्वानों की प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा रहेगी। एतदर्थ— 'प्रणम्य मान्यान् विनिवेदयामि ग्रन्थं मुदा पश्यत सावधानाः। दृष्टे यदस्मिन् परमः प्रमोदो भवेत्तथा सिद्धिरपि प्रकृष्टा॥ विदितसकलवेद्यैर्न प्रशंसन्ति लोके ग्रथितमपि महद्भिः किं पुनर्मादृशेन। इति विफल श्रमेऽस्मिन् वाग्व्ययेऽह प्रवृतः स्वमतिविमलतायै क्षन्तुमर्हन्ति सन्तः॥'

श्रीकृष्णार्पणमस्तु...

विदुषां वशंवद
श्रीकृष्ण 'जुगनू'

40 राजश्री कॉलोनी, विनायकनगर
उदयपुर (राजस्थान)
20 मार्च, 2012 ई.

भारतीय कृषि संस्कृति और उसकी पृष्ठभूमि

अन्नोत्पादन मानव सभ्यता की सबसे बड़ी देन है। सभ्यता का बीजारोपण ही अन्नोत्पादन के साथ हुआ— यह कहते कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी, अन्यथा मानव शिकार से प्राप्त आहार पर ही निर्भर होकर स्वयं हिंसक और असभ्य बना हुआ था। उसका यह क्रम रहता था कि गुफा से निकलते ही वह आहार की खोज आरम्भ कर देता और आखेट में जो भी मिला, वह वहीं पर अथवा अपनी खोह में लाकर खाता किन्तु अन्न के स्वाद ने उसे सभ्य और सार्थक जीवन जीने का पाठ पढ़ाया।

हालांकि खेती की खोज यायावरी के दौर में उन महिलाओं की रही होगी जो गुफाओं के अन्तर्गत रहने वाली थीं और अपने आसपास ऊगने वाली वनस्पति के उद्भव, पुष्पागमन और फलों पर ध्यान देती थीं। यदि ग्रीस की देमेतर तथा मिस्र की आइसिस के दृष्टान्तों पर विचार करें तो सामान्तया यह स्वीकारा जाता है कि आदिम जीवन की खाद्य-संग्राहक और शिकारी जीवन के दौर में पुरुष शिकार करते थे और औरतें जानवरों की हड्डियों और लकड़ी की गोदनियों इत्यादि से भूमि खोद कर विभिन्न कन्दमूल इत्यादि जमा करती थीं। इससे स्वभाविक रूप से औरतों को यह जानकारी मिली कि कौन से पौधे कहां, किस रूप में और किस ऋतु में मिल सकते हैं और उनकी क्या किस्में-प्रजातियां होती हैं ? इसका परिणाम यह निकला कि उन्हें शाक-सब्जियां उगाने, उद्यानिकी-बागवानी और खेती-बाड़ी करने की विधि की जानकारियां मिलती चली गईं।

इस प्रकार की मिथक कथाओं पर विश्वास करें तो प्रतीत होता है कि महिलाओं ने ही कृषि की सर्वप्रथम खोज की थी। आरम्भिक अवस्था में औरतों ने ही खेती-बाड़ी की खोज की। वे हल के प्रयोग में आने से पूर्व फावड़े से कृषिकर्म का सम्पादन करती थीं, जब हल खेती के लिए आया तो यह कार्य पुरुषों के हाथ चढ़ गया तथापि महिलाएं इस कार्य से पृथक् नहीं हुईं। *(द लाईफ ऑफ ग्रीस : विल डूईरां, पृष्ठ 178 एवं रायना आर. राइटर सम्पादित टुवर्ड्स एन एन्थ्रोपॉलोजी ऑफ वुमेन, मन्थली रिव्यू प्रेस, न्यू मार्क, 1945 ई., पृष्ठ 63-64 इत्यादि)* भारतीय धारणा में श्रीसूक्तोक्त देवी लक्ष्मी का वर्णन उसके कर्दम, चिक्लीत, बिल्ववास आदि के साथ सम्बन्ध क्या

प्रकट करता है? कई शास्त्रीय व लोक में स्वीकार्य देवियाँ, यथा कूष्माण्डा, अम्बामाता, शाकम्भरी, नीमजमाता, पीपलाजमाता इत्यादि का सम्बन्ध शाकादि वनस्पतियों से जुड़ा दिखाई देता है। शुक्रप्रिया अम्बिका की प्रारम्भिक मूर्तियों पर स्कन्धों पर शुक बैठा हुआ दिखाया गया है, यह क्या तोते की आम के प्रति रुचि का परिचायक नहीं है? कई देवियों के हस्तायुधों में कृषि-योग्य उपकरण भी होते हैं। क्षेत्र विशेषादि पर भी देवियों का नामकरण हुआ मिलता है।

हमें ध्यान रखना चाहिए कि बाद में हल हाँकने-जुताई-बुवाई के सिलसिले ने जब मानव के आवासीय विचार को जन्म दिया और खेतों की रखवाली के कारण ही खत्तीय जैसे पदों का विकास हुआ जो आगे चलकर खत्ती और फिर क्षत्रिय हुए। इस दौर तक आते-आते मानव ने खेती-बाड़ी के साथ पशुपालन को पर्याप्त महत्त्व दे दिया था और इस तरह हल तथा बैल कृषि के मूलाधार बने। इसके लिए भूमि के उर्वर और अनुर्वर स्वरूप के चयन का निर्धारण और चुनाव किया जाने लगा। ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा गया है :

तस्मात् पशव्यमूषरम्। *(शतपथब्राह्मण 2, 1, 1, 6)*

कृषि : आत्मनिर्भरता की राह—

कृषि के प्रति चेतना ने मानव को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण सोपान की सृष्टि की। यह मानव का अपने समाज पर उपकार करने वाला एवं सर्वाधिक चमत्कृत करने वाला सोच भी है और आविष्कार भी।

क्योंकि, ऋग्वेद का 'अक्षसूत्र' यह स्पष्ट करता है कि मानव को ज्ञात हो गया था कि व्यर्थ के विवाद, जुआ इत्यादि को छोड़कर कृषि करना ही उत्तम है, कृषि जीवन का सार है और यज्ञ जैसी संस्थाओं की अत्यधिक निर्भरता भी इसी पर सम्भव है। ऋषि ने उपदेश किया है कि द्यूतकर अर्थात् जुए में सर्वस्व खोने वाले व्यक्ति अपने शकल-पांसों का छोड़कर खेती-बाड़ी की राह अंगीकार करें, क्योंकि यही श्रेष्ठ और कर्तव्यभूत है—

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व। *(ऋग्वेद 10, 34, 7)*

यह वैदिक निर्देश मानवमात्र के प्रति था। वैदिक ऋषियों ने निश्चित रूप से कृषि संस्कृति को प्रोत्साहित किया और व्यर्थ के कार्यकलापों की अपेक्षा आवश्यक जीवन-योग्य नीति-निर्देशन किया। मानव मात्र को समझा दिया कि अन्न से बड़ा कौन है? अन्न ही सर्वस्व है। तैत्तिरीय उपनिषदकार को यही कहना पड़ा—

अन्नं वै ब्रह्म। अर्थात् ब्रह्म अन्न ही है। *(3, 2)*

इससे भी आगे बढ़कर अथर्ववेद के ऋषियों को कहना पड़ा था कि अन्न ही वह आधार है जिससे पृथ्वीभर के मर्त्य प्राणियों को जीवन की राह मिलती है, उन्हें जीवन मिलता है—

जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः। *(12, 1, 22)*

अथर्ववेद की अधिकांश सर्जनात्मक पृष्ठभूमि वर्तमान राजस्थान और पंजाब के क्षेत्रों की हैं, जहां कि सरस्वती नदी प्रवहमान थी। इसकी तटवर्ती भूमि पर्याप्त उपजाऊ थी और वह बीजों का क्षरण नहीं करती थीं। वह उगाए गए एक बीज को शत-शत रूप में लौटाने में समर्थ थीं। वेद के एक मन्त्र *(6, 30, 1)* में आया है कि इस गुण को देखकर किनाश (किसान का मूल शब्द) अपने राजा (नायक-इन्द्र) के साथ में आगे आए। किसान के रूप में समस्त लोग 'मरुद्गण' थे जिन्हें 'मरुवासी' कहने में कोई अतिरंजन नहीं होगा। ये लोग निश्चित ही मरु के बढ़ते प्रभाव से त्रस्त थे और वनारण्यों के विनाश से फलादि का संकट आसन्न देख रहे थे। उन्होंने सोत्साह सरस्वती के प्रवाह क्षेत्र में यव अर्थात् जौ की बुवाई की। इस तरह जौ ही बुवाई के रूप में पहला अनाज था। यह वैदिक धान्य है जिसे विष्णुपुराणकार ने ग्राम्य ओषधि के रूप में भी स्वीकार किया है। बाद के पुराणकारों ने उसे धान्य के रूप में स्वीकृत किया है।

पुराणकारों का मत है कि इस प्रकार प्रजा ने जीविका के साधन रूप कृषि तथा कला-कौशलादि की रचना की थी। धान, जौ, गेहूँ, छोटे धान्य, तिल, काँगनी, ज्वार, कोदो, छोटी मटर, उड़द, मूँग, मसूर, बड़ी मटर, कुलथी, राई, चना और सन—ये सत्रह ग्राम्य ओषधियों की जातियां हैं। ग्राम्य और वन्य दोनों प्रकार की मिलाकर कुल चौदह ओषधियां याज्ञिक मानी गई हैं। इनमें से धान, जौ, उड़द, गेहूँ, छोटे धान्य, तिल, काँगनी और कुलथी सहित साँवा, नीवार, वनतिल, गवेधु, वेणुयव और मर्कट ये चौदह ग्राम्य व वन्य ओषधियां यज्ञानुष्ठान की सामग्री बताई गई हैं। *(विष्णुपुराण 1, 7, 21-26)*

मानव के जीवन में कृषि सबसे बड़ी क्रान्ति कही जा सकती है। इसने पृथ्वी के महत्व को जन्म दिया और भूमि की उपजाऊ-अनुपजाऊ, जलीय-जंगली, पहाड़ी-पथरीली और रेतीली-बंजर जैसे गुणों की पहचान के साथ-साथ बसाव और व्यवसाय जैसी प्रवृत्तियों का विकास हुआ। भूमि के महत्व के आधार पर ही मानवीय आवासीय बस्तियों का निर्धारण हुआ और कृषि ने उसके प्रधान सहयोगी के रूप में निवास को

सुदृढ़ता दी। उसने अन्न के महत्व को भी समझा और 'पृथिवी पात्रम्' अर्थात् पृथ्वी को पात्र मानकर उसमें बीजों की बुवाई करने के कार्य को स्वीकारा। यह अनुभव भी लिया कि उपज के लिए उपजाऊ भूमि हो और हल के प्रयोग के साथ बोया गया बीज श्रेष्ठता से अंकुरित होता है और उत्तमोत्तम उपज देता है—

यथा बीजमर्वरायां कृष्टे फालेन रोहित। *(अथर्ववेद 10, 6, 33)*

यज्ञ के प्रसंग में भूमि के चयन के प्रसंग में ऋग्वेद के ऋषियों ने मान लिया था कि कर्मकारिणी उर्वरा अर्थात् उपजाऊ कृषि योग्य भूमि का सत्रों के लिए चुनाव करना चाहिए : इति उर्वरा समृद्धा देयात्। *(ऋग्वेद 4, 4, 1, 6)*

वैदिक और ब्राह्मण-आरण्यक जैसे ग्रन्थ प्रारम्भिक तौर पर कृषि कर्म के महत्व और उनकी आवश्यकता पर प्रकाश डालते हैं। पाणिनि के काल तक समाज में कृषि के योग्यायोग्य भूमि का निर्धारण तीन रूपों में सामने आ चुका था। जो धरती हल द्वारा जोते जाने योग्य हो वह हल्य या शीत्य कही जाती थी। लवणीय या अनुपजाऊ भूमि ऊषर कही जाती थी और चरणोट या चरागाह वाली भूमि गोचर के नाम से जानी जाती थी। इसी पर पशुओं को चराया और रखा जाता था। ये क्षेत्र व्रज और गोष्ठ के रूप में जाने जाते थे। *(अष्टाध्यायी 5, 2, 107; 3, 3, 119; 5, 2, 18 इत्यादि)*

तदोपरान्त पुराणों में इस कर्म का प्रतिपादन मिलता है। धीरे-धीरे इस विद्या पर स्वतन्त्र ग्रन्थों का लेखन और सम्पादन हुआ। अर्थचिन्तक शास्त्र, वृत्ति, स्मृति और नीति विषयक ग्रन्थों में भी इस सम्बन्ध में विचार किया जाने लगा, कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र और बार्हस्पत्य सूत्रादि इसके सबलीकृत स्वरूप है। तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व हुए चाणक्य ने कृषि का ज्ञान अपरिहार्य बताते हुए 'गुल्म-वृक्षायुर्वेद' विद्या *(अधिकरण 2, 24)* की जानकारी दी है। साथ ही बीजों के संरक्षण पर जोर दिया है और स्पष्ट किया है कि बीज सदा सूखी और आर्द्र मिट्टी के स्वरूप के अनुसार ही बोये जाने चाहिए। बुवाई से पूर्व बीजोपचार करने से उचित फल मिलता है, बीजोप्ति के लिए आवश्यक कार्य करना हितावह है। चाणक्य का यह मत इन शब्दों में है—

तुषारपायनमुष्णशोषणं चासप्त रात्रादितिधान्य बीजानां त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा कोशी धान्यानां मधुघृतशूकरवसाभिः शकृद्युक्ताभिः काण्डबीजानां छेदलेपो मधुघृतेन कन्दानां, अस्थिबीजानां शकृतदालेपः शाखिनां गर्तं दाहो गोस्थिशकृद्भिः काले दोहृदं च॥ *(अर्थशास्त्र 2, 24, 41, 32)*

इन शब्दों में स्पष्टतः धान्य (अनाज), कोशीधान्य (उड़द, मूँगादि),

काण्डबीज (ईखादि), कन्दबीज (भूमिकन्द), अस्थिबीज (फलान्तर्गत निष्पन्न कपास, गाजर इत्यादि) और शाखीबीज (शाखाधारित फल) जैसे धान्यादि का वर्गीकरण मिलता है। भार्गवों द्वारा सम्पादित मनुस्मृति में यह निर्देश दिया गया है कि कृषि के लिए उपजाऊ भूमि हो और सुपक्व बीज हो, तभी उचित फल मिलता है— सुबीजं चैव सुक्षेत्रे जातं सम्पद्यते यथा। *(मनु. 10, 69)*

धान्योत्पादन की मान्यताएं —

पुराणकारों ने अलग-अलग अन्न-धान्य उपजाने की कथा अपने-अपने ढंग से दी है। इस क्रम में राजा पृथु की कहानी कल्पित की गई है। वायुपुराणकार का मत है कि क्षत्रियों का अग्रज वेनपुत्र पृथु अपने तेज से जलते हुए भांति धनुष एवं कवच धारण किए हुए उत्पन्न हुआ था। उसने अपने अपार साहस से समस्त लोक की रक्षा की थी। राजसूय यज्ञ से अभिषिक्त राजाओं में सारी पृथ्वी का स्वामी वह पृथु ही सर्वप्रथम था। उस पराक्रमी की स्तुति करने के लिए सूत एवं मागध तत्पर हुए।

पृथु ने वृत्ति की अभिलाषिणी प्रजाओं के लिए ऋषियों, देवताओं, पितरों, दानवों, गन्धर्वों, अप्सराओं, सभी पुण्यात्मा पुरुषों, वृक्षों और पर्वतों के समूहों के साथ गाय रूप धारिणी पृथ्वी से अनेकानेक अन्न राशियों का दोहन किया। दोहन के समय पृथक्-पृथक् पात्रों में दूही गई वसुन्धरा ने दुहने वाले को यथाभिलषित क्षीर रूपेण फल प्रदान किया, जिसके द्वारा समस्त लोक की रक्षा सम्भव हो सकी—

वैन्यो नाम महीपालो यः पृथुः परिकीर्तितः। स धन्वी कवची जातस्तेजसा प्रज्वलन्निव। पृथुर्वैन्यः सर्वलोकान्ररक्ष क्षत्रपूर्वजः॥ राजसूयाभिषिक्तानामाद्यः स वसुधाधिपः। तस्य स्तवार्थमुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ॥ तेनेयं गौर्महाराज्ञा दुग्धा सस्यानि धीमता। प्रजानां वृत्तिकामानां देवैर्ऋषिगणैः सह॥ पितृभिर्दानवैश्चैव गन्धर्वैरप्सरोगणैः। सर्वैं पुण्यजनैश्चैव वीरुद्भिः पर्वतैस्तथा॥ तेषु तेषु पात्रेषु दुह्यमाना वसुन्धरा। प्रादाद्यथेप्सितं क्षीरं तेन लोकांस्त्वधारयत्॥ *(वायुपुराण 62, 95-100)*

विष्णुपुराण में उस काल का वर्णन आया है जबकि मानव समाज अराजक युग में जी रहा था। उस समय अन्न, गोरक्षा, कृषि और व्यापार का कोई क्रम नहीं था : न सस्यानि न गोरक्ष्यं न कृषिर्न वणिक्पथः। *(विष्णुपुराण 1, 13, 84)* तब एक समय ऐसा भी आया जबकि ओषधियों-धान्यों के नष्ट हो जाने से भूख से लोग व्याकुल हो उठे। प्रजा ने पृथु की शरण ग्रहण की और बताया कि अराजकता के कारण पृथ्वी ने समस्त धान्योषधों को अपने में लीन कर लिया है तथा प्रजा क्षीण होती जा रही है।

विधाता ने आपको हमारा जीवनदायक प्रजापति बनाया है अतः क्षुधारूप महारोग से पीड़ित हम प्रजाजनों को आप जीवनरूप धान्यादि प्रदान कीजिए। इस पर पृथु अपना आजगव नामक दिव्य धनुष और बाण लेकर गौकाय पृथ्वी के पीछे दौड़े। पृथ्वी ने घबराकर कहा कि प्रयत्न के साथ आरम्भ किए गए सभी कार्य सिद्ध होते हैं : उपायतः समारब्धाः सर्वे सिद्ध्यन्त्युपक्रमाः। *(उपर्युक्त 1, 13, 78)*

पृथ्वी ने उपाय बताया कि प्रजा के हित के लिए कोई ऐसा बछड़ा बनाइये जिससे वात्सल्यवश मैं उन धान्योषधियों को दूध रूप से निकाल सकूं। आप सर्वप्रथम मुझे समतल करने का उपाय भी करें। इस पर पृथु ने सैकड़ों-हजारों पर्वतों को उखाड़ा और पृथ्वी को समतल किया। जहाँ-जहाँ भूमि समतल हुई, वहाँ-वहाँ प्रजा को निवास करना रुचिकर लगा। उस समय तक प्रजा का आहार केवल फल-मूलादि ही था। वह भी ओषधियों के नष्ट हो जाने पर बड़ा कठिन हो गया था। पृथु ने स्वायम्भुव मनु को बछड़ा बनाकर अपने हाथ से ही पृथ्वी से प्रजा के हितार्थ समस्त धान्यों को दूहा। उसी अन्न के आधार से आज तक प्रजा जीवित रहती है : तेनान्नेन प्रजास्तात वर्तन्तेद्यापि नित्यशः॥ *(उपर्युक्त 1, 13, 88)*

यह परिकल्पना प्रथम मन्वन्तर की है जिसका प्रवर्तन पुराणकारों द्वारा स्वायम्भुव मनु से माना गया है अर्थात् यह मानव जीवन में सभ्यता और संस्कृति के उषःकाल की सूचक है। सम्भवतः कृषि-युग इसी को कहा जा सकता है। इस काल में पांच प्रकार के सर्ग को जान लिया गया था— वृक्ष, गुल्म, लता, विरुत् और तृण। पञ्चधाऽवस्थितः सर्गो ध्यायतोऽप्रतिबोधवान्। *(उपर्युक्त 1, 5, 7)*

सस्यायुर्वेद और कृषिशास्त्र की परम्परा :

कृषि शास्त्रों की दृष्टि से भारतीय वांगमय में अनेक ग्रन्थों की शृंखलाएँ मिलती हैं। कुछ क्षेत्रीय आधार पर लिखे गए हैं तो कुछ सम्पूर्ण देश की स्थितियों को दृष्टिगत लेकर रचे गए हैं। चाणक्य ने 'गुल्म-वृक्षायुर्वेद' जैसी परम्परा का संकेत किया है। बाद में, पुराणों में वृक्षायुर्वेद जैसे ग्रन्थों का सार रूप में अध्यायों के रूप में सम्मिलित किया गया। यह विषय-क्रम विष्णुधर्मोत्तर पुराण से आरम्भ होकर अग्निपुराण तक में मिलता है—वृक्षायुर्वेदविधिना व्याधितन्तु यथाक्रमम्। नीरुजं मानवः कृत्वा स्वर्ग-लोकमवाप्नुयात्॥ *(विष्णुधर्मोत्तर. 3, 297,18)*

अग्निपुराण (यथा-अध्याय 282) में तो इस विषय की पुनरावृत्ति भी हुई है। ब्रह्मपुराण में वृक्षायुर्वेद्य का उल्लेख प्रकट करता है कि भारतीय समाज में हस्त्यायुर्वेद,

गवायुर्वेद, नरवेद्य, अश्वायुर्वेद, ऊष्ट्रायुर्वेद की तरह ही इस विद्या के जानकार विद्यमान थे— गजवैद्याश्ववैद्याश्च नरवैद्याश्च ये नराः। वृक्षवैद्याश्च गोवैद्या ये चान्ये छेददाहकाः॥ *(ब्रह्मपुराण 44, 39)*

ऐसा लगता है कि आश्रमों-मठों में कृषिशास्त्र के पठन-पाठन की परम्परा थी। निबन्धकार लक्ष्मीधर भट्ट के कृत्यकल्पतरु (1110 ई.) के कतिपय प्रसंग बताते हैं कि जिन विद्याओं के दान को महत्वपूर्ण माना जाता था, उनमें सस्यविद्या भी थी। गुप्तकाल में सम्पादित हुए देवीपुराण नामक उपपुराण में विद्यादान की महिमा के श्लोकों को उद्धृत करते हुए माना है कि जो लोक में धर्म-अधर्म का ज्ञान करवाती हो, उस विद्या को प्रदान करने से परोक्ष-प्रत्यक्ष लाभ मिलते हैं। चार वेद, षडंग, धर्मशास्त्र सहित पुरातन (पुराण), मीमांसा, तर्कशास्त्र सहित ऐसी हजारों पराविद्याएँ हैं और आयुर्वेद, सस्यवेद जैसी विद्याएँ भी अनेक भेदों से प्रचलित रही हैं—

षडङ्गा वेदाश्चत्वारो धर्मशास्त्रं पुरातनम्।
मीमांसा तर्कमपि च एता विद्याः प्रकीर्तिताः॥
आसामेवान्तरोत्पन्नाः पराविद्याः सहस्रशः।
आयुर्वेदः सस्यवेदो वर्गभेदः प्रकीर्तितः॥ *(दानकाण्ड, पृष्ठ 208)*

यहाँ लक्ष्मीधर ने 'सस्यवेद' का अर्थ कृषिशास्त्रम् किया है। इस विद्या के लिए कहा गया है कि यह महान फल को देने वाली है, यह धर्माधर्म का प्रणयन करने वाली और धर्माधर्म की प्रसाधिका है—

सस्यविद्या च वितता एता विद्या महाफलाः।
धर्माधर्मप्रणयिनी धर्माधर्मप्रसाधिका॥ *(उपर्युक्त)*

इस विद्या के प्रदान करने से गुरु या दाता की इच्छाएँ पूरी होती हैं और वह तृप्ति को प्राप्त होता है, इसका दाता सस्यालय से सम्पन्न होता है, वह क्या नहीं पाता, शाश्वत पुण्य का अधिकारी होता है— सस्यविद्यां नरो दत्वा तृप्तिमान् कामसंयुतः॥ सस्यवेदप्रदानेन सम्पन्नाः सस्यशालयः। किं न नाम कृतं तत्र पुण्यं भवति शाश्वतम्॥ *(उपर्युक्त पृष्ठ 209-210)*

स्वतन्त्र रूप से कृषि विषयक ग्रन्थों में प्रमुख हैं— गुरुसंहिता, द्रुमचिकित्सा, वृक्षायुर्वेद, क्षेत्रतत्त्व, केदारकल्प, सस्यायुर्वेद, कृषिपराशर, उपवनविनोद, विश्ववल्लभ, वृक्षायुर्ज्ञानम् इत्यादि। गुरुसंहिता मूलतः मासफलों पर आधारित ग्रन्थ है जिसमें बादलों

के बनने और बरसने तथा उपज-निपज के फलाफल पर विचार किया गया है। कार्तिक मास में मेघों के गर्भरूप में अवतरण का फल इस प्रकार लिखा गया है कि यदि कार्तिक में मेघों का गर्भधारण होता है तो चारों ही मास पानी बरसता है और पृथ्वी पर सुभिक्ष होता है। धान्योत्पत्ति उत्तम होती है—

गार्भिके कार्तिके मासि चतुर्मासेषु वर्षति।
सुभिक्षं जायते तत्र शस्यसम्पत्तिरुत्तमा॥
(गुरुसंहिता, बनारस, 1981 ई., पृष्ठ 57, श्लोक 1)

कार्तिक और मार्गशीर्ष के संक्रमण काल में यदि वर्षा होती है तो वर्षफल मध्यम जानना चाहिए, पौष और माघ मास में वर्षा सुभिक्षकारी होती है—

कार्तिके मार्गशीर्षे च सङ्क्रमे यदि वर्षति।
मध्यमं जायते वर्षं पौषे माघे सुभिक्षदम्॥ *(उपर्युक्त श्लोक 7)*

इसी प्रकार पराशर का मत कृषिविदों के लिए ही नहीं, मुहूर्तज्ञानियों के लिए भी ज्ञातव्य रहा जिन्होंने धान्योत्पत्ति से लेकर धान्यछेदन तक की विधियों के साथ काल का अवबोध भी दिया। उड़द और मूंग के लिए पराशर ने कहा है कि इनकी फलियों को पत्तों सहित चुनना चाहिए, जौ जैसे धान्य को बालियों सहित और तिल को बाहर निकालकर ही संग्रह करना चाहिए—

सपत्रौ माषमुद्गौ च यवधान्ये सकुक्षुके।
छिन्द्यात्तिलं च निष्पन्नमेतत्पाराशरं मतम्॥ *(ज्योतिर्निबन्ध पृष्ठ 226)*

हल प्रवाह से पूर्व विघ्नों की शान्ति के निर्देश के रूप में भी मुहूर्तकारों ने पराशर के मत को उद्धृत किया है और कहा है कि यदि हल प्रवाह के समय कछुआ निकल आए तो उसके फलस्वरूप गृहिणी की मृत्यु जाननी चाहिए, इससे आगजनी भी हो सकती है। ईष के टूट जाने पर जीवन पर संकट समझना चाहिए, युग टूट जाने पर पुत्र क्षय और शिशु का मरण होता है, व्यास अंग, योक्त्र टूटने पर फसल की हानि जाननी चाहिए—

पराशरो हली चैव सर्वविघ्नोपशान्तये।
हले प्रवाह्यमाणे तु कूर्म उत्पद्यते यदि॥
गृहिणी म्रियते तस्य ततोऽग्नेश्च भयं वदेत्।
ईषाभङ्गो यदा कृष्टुः संशयो जीवितस्य च॥

सुतनाशो युगे भग्ने समाने म्रियते शिशुः।
योक्त्रच्छेदे तु व्यासङ्गः सस्यहानिश्च जायते॥ इत्यादि

(ज्योतिर्निबन्ध पृष्ठ 225)

ये ही श्लोक कृषिपराशर में किंचित पाठान्तर के रूप में मिलते हैं—

हलं प्रवहमाणं तु कूर्ममुत्पाटयेद् यदि।
गृहिणी म्रियते तस्य तथा चाग्निभयं भवेत्॥
फालोत्पाटे च भग्ने च देशत्यागो भवेद् ध्रुवम्।
लाङ्गलं भिद्यते वापि प्रभुस्तत्र विनश्यति॥
ईषाभङ्गो भवेद्वापि कृषकप्राणनाशकः।
भ्रातृनाशो युगे भग्ने शौले च म्रियते सुतः॥
योत्रच्छेदे तु रोग स्यात् सस्यहानिश्च जायते।
निपाते कर्षकस्यापि कष्टं स्याद्राजमन्दिरे॥

(कृषिपराशर, कोलकाता, 1960 ई., पृष्ठ 36-37, श्लोक 144-147)

इनके अतिरिक्त घाघ-भड्डरी की कहावतें, भड्डुलपुराण, डाक-खनारवचनम्, संवत्सरफलम्, गार्गीसंहिता, मेघप्रबोध, कादम्बिनी, वनमाला, मेघोदयविचार, मेघमाला इत्यादि ग्रन्थों में मौसम के अध्ययन की विधियाँ मिलती है, जिनका लक्ष्य मूलतः कृषि ही रहा है। इसी प्रकार मयूरचित्रकम् जैसे नारद और गर्ग रचित ग्रन्थों में भी यह विषय मिलता है। 6वीं सदी में बृहत्संहिताकार ने इस विषय को दो-दो बार लिखा है, यह इस विषय की अतिशय लोकप्रियता और अत्यधिक आवश्यकता के कारण ही हुआ है। स्वयं वराहमिहिर ने यह माना भी है और स्पष्ट किया है कि मौसम के अध्ययन के लिए विभिन्न स्थानों पर सुदक्ष दैवज्ञों की नियुक्ति की जानी चाहिए और उनके प्रेक्षण को आधार बनाकर कोई भविष्यवाणी की जानी चाहिए ताकि प्रजा को, विशेषकर किसानों को उसका सम्यक् लाभ मिल सके।

कृषि विषयक श्लोक ज्योतिर्निबन्ध में मिलते हैं जिनकी संख्या 62 होती है। इनमें वापी-कूपाद्यारम्भ से लेकर कृषि, बीजोप्ति, धान्यच्छेदन, धान्यसंग्रह, बीजसंग्रह, मेथी, धान्यस्थापन, चौर्य, द्रव्यार्पण इत्यादि विषय आए हैं। नवान्नभक्षण और वृक्षारोपणादि काल विषयक श्लोकों को मिलाया जाए तो इन श्लोकों की संख्या बढ़ सकती है। इसी के अन्तर्गत 'कृषिप्रकरण' से लगता है कि शास्त्रों में यह विषय संगृहीत किया जाता था। विधानपारिजात नामक निबन्ध ग्रन्थ में भी यह प्रकरण आया है।

'कृषिशास्त्रम्' के नाम से एक पाण्डुलिपि गिरिजाप्रसन्न मजूमदार और सुरेशचंद्र बनर्जी को मिली थीं जिसका प्रकाशन कृषिपराशर के अन्त में द एशियाटिक सोसायटी, कोलकाता ने 1960 ई. में किया था। इसमें कृषि समय निर्णय, कृषिविधि, बीजवपन विधि के अन्तर्गत मृद्रहयोग, मित्रयोग और धन-धान्य संग्रहण योग, ध्रुवादि विनियोग, रोगारम्भक योग, रोग चिकित्सा योग, सस्यरक्षा विधि, स्तम्भादि विधि से सम्बन्धित श्लोक आए हैं किन्तु अधिकांश श्लोकों का पाठ बहुत ही भ्रष्ट है, कई श्लोक अधूरे हैं। पाण्डुलिपि अधूरी ही है।

यह ग्रन्थ वज्रिन या इन्द्र प्रोक्त कहा गया है। इसमें मुहूर्त और ज्योतिष के योगायोग ही अधिक आए हैं :

अथ वज्रिन् प्रवक्ष्यामि बीजनिर्वापणाय च।
कालं सर्वामरणाश्च हितेप्सया... ... ...॥
गृहस्थाचार धर्मस्य मूलं कृषिरुदाहृतम्।
अन्येषामाश्रमाणां च गृहस्थाश्रमतः फलम्॥
तस्मात् कृषि प्रधानेन बीजनिर्वापणेन च।
नृणां पुरुषार्थसिद्धिः स्यादतस्तत्काल...॥ *(परिशिष्ट पृष्ठ 4)*

इसी प्रकार सारस्वत मुनि का भी सस्य विज्ञान विषयक कोई शास्त्र था अथवा किसी तन्त्रमूलक ग्रन्थ में कृषि कार्य सम्बन्धी निर्देश रहे होंगे। उनका दकार्गल विज्ञान तो वराहमिहिरादि ने उद्धृत किया ही है। शारदातिलक की पदार्थादर्श टीका लिखने वाले राघवभट्ट (1494 ई.) को वह प्राप्त था, उसने अपनी टीका में सारस्वत के मतों को उद्धृत किया है। बीजवपन विधान के प्रसंग में सारस्वत मुनि का मत है कि कुछ बीज रात्रि में वपन योग्य होते हैं, अतः उनका उसी काल में वपन होना चाहिए—

बीजेभ्यो दैवतेभ्यश्च स रात्रौ कान्तिमान यतः।
तस्माद् गुरुस्तु बीजानि निशायामेव वापयेत्॥ इति।
(शारदातिलक पदार्थादर्श टीका 3, 38-39)

उक्त टीका में ही अंकुरारोपण के पालिका, परई और पुरवा जैसे पात्रादि के नियम में भी सारस्वत मुनि का मत उद्धृत किया गया है और प्रमाण के लिए कहा गया है कि उस पात्र में ब्रह्मा, विष्णु, शिव का यजन करना चाहिए—

प्रोक्तेषु तेषु पात्रेषु ब्रह्मविष्णुशिवान् यजेत्। *(उपर्युक्त 3, 34-35)*

सारस्वत का यह भी कहना है कि प्रत्येक बीज के अपने-अपने देवता होते हैं। इस मत के अनुसार स्कन्द प्रियंग के, निष्पाव (राजमाष) के वायु, कुलुत्थ के अग्नि, आढ़की (तूअरी) के निर्ऋति, मूँग के सोम और तिल के वैवस्वत कहे गए हैं। इसी प्रकार शालि धान्य के प्रजापति, सर्षप के अनन्त, श्यामाक के इन्द्र और उड़द के वरुण देवता होते हैं। बुवाई के समय इन धान्यों के देवताओं की अर्चना की जानी चाहिए—

स्कन्दं प्रियङ्गौ निष्पावे वायुमग्निं कुलत्थके।
आढक्यां निर्ऋतिं सोमं मुद्गे वैवस्वतं तिले॥
प्रजापतिं शालीधान्ये त्वनन्तं सर्षपेऽर्चयेत्।
इन्द्रं श्यामे च माषे तु वरुणन्तु नगात्मजे॥ *(उपर्युक्त 3, 40)*

यह भी कहा है कि बीजों को उपयोग से पूर्व धोना चाहिए और इसके लिए पहले जल से और फिर दूध से प्रक्षालन किया जाना अपेक्षित है—

बीजानि तानि प्रक्षाल्य जलक्षीरेण च क्रमात्॥ *(उपर्युक्त 3, 38-39)*

यह भी कहा है कि यदि तन्त्रादि कार्यों के लिए बीजों की बुवाई की जाए तो उगते हुए बीजों पर किसी अन्य की दृष्टि नहीं पड़नी चाहिए। उनको ढक देना चाहिए। ऐसे स्थल पर आचार्य की आज्ञा से उसका कोई शिष्य प्रवेश पा सकता है—

प्ररूढान्यङ्कुराण्यन्यो न वीक्षेत कदाचन।
आचार्य एव प्रविशेत्तच्छिष्यो वा तदाज्ञया॥ *(उपर्युक्त 3, 42)*

पुनः कहा गया है कि जब बीज अंकुरित होने लगें तो उनके अच्छे-बुरे का ध्यान रखना चाहिए। यह कर्तव्य है। श्याम, कृष्ण अंकुरणों को रथादि से होने वाली हानि, व्याधि या हवाओं के चलने से होने वाली क्षति, मुरझाते जाना, दुखी होना, दुष्प्रभाव होना, बुरी जगह चढ़ जाना, सूखते चले जाना और अन्य रोग होने पर आठ दिनों में स्थानान्तरित किया जाना चाहिए—

प्ररूढैङ्कुरैः कर्त्तुर्निदिशेच्च शुभाशुभम्।
श्यामैः कृष्णैरङ्कुरैरर्थहानिस्तिर्यग्रूढैर्व्याधिरान्दोलितैस्तैः।
कुब्जैर्दुःखं दुष्प्ररूढैर्मृतिश्च रोगा भुग्नैः स्थानदेशेष्टहानिः॥

(उपर्युक्त 3, 46)

ऐसे ही मत 'सिद्धान्तशेखर' नामक ग्रन्थ में आए हैं। अंकुरार्पण के दौरान

सम्यक् दृष्टि रखने पर जोर देते हुए उक्त ग्रन्थकार ने व्याधियों के फलाफल पर भी विचार किया है। यजमान को बढ़त के दौरान अंकुरों का परीक्षण करते रहना चाहिए। अंकुरित होते पत्र अच्छी तरह से ऊपर उठे हुए हों, वे कोमल और श्वेत हों। यदि धूम्र वर्ण से पूर्ण हो या तिरछे हों, श्यामल हों या मुड़े हुए हों अथवा वर्जित दिशाओं में विस्तारित हों तो अशुभ विचारना चाहिए। निकले हुए पत्ते काले पड़ गए हों तो अवृष्टिकारक होते हैं, धूम्र जैसी आभा वाले हों तो कलहकारक होते हैं। अपूर्ण अंकुरण हुआ हो तो जनता का विनाश करते हैं, श्यामल अंकुरण हों तो दुर्भिक्ष के कारक होते हैं। तिरछे अंकुरण व्याधिजनक और कूबड़ अंकुर शत्रुभयकारक होते हैं। ऐसे अशुभ अंकुरार्पण को देखकर शान्तिहोम करना चाहिए। इसके लिए गुरुमूर्ति को साथ रखकर मूलमन्त्र से आहुतियाँ देनी चाहिए। अघोरास्त्र या अस्त्र विधान सहित सौ या हजार आहुतियाँ आवश्यक है—

यजमानाभिवृद्ध्यर्थं अङ्कुराणि परीक्षयेत्।
सम्यगूर्द्ध्वं प्ररूढानि कोमलानि सितानि च॥
धूम्रवर्णान्यपूर्णानि तथा तिर्यग्गतानि च।
श्यामलानि च कुब्जानि वर्जयेदशुभानि तु॥
अवृष्टिं कुरुते कृष्णं धूम्राभं कलहन्तथा।
अपूर्णं जननाशञ्च दुर्भिक्ष श्यामलाङ्कुरम्॥
तिर्यग्गते भवेद् व्याधिः कुब्जे शत्रुभयं तथा।
अशुभे चाङ्कुरे जाते शान्तिहोमं समाचरेत्॥
मूलमन्त्रेण जुहूयाद् गुरुर्मूत्तिधरैः सह।
अघोरास्त्रेण वास्त्रेण शतं वाऽथ सहस्रकम्॥ *(उपर्युक्त)*

कृषिज्ञान पर आधारित कतिपय ग्रन्थ संस्कृत सहित अन्य भारतीय प्रादेशिक भाषाओं में भी लिखे और सम्पादित किए गए हैं। इनकी सूची प्रो. गोयतिला ने प्रस्तुत की है, यह इस प्रकार है—

संस्कृत भाषा में 'कृषिविषयक', 'कृषिशासन', 'कृषिसमयनिर्णय', 'केदारकल्प', 'क्षेत्रतत्त्व', 'क्षेत्रप्रकाश' और 'सस्यानन्द'; मलयालम भाषा में 'कृषिगीता', 'कृषिचक्रण्णाल' और 'कृषिपाट्टू'; तमिल में 'तिरुकैवक्रम', 'ईरैलुपतु'; फारसी में 'नुस्खा दर फन्न-ए-फलाहत'; तेलुगु में 'सस्यनन्दमू' के नाम से मिलने वाली तीन पाण्डुलिपियां; कन्नड में लिखित आगमशास्त्र और पुराणाधारित

'कृषिज्ञानप्रदीपिका' और बांग्ला भाषा में 'छाशापाला' इत्यादि। *(हिस्ट्री ऑफ कृषिशास्त्र : गाइल वोजतिला, एक्ता एण्टीक्यूआ एट आर्कियोलॉजीका, सप्लीमेन्ट 9, स्जेग्ड, हंगारिया, 1999 ई., द्वितीय भाग, पृष्ठ 9-24)*

कृषि विषयक शास्त्रों में काश्यप मुनि का अवदान महत्वपूर्ण माना जा सकता है। काश्यप ने जिन सूक्तियों का लेखन किया, उनकी सर्वकालिक उपादेयता मानते हुए इनको ग्रन्थाकार किया गया, यह कार्य परवर्ती विद्वानों ने किया होगा किन्तु काश्यप के उपदेशों को संरक्षित करने का यह प्रयास इस विषय की अपेक्षाओं का परिणाम ही कहा जाएगा।

काश्यप के कृषि सम्बन्धी मत और काश्यपीयकृषिसूक्ति—

कृषि शास्त्रों में 'काश्यीयकृषिसूक्ति' को सर्वांगतया पूर्ण शास्त्र माना जा सकता है। यह 'काश्यपीय कृषि पद्धति' भी है। पुराणों में मरीचिनन्दन कश्यप ऋषि का विस्तृत वर्णन आता है। विष्णु इत्यादि पुराणों में उनकी अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, खसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रु और मुनि नामक स्त्रियों का उल्लेख है जो दक्षकन्याएं थीं। *(विष्णु. 1, 15, 124-125)* इन कश्यप से ही काश्यपीय वंश परम्परा का प्रवर्तन हुआ अथवा यह भी माना जाता है कि जिसका कोई गोत्र न हो, वह काश्यप लगा सकता है। भृगु, अंगिरा, वत्स, वसिष्ठ, अत्रि, भरद्वाज और कश्यप इन सात ऋषि गोत्र वालों को सामने और दाहिने शुक्र का दोष नहीं लगता है, यह ज्योतिषशास्त्र की मान्यता है। बादरायण का वचन है—

कश्यपेषु वसिष्ठेषु चात्रिभृग्वङ्गिरःसु च।
भारद्वाजेषु वात्स्येषु प्रतिशुक्रो न दुष्यति॥

(मुहूर्तचिन्तामणि पीयूष. 8, 3)

यही वचन प्रसिद्ध दैवज्ञ महेश्वरोपाध्याय का है जिसे गोविन्द दैवज्ञ सहित अन्य कई टीकाकारों ने उद्धृत किया है—

नैतेषां प्रतिशुक्रयानमशुभं ये वत्सभृग्वङ्गिरो-
भारद्वाज वसिष्ठ कश्यप कुलोत्पन्नास्तथात्रेः कुले।
दुर्भिक्षे विषये प्लवे प्रतिसितं न स्याद्विवाहे तथा
तीर्थानां गमने तथैकनगरे ग्रामेपि सौम्यस्तथा॥

(ज्योतिषवृत्तशतकम् 83)

पुराणों की मानें तो कश्यप वनस्पतिवेत्ता और वृक्षायुर्वेद के जानकार थे। वह एक पौधे से दूसरा पौधा बनाने अथवा संकर जाति उत्पन्न करने के प्रयोगात्मक ज्ञान-विशारद थे। कश्यप ने अदितिदेवी की सेवा से प्रसन्न हीकर मन्दार वृक्ष से सार निकालकर पारिजात वृक्ष का निर्माण किया। यह वृक्ष तरुश्रेष्ठ कहलाया—

मन्दारादपि वृक्षाच्च सारमुद्धृत्य कश्यपः।
तस्मादेष तरुश्रेष्ठ सर्वेषां श्रेष्ठतां गतः॥ *(हरिवंश विष्णुपर्व 67, 65)*

उन्होंने यह क्रिया उत्तर भारत में विष्णुपदी गंगा जैसी पवित्र नदी के तट पर सम्पन्न की थी। इस वृक्ष पर पुष्प मन्दार जैसे लगते थे किन्तु रचना में विशिष्टता होने से लोग इसे देखकर पूछते थे— कोऽप्ययं दारुः, अर्थात् यह कोई दारु है? यह इसी कारण कोविदार कहलाया। इससे लगता है कि कश्यप के अनुवर्तियों ने उनकी परम्परा में कृषि जैसे शास्त्र का प्रणयन किया। *(महाराणा प्रताप का दरबारी पण्डित चक्रपाणि मिश्र और उसका साहित्य : श्रीकृष्ण 'जुगनू', उदयपुर, 2004 ई., पृष्ठ 13)*

काश्यप नाम से एक विप्र का वर्णन भविष्यपुराण में आता है जो ब्रह्मावर्त में रहते थे। ब्रह्मावर्त को आज बिठुर के नाम से जाना जाता है। यह पूरा क्षेत्र था जो मुख्य रूप से गंगा का उत्तरी भाग है और बिजनौर से प्रयाग तक और उत्तर में नैमिषारण्य तक विस्तार लिए हुए है। उनकी पत्नी आर्यावती से दस पुत्र हुए जो उपाध्याय, दीक्षित, पाठक, शुक्ल, मिश्र, अग्निहोत्री, द्विवेदी, त्रिवेदी, पाण्ड्य और चतुर्वेदी थे। ये सभी अपने नामानुरूप गुणवाले थे। काश्यप के लिए कहा गया है कि वे सभी ज्ञानों से समन्वित और सभी वेदों के ज्ञाता थे और अपने ज्ञान का सभी को उपदेश करते थे। उन्होंने मिस्र तक की यात्राएँ की और बाद में सरस्वती की कृपा से आर्यदेश में निवास किया। मुनिवृत्ति में तत्पर काश्यप का जीवनकाल एक सौ बीस वर्ष रहा। *(प्रतिसर्गपर्व प्रथमखण्ड, 6, 1-12 व अन्य)* पुराण का यह वर्णन बहुत बाद का लगता है किन्तु यह प्रतीत होता है कि काश्यप नाम के किसी मुनि ने विभिन्न वेदों का प्रचार किया और सम्भवतः वह सस्यवेद के प्रचारक भी रहे हों।

प्रस्तुत ग्रन्थ और उसका रचनाकाल —

जर्मनी के वरिष्ठ कृषिविद् गाईल वोयतिला ने इसका सर्वप्रथम प्रकाशन करवाया। यह ग्रन्थ उनके सम्पादन में काश्यपीयकृषिसूक्ति (अ संस्कृत वर्क ऑन एग्रीकल्चर) के नाम से एक्ता ओरिएंतालिया एकेदमाइ शिएनतियारुम हुंग द्वारा 33वें क्रम पर फेस्क 2 में 1979 ई. में प्रकाशित हुआ। बाद में, इसी शृंखला में 39 (1) में

1985 ई. में उनका सम्पूर्ण अंग्रेजी अनुवाद निकला। इसका 1980 में एम. एस. रंधावा ने अ हिस्ट्री ऑफ एग्रीकल्चर इन इण्डिया में उपयोग किया व अनुवाद एग्रीकल्चर इन एंशिएंट इण्डिया के लिए किया। रंधावा और वोयतिला ने 1980 से 1995 तक इसका अनेक लेखादि में भी उपयोग किया। इसके उपरान्त अड्यार-चैन्नई से और 2002 ई. में एशियन एग्री-हिस्ट्री फाउंडेशन, सिकन्दराबाद से एस. एम. अयाचित कृत अंग्रेजी अनुवाद सहित इसका प्रकाशन हुआ।

प्रो. गोयतिला ने लिखा है कि संस्कृत में यह सर्वाधिक बड़ा इस विषय पर आधारित ग्रन्थ है। यह काश्यपमुनि भाषित कहा गया है और यह उन्हें भूदेवी और बाद में ब्रह्मा से मिला। इसकी एक ही मातृका मिली है जो कि अड्यार लाइब्रेरी, चैन्नई में 38, 1, 8, 63419 क्रम पर पंजीकृत है। यह तिरुपति में प्राप्त किसी मातृका से 9 दिसम्बर, 1930 को प्रतिलिपित की गई थी। इसके अतिरिक्त यह मातृका अन्य कोई सूचना नहीं देती है। हां, इसमें कृषिकोविद जैसे शब्द के संकेत से ज्ञात होता है कि इसके रचनाकाल तक कृषिपराशर अस्तित्व में आ चुकी थी। इसमें प्रसिद्ध पाकशास्त्री नल राजा का नाम आया है जो कि पौराणिक कथाओं का पात्र रहा है। *(हिस्ट्री ऑफ कृषिशास्त्र, उपरिवत्, पृष्ठ 9-10)* यह मातृका उन्हें प्रसिद्ध विद्वान प्रो. वी. राघवन ने उपलब्ध करवाई थी, जैसा कि उन्होंने उक्त ग्रन्थ की भूमिका में आभार व्यक्त करते हुए लिखा है।

इस कृति का समय-समय पर सम्पादन हुआ प्रतीत होता है। इसमें हालांकि आलू, तम्बाकू इत्यादि का उल्लेख नहीं है, इस आधार पर इसे पूर्वमध्यकाल की माना जाता सकता है। यूं भी अधिकांश सामग्री मध्यकाल की लगती है जबकि इसके आधारभूत अंश 8 वीं-9 वीं सदियों के प्रतीत होते हैं। *(वोयतिला उपर्युक्त, अनु. 39-1, 1985 पृष्ठ 85, प्रथम पाद टिप्पणी)*

यह मध्यकालीन रचना इस अर्थ में प्रतीत होती है कि इसमें किसान के लिए कृषीवल शब्द का प्रयोग हुआ है, जो आरम्भिक मध्यकालीन ग्रन्थों और अभिलेखों में प्राप्त होता है। यह ग्रन्थ हालांकि दक्षिण में पाया गया है किन्तु यह उत्तर या दक्षिण, कहीं के भी किसी धान उत्पादक क्षेत्र की रचना हो सकता है। *(भारत के प्राचीन नगरों का पतन : रामशरण शर्मा, नई दिल्ली, 1996, पृष्ठ 217 एवं 222)*

कृषिवल शब्द कोशकारों की सम्मति में 'कृषिरस्यास्ति वृत्तित्वेन इति, रजः कृष्यासुतिपरिषदो वलच्' के रूप में परिभाषित है। इसका आशय है कि जिसकी कृषि

पर आधारित जीविका हो। अमरकोशकार ने कर्षकः और कृषिजीवी पर्याय दिए हैं। *(अमरकोश 2, 9, 6)* किसानों के लिए यही शब्द इस काल के पुराणों में भी उपलब्ध होता है। इस शब्द की उपलब्धता का प्राचीन प्रमाण महाभारत में मिलता है—

कच्चिन चौरैर्लुब्धैर्वा कुमारैः स्त्रीबलेन वा।
त्वया वा पीड्यते राष्ट्रं कच्चित् तुष्टाः कृषीवलाः ॥
(महाभारत 2, 5, 77)

काश्यप के इस ग्रन्थ से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ग्रन्थकार विष्णु के प्रति आस्थावान था। इसमें 'जगन्नाथ' जैसे शब्द के प्रयोग से ज्ञात होता है कि वह भुवनेश्वर स्थित जगन्नाथ के प्रति श्रद्धालु रहा होगा—

समये भक्तिवाक्याद्यैः प्रणामादिभिरन्वहम्।
तोषयित्व जगन्नाथं प्रणीताभीष्टदायकम्॥

वैसे ग्रन्थ में एकाधिक स्थल पर शिवलिंग और दो-चार स्थलों पर ब्रह्मा का उल्लेख भी है किन्तु विष्णु के प्रति श्रद्धा की सत्ता आरम्भान्त पर्यन्त मिलती है—

भोज्यासननिविष्टाय विष्णवेऽमित तेजसे।
देवार्चनक्रमाद्भक्त्या चार्पयित्वा द्विजोत्तमः॥
शुद्धद्रव्यैः कृषिप्राप्तैः पक्वं प्रत्यहमादरात्।
वासुदेवाय कृष्णाय विष्णवे परमात्मने
ततस्त्वतिथिवर्गाय स्वकुटुम्बकाय च क्रमात्॥

ग्रन्थकार ब्रह्मा और विष्णु के विविध अवतारों की बात भी कहता है। यह मान्यता विष्णुपुराण के निकट हैं, जहां आरम्भिक अवतारों को ब्रह्मा के अंश से होना स्वीकारा गया है कि सम्पूर्ण जगत् जलमय था। प्रजापति ब्रह्माजी ने अनुमान से पृथ्वी को जल के भीतर जानकर उसे बाहर निकालने की इच्छा से एक दूसरा शरीर धारण किया। उन्होंने पूर्वकल्पों के आदि में जैसे मत्स्य, कूर्म आदि रूप धारण किए, वैसे ही वाराह कल्प के आरम्भ में वेदयज्ञमय वाराह का शरीर ग्रहण किया—

अकरोत्स्वतनूमन्यां कल्पादिषु यथा पुरा।
मत्स्यकूर्मादिकां तद्वद्वाराहं वपुरास्थितः॥ *(विष्णुपुराण 1, 4, 8)*

इस प्रसंग में काश्यप मुनि की स्वीकारोक्ति है—

धातुर्विष्णोश्चावतारभेदं ज्ञात्वा द्विजोत्तमः॥

ग्रन्थकार भूमि को भी विष्णु के कृपाश्रित देखता है। ऐसे में यह उक्त क्षेत्र से सम्बद्ध हो सकती है। वैसे देश वर्णन में गुजरात-अर्बुद तक का वर्णन करता है और कुछ अरण्य प्रदेशों का भी उल्लेख करता है किन्तु नदियों का नामोल्लेख नहीं है। ऐसे में उसके निर्देश सर्वदेशीय लगते हैं।

इसमें आढक (पीजन् पी) शब्द का बारम्बार प्रयोग हुआ है। यह आढकी, तुअर या शणपुष्पिका के लिए आया है। भावप्रकाशनिघण्टु में अरहर के पर्याय के रूप में इसका प्रयोग हुआ है और इसको कषाय तथा मधुर रसयुक्त, रूक्ष, शीतल, लघु, ग्राही, वातजनक, शरीर के वर्ण को उत्तम करने वाली एवं पित्त-कफ तथा रक्तविकार को दूर करने वाला कहा गया है— आढकी तुवरी चापि सा प्रोक्ता शणपुष्पिका॥ आढकी तुवरा रूक्षा मधुरा शीतला लघुः। ग्राहिणी वातजननी वर्ण्या पित्तकफास्रजित्॥ *(धान्यवर्ग 51-52)* इसकी खेती प्रायः सभी प्रान्तों में की जाती है, ऐसे में इसकी उपज के आधार पर स्थान की पहचान कठिन है।

इसमें जलाशयों का निर्माण कर जल का संरक्षण करने और उससे सिंचाई के लिए नहरें बनवाने पर जोर दिया गया है। यह निर्देश महाभाष्य के अनुकूल लगता है जिसमें वर्षा के जल को सुरक्षित रखने और उसको धान के खेतों में पहुँचाने के लिए लघुकाय नहरों की पद्धति के विद्यमान रहने का संकेत मिलता है : शाल्यर्थ कल्याः प्रणीयन्ते, ताभ्यश्च पानीयं पीयते उपस्पृश्य च शाल्यश्च भाव्यन्ते। *(महाभाष्य, सम्पादक-कीलहॉर्न, प्रथम, पृष्ठ 82, 276, तृतीय, पृष्ठ 39)* अभिलेखीय दृष्टि से पश्चिमी और दक्षिण पश्चिमी भारत में अनेकानेक तालाब बनवाए गए थे। रुद्रदामन का 150 ई. का जूनागढ़ अभिलेख सुदर्शन झील के इतिहास का जीवन्त साक्ष्य है जिसका निर्माण चन्द्रगुप्त मौर्य के अधीन राष्ट्रीय पुष्यगुप्त ने किया था जबकि इसके रखरखाव का जिम्मा अशोक के राज्यपाल यवन राजा तुषाष्फ पर था। नासिक गुहाभिलेख नहपान के दामाद उषवदात को तालाबों, जलाशयों का निर्माता सिद्ध करता है। नहरों का पुरातात्त्विक प्रमाण एस. पी. ताल्सतोव को खुरासान से मिला जो ईस्वी सन की पहली तीन शताब्दियों की निर्मिति मानी गई हैं।

मौर्यकालीन नहरें कुम्हरार से मिली हैं जो लगभग 45 फीट चौड़ी, 10 फीट गहरी और 450 फीट लम्बी हैं। ये नहरें सम्भवतः सोन नदी ने निकाली गई थीं। हाथीगुहाभिलेख से विदित होता है कि कलिंग में तिवससत पुरानी नहर विद्यमान थी, जिससे विदित होता है कि यह तीन सौ या एक सौ तीन साल पुरानी थी। खारवेल सिद्ध

करता है कि उसने पुरानी नहर का विस्तार किया। उसने नन्द राजा द्वारा निकाली गई नहर को अपने शासन के पांचवें वर्ष में तनशूली रास्ते से राजधानी तक खींचा था और इस कार्य पर एक लाख मुद्राएँ खर्च की थीं। बेसनगर (विदिशा) में जो पुरानी नहर मिली, वह सात फीट चौड़ी और उसकी दीवारें पाँच फीट छह इंच ऊँची थीं। नहर की एक शाखा 185 फीट 4 इंच लम्बी थी। यह नहर सम्भवतः बेस नदी तक जाती थी। *(प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास : रामशरण शर्मा, दिल्ली, 1997 ई., पृष्ठ 198)*

इस प्रकार ग्रन्थकार प्राचीन काल की परम्पराओं का सम्यक् रूप से जानकार था और ऐसे ही निर्देश उसने समकालीन राजाओं के लिए आवश्यक समझे थे। उसने नहरों के विकास पर पर्याप्त जोर दिया है और हरसम्भव नहरों के संजाल को बिछाने को एक आवश्यकता माना है। अर्थशास्त्र में सिंचाई का संक्षिप्त वर्णन है और लगता है कि मौर्यकाल में सिंचाई की दरों का निर्धारण हो गया था। सम्भवतः सीताध्यक्ष या कृषि अधीक्षक यह कार्य देखता था। मौर्योत्तरकाल में कृषि के संरक्षण के लिए स्पष्टतः कानून बनाए गए थे क्योंकि आक्रमणकारियों द्वारा खेती को नुकसान पहुँचाया जाता था। ऐसे में मनु ने राजाओं को निर्देश दिया कि वे खेती-बाड़ी के उपकरणों (सीताद्रव्यापहरणे) की चोरी करने वाले लोगों को दण्डित करें : राजा दण्डं प्रकल्पयेत्। अफलदायी बीजों को अच्छा बताकर बेचने वाले, दूषित बीजों की बिक्री, पहले बोये हुए बीजों को निकालने वालों और खेत-ग्रामादि की सीमाओं को सूचित करने वाले चिह्नों को नष्ट करने वालों को अपराधी मानकर विकृत वध से दण्डित किया जाना चाहिए। *(मनुस्मृति 9, 291-293)*

काश्यप का ग्रन्थ निश्चित ही राजाश्रय में लिखा गया प्रतीत होता है क्योंकि इसमें राजनीति के अंग रूप में कृषि विषयक नीति निर्धारण करने का योग्य निर्देश है। ग्रन्थकार वर्णव्यवस्था का समर्थक और विप्रों के प्रति आदरसूचक कथन करता है। ऐसे में उसका इसी वर्ग से सम्बद्ध होना भी सूचित होता है। यह भी माना गया है कि रचनाकार वैष्णवों के वैखानस मत का अनुयायी होना चाहिए जिसकी एक सुदीर्घ परम्परा रही है। यह ग्रन्थ वैखानस वांगमय से सम्बद्ध रहा है।

वोयतिला ने टी. गोयुड्रिआन और जी. चोलाज से बातचीत के आधार पर यह माना है। गोयुड्रिआन ने माना है कि यह रचना पहली सहस्राब्दि दूसरी सदी के मध्य में रची गई होगी किन्तु यह कहना कठिन ही है। *(हिस्ट्री ऑफ कृषिशास्त्र, उपरिवत्, पृष्ठ*

10) रंधावा ने कोसल क्षेत्र में अरण्यों के विकास के संकेत के आधार पर माना है कि यह ग्रन्थ पांचवीं और दसवीं सदी के बीच कभी लिखा गया होगा।

इस ग्रन्थ में जलस्रोत के रूप में वापियों का महत्व दिखाया गया है। वापी अर्थात् सीढ़ी वाले कुओं का उपयोग, निर्माण विधान इसी कालावधि में बहुत लोकप्रिय हुआ, विशेषकर गुजरात और राजस्थान में। वापी शब्द मूलतः संस्कृत के 'वप' से व्युत्पन्न होता है, जिसका अर्थ बुवाई होता है। इनका निर्माण खेतों के बीच उपयुक्त माना गया है ताकि सिंचाई के लिए इनका उपयोग हो सके। कूप में विद्यमान जलराशि तक शीघ्र और सुगमता तक पहुंचा जा सके, इसी उद्देश्य से वापियों का निर्माण हुआ लगता है, जैसा कि डॉ. कुसुम सोलंकी ने अपने ग्रन्थ 'भारतीय बावड़ियां' में भी कहा है।

यह अवधि ग्यारहवीं से तेरहवीं सदी मानी जा सकती है। दिल्ली के महरौली क्षेत्र में दसवीं-ग्यारहवीं सदियों की वापियां मिली हैं। राजस्थान-गुजरात में एक मुख से लेकर चतुर्मुख वाली वापियों का निर्माण कार्य हुआ और इनके निर्माण की विधियां भुवनदेवाचार्य कृत 'अपराजितपृच्छा' से लेकर 'विश्वकर्मीय ज्ञानप्रकाशदीपार्णव' तथा परवर्ती 'राजवल्लभवास्तुशास्त्रम्', 'वास्तुमण्डनम्', 'वास्तुसारमण्डनम्' और 'विश्ववल्लभ' इत्यादि में भी लिखी गई हैं। माना तो यह जाता है कि वापियों के निर्माण की विधि शक लेकर आए थे। इसीलिए वापियों के लिए 'शकन्धु' और 'कर्कन्धु' जैसे पर्याय शब्दकोशों में मिलते हैं किंतु गुजरात के धोलावीरा आदि स्थानों पर हुए उत्खनन में सीढ़ीदार जलस्रोत मिले हैं, जो इस विधि को भारतीय ही सिद्ध करता है।

यह आश्चर्य ही है कि इस ग्रन्थ के उद्धरण अन्य किसी एतद्विषयक ग्रन्थ या निबन्ध रचनाओं में देखने में नहीं आए। इस प्रकार यह अछूता क्यों रहा, ज्ञात नहीं। काश्यप के नाम से कई श्लोक वराहमिहिर कृत 'बृहत्संहिता' की विवृत्ति में उत्पलभट (780-870 ई.) ने उद्धृत किए हैं किंतु उनमें इस ग्रन्थ के श्लोक नहीं हैं। तथापि यह अवश्य ज्ञात होता है कि काश्यप के किसी ग्रन्थ में कृषि-वृक्षायुर्वेद विषयक मान्यताएं लिखी जा चुकी थीं। ये मान्यताएं इस प्रकार हैं—

दूर्वावीरणसंयुक्ताः सानूपाः मृदुमृत्तिकाः।
तत्र वाप्याः शुभा वृक्षाः सुगन्धिफलशाखिनः॥

(सविवृत्तिबृहत्संहिता 55, 2)

अर्थात्— दूर्वा, वीरण उगाने वाली, जलयुक्त, मुलायम मिट्टी हो तो वहाँ पर

शुभ वृक्षों को लगाना चाहिए। इन वृक्षों में सुगन्ध वाले, फल वाले और अनेक शाखाओं वाले होने चाहिए ताकि छाया भी मिले।

अशोकचम्पकारिष्टपुन्नागश्च प्रियङ्गवः।
शिरीषोदुम्बराः श्रेष्ठाः पारिजातकमेव च॥
एते वृक्षाः शुभा ज्ञेयाः प्रथमं तांश्च रोपयेत्।
देवालये तथोद्याने गृहेषूपवनेषु च॥ *(उपर्युक्त 55, 3)*

अर्थात् — प्रासादों-देवालयों के आसपास की भूमि, उद्यान और घर के बगीचे में सर्वप्रथम अशोक, चम्पक, अरिष्ट, पुन्नाग, प्रियंगु (ककुनी या कौनी), सरस, गूलर, पारिजात आदि शुभ वृक्षों को लगाया जाना चाहिए।

काश्यप ने वृक्षों के कलम लगाने की विधि का वर्णन भी किया है। उन्नत या संकर नस्ल के फल प्राप्त करने के लिए यह विधि लोकप्रिय थी और कृषिविदों को इसकी सलाह दी जाती थी—

द्राक्षातिमुक्तको जम्बूबीजपूरकदाडिमाः।
कदलीबहुलाशोकाः काण्डरोप्याश्च वापयेत्॥
अन्येऽपि शाखिनो ये च पुष्पिताः फलितास्तथा।
गोमयेन प्रलिप्ताश्च रोपणीया विवृद्धये॥ *(उपर्युक्त 55, 4-5)*

अर्थात्— अंगूर, अतिमुक्तक, जामुन, बीजपूरक, दाड़िम, केला, बहुला, अशोक की बुवाई के लिए उनके काण्डों का रोपण किया जाना चाहिए। इनकी शाखाओं को अन्य वृक्षों पर लगाया जाना हो तो उनके पुष्पागमन और फलागमन काल को देखना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि उनको गोबर से प्रलिप्त करें ताकि वे रोपे जाने के साथ ही वृद्धि को प्राप्त होने लगें।

वृक्षों का रोपण कब, किस काल में किया जाए, काश्यप ने इसके लिए स्पष्ट किया है—

अजातशाखा ये वृक्षाः शिशिरे तांश्च रोपयेत्।
जातशाखाश्च हेमन्ते रोपणीया विधानतः।
सुस्कन्धाः शाखिनो ये तान् प्रावृट्काले तु रोपयेत्॥ *(उपर्युक्त 55, 6)*

अर्थात्— जिन वृक्षों की शाखाएं नहीं फूटी हों, उनको शिशिर अर्थात् माघ और फाल्गुन में लगाया जाना चाहिए। जिनकी शाखाएँ निकल आई हों, उन वृक्षों को

हेमन्त ऋतु के दौरान लगाएँ। जिनके अच्छे स्कन्ध हों, उनको वर्षाकाल (श्रावण, भाद्रपद) में लगाया जाना उचित होता है।

वाटिकाओं और खेतों में वृक्षों को रोपने का नियम भी काश्यप ने दिया है—

घृतं क्षीरं तथा क्षौद्रमुशीरतिलगोमयैः।
विडङ्गलेपनं मूलात् सङ्क्रामणविरोपणम्॥ *(उपर्युक्त 55, 7)*

अर्थात्— यदि वृक्षों को स्थानान्तरित करना हो तो उनको उखाड़ने के बाद मूल में घी, दूध, शहद, खस, तिल का तेल मिला गोबर अवश्य लगाएँ। इनके साथ ही वायविडंग के चूर्ण का लेपन करना भी लाभदायक होता है।

उद्यानादि में पेड़-पौधों को लगाने में कितनी दूरी रखी जाए, इस सम्बन्ध में काश्यप ने उत्तम, मध्यम और अधम नाम से रोपणीय स्थितियाँ बताई हैं—

अन्तरं विंशतिर्हस्ता वृक्षाणामुत्तमं स्मृतम्।
मध्यमं षोडश ज्ञेयमधमं द्वादश स्मृतम्॥ *(उपर्युक्त 55, 12)*

अर्थात्— दो वृक्षों के बीच अन्तराल बीस हाथ रखना उत्तम कहा गया है। एक-दूसरे के बीच सोलह हाथ की दूरी को मध्यम और बारह हाथ का अन्तराल अधम जानना चाहिए।

रोपे गए अथवा उगे हुए वृक्षों में व्याधियाँ होने पर काश्यप ने उचित उपाय भी सुझाए हैं—

शाखाविटपपत्रैश्च छायया विहिताश्च ये।
येऽपि पर्णफलैर्हीना रूक्षाः पत्रैश्च पाण्डुरैः॥
शीतोष्णवर्षवाताद्यैर्मूलैर्व्यामिश्रितैरपि।
शाखिनां तु भवेद्रोगो द्विपानां लेखनेन च॥ *(उपर्युक्त 55, 14)*

अर्थात्— कई बार वृक्षों की शाखाएँ और पत्ते छाया में आ जाते हैं अर्थात् कुम्हालाए हुए दिखाई देते हैं। यह भी हो सकता है कि वृक्ष पत्तों और फल से रहित हो जाते हैं, सूख जाते हैं या पत्ते पीले पड़ जाते हैं। अधिक सर्दी, अधिक गर्मी, अधिक वर्षा, अधिक हवाएं चलने जैसे कारणों अथवा मिले-जुले कारणों से ऐसा होता है। ऐसे में वृक्षों को रोगग्रस्त जानकर उनकी लिखाई का कार्य करना चाहिए।

चिकित्सितेषु कर्तव्या ये च भूयः पुनर्नवाः।
शोधयेत्प्रथमं शस्त्रैः प्रलेपं दापयेत्ततः॥

कर्दमेन विडङ्गैश्च घृतमिश्रैश्च लेपयेत्।
क्षीरतोयेन सेकः स्याद्रोहणं सर्वशाखिनाम्॥ *(उपर्युक्त 55, 15)*

अर्थात्— रोगी वृक्षों की हर सम्भव चिकित्सा की जानी चाहिए ताकि वे पुनः नवीन या आरोग्य वाले हो जाएँ। इसके लिए सर्वप्रथम रोग वाले वृक्षों के सम्बन्धित अंग की शस्त्र से छिलाई करें और उस पर प्रलेपन कार्य करें। इसके लिए कीचड़ में वायविडंग और घी का प्रयोग करें। इसके उपरान्त दूध मिश्रित जल से सिंचाई करें तो सभी शाखाएं पुनः आरोहित होने लगती है।

वृक्षों की उचित अभिवृद्धि के लिए उर्वरक-खाद के प्रयोग का निर्देश करते हुए काश्यप का कहना है—

अजाविकानां द्वौ प्रस्थौ शकृच्चूर्णं च कारयेत्।
तिलानामाढकं दद्यात् सक्तूनां प्रस्थमेव च॥
गोमांसशतमेकं स्याद्द्वे सार्धे सलिलस्य च।
सप्ताहमुषितैरेतैः सेकं दद्याद्वनस्पतेः॥
स भवेत्फलपुष्पैश्च पत्रैश्चाङ्कुरितैर्वृतः॥ *(उपर्युक्त 55, 17-18)*

अर्थात्— वृक्षों को खाद देना चाहिए। खाद के रूप में भेड़-बकरियों की मेंगनी का चूर्ण दो प्रस्थ (लगभग 2 किलो) प्रमाण लें। तिल एक आढ़क (4 किलो), सतुआ एक प्रस्थ (1 किलो) प्रमाण लें। इसके अतिरिक्त सौ पल (6.400 किलो) के प्रमाण गोमांस और उसका ढाई गुणा (13 किलो) पानी लें। इन सब वस्तुओं को एक सप्ताह तक भरकर रखें और फिर वनस्पति के जड़ों की सिंचाई करें। इस प्रयोग से पेड़-पौधों पर फल-फूल, पत्तों का अंकुरण इस तरह होता है कि वे उनसे लकदक दिखाई देने लगते हैं।

कहना न होगा कि पराशर, काश्यप, मनु, अगस्त्यादि ऋषियों ने सस्य एवं वृक्षविज्ञान में प्रयोग प्रारम्भ किए और पृथ्वी को सस्यश्यामला बनाए रखने तथा कृषि को वृत्ति के रूप में विकसित करने में योगदान किया। इसी प्रकार वृक्ष-गुल्मायुर्वेद के क्षेत्र में विशेष अध्ययन-अनुसन्धान करते हुए आश्रयद्रुम, मिश्रित द्रुम, सङ्करद्रुम जैसे विचार ही नहीं दिए वरन् ऐसे प्रायोगिक चमत्कार भी सृष्टि के सम्मुख रखे। इस प्रकार उद्भिज विद्या अथवा वृक्ष-विज्ञान का उद्भव हुआ एवं विकासक्रम को निरन्तरता मिली। कालान्तर में मानव एवं अन्य जीवनोपयोगी प्राणियों की चिकित्सा विधियों के साथ ही साथ द्रुम व्याधि, निदान व उपचार की विधियाँ भी खोजी गईं। सस्य और

वृक्षायुर्वेद इसी चिरन्तन चिन्तन का सुविचार है। इसी चिन्तन की एक महत्वपूर्ण कड़ी है काश्यपीय कृषि पद्धति अथवा काश्पीय कृषि सूक्ति। यह सम्पूर्ण रूप से सस्य विज्ञान का ग्रन्थ है और इसमें काश्यप की कृषि परम्परा को सोदाहरण, युग-युगीन आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए अक्षुण्ण रखने का प्रयास किया गया है।

अन्न से ही सभी उत्पन्न होते हैं, पोषित और प्राणवान होते हैं। अन्न ही प्राणों का बल है और समस्त पुरुषार्थों का साधक है, न देवता न दानव और न मनुष्य ऐसे हैं कि अन्न के बिना जीवन की सुरक्षा कर सकें, अतः अन्न ही जीवनाधार है और कृषि उसके लिए साधन है—

अन्नं प्राणां बलं चान्नमन्नं सर्वार्थ साधनम्।
देवासुर मनुष्याश्च सर्वे चान्नोपजीविनः॥ *(कृषिपराशर 6)*

*****

विषयानुक्रमणिका

*****

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

काश्यपमुनिप्रणीत

॥ काश्पीयकृषिपद्धति ॥

(अपरनाम काश्पीयकृषिसूक्तिः)

॥ धान्यादिकृषिक्रमकथनम् प्रथमोभागः ॥

तत्र शास्त्रोपदेशक्रमः

तत्रादावेव तदारम्भप्रयोजनप्रदर्शनार्थमाह —

धर्मवित् क्षत्रियो राजा प्रजारक्षाधुरन्धरः।
दण्डयित्वाथ दण्ड्यांस्तु सत्यं धर्मं च सर्वतः॥ १ ॥
स्थायित्वा विशेषेण वर्णाश्रमरतानपि।
प्रजाः सुप्तकृतिः काले पोषयेत् देवतुष्टये॥ २ ॥

प्रजा की रक्षा में तत्पर, धुरन्धर क्षत्रिय शासक को धर्म एवं वित्त की साधना के उद्देश्य से सर्वत्र सत्य एवं धर्म पर जोर देना चाहिए और इनसे विमुख जनों को अवश्य ही दण्ड के प्रावधान के अनुसार दण्डित करना चाहिए। शासक को विशेषकर वर्णाश्रम आधारित व्यवस्था की स्थापना पर ध्यान देना चाहिए, यदि ऐसे साधन के लिए प्रजाजन सुप्त रहते हैं तो उन्हें सजा का प्रावधान करें और देवतुष्टि के लिए सनातन प्रबन्ध को प्रोत्साहित करना चाहिए।

देवाश्च यक्षगन्धर्वाः पितरो मुनयश्च ये।
ये चान्ये मख-होमादि क्रियार्हा संप्रकीर्तिता॥ ३ ॥
तत्प्रीणनम् तु यजनैः देवयज्ञं विदुर्बुधाः।

देव, यक्ष, गन्धर्व, पितृगण और मुनियों ने विभिन्न यज्ञ, होमादि क्रियाओं का प्रवर्तन और निर्देश किया है। जो अपने-अपने वर्ण, धर्म के अनुकूल कार्यों को पसन्द करते हैं, उसके अपनाने का परामर्श देते हैं, उनके हेतु देवयज्ञ का निर्देश है।

अथ नानायज्ञनामानि —

प्रजानामतिथीनां च प्रीणनं भोजनादिभिः॥ ४॥

धेन्वादिप्रीणनं काल्यं भूतयज्ञं प्रकीर्तितम्।
ऋषियज्ञादयो ये च निर्दिष्टा मुनिभिः क्रमात्॥ ५॥
वेदविद्या दानजपादानैस्तत्प्रीणनं मतम्।

आगन्तुकों, अतिथियों को भोजनादि प्रदान करना, उन्हें देवतुल्य माना जाना और गो आदि पशुओं को तुष्ट करना भूतयज्ञ कहा गया है। इसी प्रकार मुनियों ने उन कर्मों को ऋषियज्ञ कहा है, जिसके अन्तर्गत वेदादि विद्याओं का पठन-पाठन, दान-पुण्य, जप आदि किया जाता है।

देवभूतश्च यज्ञार्थनिर्देशः —

अतो यज्ञेषु सर्वेषु देवयज्ञः प्रधानकः॥ ६॥
द्वितीयो भूतयज्ञस्तु तन्निदानं मतं मम।
तस्मात्सर्वेषु देशेषु भूमीशो रक्षणव्रती॥ ७॥
देवयज्ञं भूतयज्ञं द्वयमेव प्रपालयेत्।
शुद्धद्रव्यैर्देवयज्ञः सफलः कथितो बुधैः॥ ८॥

काश्यप मुनि कहते हैं कि इन समस्त ग्राह्यकर्मों में देवयज्ञ श्रेष्ठ है। इसके बाद भूतयज्ञ का स्थान है, ऐसा मेरा मानना है। तथापि सभी देशों में प्रजा रक्षा का व्रत धारण कर रखा है, उन्हें इन दोनों ही देवयज्ञ एवं भूतयज्ञ का प्रजा से उचित प्रकार से पालन करवाना चाहिए। देवयज्ञ शुद्धद्रव्यों का प्रयोग किए जाने से सफल होता है, ऐसा बुद्धिमानों का कथन है।

तदर्हद्रव्यमाद्यं तु सस्यादिः परिकीर्तितः।
सस्योदयफला भूमिः धृता वाराहरूपिणा॥ ९॥

प्रारम्भिक स्रोतों में सस्य-धान्यादि द्रव्यों के विषय में बहुत कहा गया है। ये सब धान्य व फल इसी पृथ्वी से उत्पन्न होते हैं[१] जिसे कि वराह रूपेण विष्णु ने धारण किया है।[२]

---

१. अथर्ववेद के अन्तर्गत पृथ्वीसूक्त में भूदेवी की बड़ी महिमा आई है। उसे सर्वफलदात्री माता तुल्य आदर दिया गया है। वैदिक ऋषि कहते हैं कि जिस पृथ्वी पर देवनिर्मित अनेक गांव है, जिस पृथ्वी के खेत नाना प्रकार की वस्तुओं को निपजाते हैं और जो पृथ्वी संसार को धारण करने वाली हैं, उस पृथ्वी की समस्त दिशाएँ प्रजाति हमारे लिए रमणीय बनाएँ। गुहों में रत्नों की खान को धारण करती हुई पृथ्वी हमें धन, पद्मरागादि मणि और सुवर्ण प्रदान करें। धन को देने वाली हर्षध्वनि करती हुई वह पृथ्वी प्रसन्न होकर हमें नाना प्रकार के अन्न-धन दें— यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते। प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां न कृणोतु॥ निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथ्वी ददातु मे। वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना॥ (अथर्ववेद १२, १, ४३-४४)

२. विष्णुपुराण के प्रोक्ता पराशर का मत है कि विष्णु का मूर्तरूप जल है, उससे पर्वत और समुद्रादि के सहित

अथ धरित्र्योद्धारमाह —

विष्णुना भूष्णुना पूर्वं पातालजलपाततः।
सम्प्रार्थितस्तया देव्या देवः शार्ङ्गी परः पुमान्॥ १०॥

पूर्वकाल में यह पृथ्वी जल मग्न थी। वराहावतार काल के दौरान विष्णु ने पाताल लोक से इस पृथ्वी का उद्धार किया था। तब पृथ्वी ने शार्ङ्गधनुषधारी भगवान् विष्णु की प्रिया लक्ष्मी आदि देवियों ने आराधना, प्रार्थना की थी।

अधुना वसुन्धरामाहात्म्यमाह —

हर्षेण भूम्या महात्म्यमवदत्सुरसन्निधौ।
रत्नादिधारणात् गर्भे रत्नगर्भा वसुन्धरा॥ ११॥

पृथ्व्योद्धार के समय (लक्ष्मी ने) ईश्वर से पृथ्वी के गुणों के विषय में बताना शुरू किया कि यह पृथ्वी अपने गर्भस्थल में मूल्यवान रत्नादि द्रव्यों को धारण करती है और इसी गुण के कारण वह रत्नगर्भा वसुन्धरा कही जाती है।

धान्यादीनामोषधीनां जलानां प्रस्त्रवादपि।
धरा तु मेदिनी ख्याता प्राणिनां प्राणवर्धिनी॥ १२॥

यह पृथ्वी धान्य, ओषधियाँ उत्पादित करती है, इसलिए यह मेदिनी नाम से भी विख्यात् है। इसके अन्तस्थ में जल प्रस्त्रवण होने से यह नाना जीवन, प्राणियों के प्राणों का वर्द्धन करने वाली है।

द्विपदा ये चतुष्पादाश्चाण्डजा विविधास्तु ये।
ते सर्वे प्राणिवर्गास्तु मेदिन्याः सारवैभवात्॥ १३॥

दो पाँवों से लेकर चार पाँवों तक योनियों वाला जो (अण्डज, पिण्डज, स्वेदज और जरायुज) जीव चराचर है, वे सभी प्राणीमात्र को इस मेदिनी का सार वैभव कहा जाता है।

प्राप्तसत्वाः प्राणधराः जीविनो निश्चिता भुवि।
पन्नगानां तथान्येषां द्विपदां च चतुष्पदाम्॥ १४॥

पृथ्वी अपनी जीवनसृजन धर्म से नाना प्राणियों को निश्चय ही उत्पन्न और उनका विकास करती है। पृथ्वी से ही द्विपद, चतुष्पद जीवधारियों को जीवन जीने की शक्ति उपहार स्वरूप मिलती है।

कमलाकार पृथ्वी उत्पन्न हुई : यदम्बु वैष्णवः कायस्ततो विप्र वसुन्धरा। पद्माकारा समुद्भूता पर्वताब्ध्यादि संयुता॥ (विष्णुपुराण २, १२, ३७)

भरणात् प्राणदानाच्च देवप्रीतिश्च शाश्वती।
सत्य धर्माचरणकं चतुर्वर्ग फलात्मकम्॥ १५॥

पृथ्वी के इन गुणों के कारण ही ईश्वर उस पर सदैव प्रीति रखते हैं। वे यहाँ के निवासियों को सत्यनिष्ठ, धर्माचरण की ओर उन्मुख करते हुए चतुर्वर्ग का फल प्रदान करते हैं।

ततः सृष्टिस्तु सफला तेन मोदति सृष्टिकृत्।
अतः सस्यं धरा प्राणः धराया वृत्तिरुत्तमा॥ १६॥

इस प्रकार सृष्टिकर्ता सदैव मुदित, प्रसन्न रहते हैं और प्रकृति को सुन्दरता, प्रदान करते हैं। धरा की धारणीय प्राण शक्ति श्रेष्ठ है। उसके द्वारा उपजाया जाने वाला सस्य-धान्य प्राण का आधार है।

माङ्गलिकधान्यादीनां —

माङ्गल्यसूत्रं च तथा सस्यमाहुर्दिवौकसः।
सस्यादिरेव मेदिन्याः जीवनाडी कलात्मिका॥ १७॥

देवताओं ने पृथ्व्योत्पन्न धान्य, धागे को माङ्गलिक सूत्र कहा है। इस पर होने वाला धान्य एवं शाक जीवनाड़ी अथवा जीवनदायिनी है, वे पृथ्वी पर जीवनतत्त्व का निर्माण करने वाली हैं।

सस्यादिरेव मेदिन्याः परोधर्मः परं यशः।
सस्यपूर्णा वसुमती प्राणीनां प्राणवर्धिनी॥ १८॥

सस्यादि की पैदावार समस्त पृथ्वी की समग्र श्रेष्ठ आकांक्षाओं की पूर्ति करने वाली कही गई है। यह सस्यपूर्णा वसुधा समस्त जीवधारियों के जीवन की वृद्धि का आधार होती है।

सर्वमङ्गलदात्री च देवानां तुष्टिदायिनी।
नित्यसस्या च मधुरजलस्त्रावा विशेषतः॥ १९॥

यह पैदावार उन समस्त मंगल को प्रदान करने वाली है, जिनसे कि समस्त देवताओं की तुष्टि-सन्तुष्टि होती है। यह विशेष रूप से नित्य सस्या होने और अपने अङ्क पर मधुर जलस्रोतों को प्रवाहित करने के कारण स्मरणीय है।

शोभते सर्वतः पृथ्वी विष्णोराज्ञावलम्बिनी।
विष्णुना पालिता भूमिः जननी प्राणसन्ततेः॥ २०॥

पृथ्वी सभी गुण-धर्मों के कारण सभी ओर से शोभित होती है। यह विष्णु की आज्ञाओं[1] का अवलम्बन करने वाली है। इसीलिए विष्णु ही इस पृथ्वी और जननी रूपा पृथ्वी की समस्त सन्ततियों का पालन करते हैं।[2]

पोषयित्री चाद्यमाता पुष्टिदा तुष्टिदा तथा।
रत्नगर्भा परं नित्यं सर्वरक्षणकारिणी॥ २१॥

---

१. पद्मपुराण में पृथ्वी को घोड़ा, रथ और भगवान् विष्णु द्वारा आक्रान्त कहा गया है। उससे इसी कारण क्षमायाचना की गई है : अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे। मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥ (सृष्टिखण्ड अध्याय ४६)
ब्रह्मवैवर्तपुराण में विष्णुप्रोक्त पृथ्वीस्तोत्र आया है, जिसमें भूदेवी की महिमा श्रेष्ठतापूर्वक प्रतिपादित की गई है—
यज्ञसूकरजाया त्वं जयं देहि जयावहे। जयेऽजये जयाधारे जयशीले जयप्रदे॥ १॥ अर्थात्— विजय देने वाली वसुधे! मुझे विजय प्रदान कीजिए। तुम यज्ञवराह विष्णु की भार्या हो। जये! तुम्हारी कभी पराजय नहीं होती। तुम विजयाधार, विजयशील और विजयप्रदायिनी हो।
सर्वाधारे सर्वबीजे सर्वशक्तिसमन्विते। सर्वकामप्रदे देवि सर्वेष्टं देहि मे भवे॥ २॥ अर्थात्— देवि! तुम्ही सब की आधारभूमि हो। सर्व बीज स्वरूपिणी तथा सम्पूर्ण शक्तियों से सम्पन्न हो। समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली देवि! तुम इस संसार में मुझे समस्त अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करो।
सर्वशस्यालये सर्वशस्याढ्ये सर्वशस्यदे। सर्वशस्यहरे काले सर्वशस्यात्मिके भवे॥ ३॥ अर्थात्— तुम सभी प्रकार के शस्यों का निवास हो। सब तरह के शस्यों से सम्पन्न हो। सभी शस्यों को प्रदान करने वाली हो तथा समय विशेष में सभी शस्यों का अपहरण भी कर लेती हो। इस संसार में तुम सर्वशस्यस्वरूपिणी हो।
मङ्गले मङ्गलाधारे मङ्गल्ये मङ्गलप्रदे। मङ्गलार्थे मङ्गलेशे मङ्गलं देहि मे भवे॥ ४॥ अर्थात्— मंगलमय देवि! तुम मंगल का आधार हो। मंगल के सर्वथा योग्य हो। मंगलदायिनी हो। मंगलमय पदार्थ तुम्हारे स्वरूप है। हे मंगलेश्वरि! तुम जगत् में मुझे मंगल प्रदान करो।
भूमे भूमिपसर्वस्वे भूमिपालपरायणे। भूमिपाहङ्काररूपे भूमिं देहि च भूमिदे॥ ५॥ अर्थात्— भूमे! तुम भूमिपालों का सर्वस्व हो, भूमिपाल परायण हो तथा भूमिपालों के अहंकार का मूर्त स्वरूप हो। भूमिदायिनी देवि! मुझे भूमि दीजिए।
इदं स्तोत्र महापुण्यं तां सम्पूज्य च यः पठेत्। कोटिकोटि जन्मजन्म स भवेद् भूमिपेश्वरः॥ ६॥ अर्थात्— [हे नारद] यह स्तोत्र परम पवित्र है। जो व्यक्ति पृथ्वी का पूजन करते हुए इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसे जन्म-जन्म तक राजा बनने का सौभाग्य मिलता है।
भूमिदानकृतं पुण्यं लभते पठनाज्जनः। भूमिदानहरात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः॥ ७॥ अर्थात्—इस स्तोत्र का पाठ करने वाले व्यक्ति पृथ्वी के दान से होने वाले पुण्य का अधिकारी बन जाता है। पृथ्वीदान के अपहरण से जो पाप होता है, इस स्तोत्र का पारायण करने से व्यक्ति उससे मुक्त हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है।
भूमौ वीर्यत्यागपापाद् भूमौ दीपादिस्थापनात्। पापेन मुच्यते प्राज्ञः स्तोत्रस्य पाठनान्मुने। अश्वमेधशतं पुण्यं लभते नात्र संशयः॥ ८॥ अर्थात्— हे मुने पृथ्वी पर वीर्यस्खलन और दीपादि रखने से जो पाप होता है, उससे भी ज्ञानवान पुरुष इस स्तोत्र का पाठ करने से मुक्त हो जाता है। इससे सौ अश्वमेध यज्ञों के करने का पुण्यलाभ भी होता है। (ब्रह्मवैवर्तपुराण प्रकृतिखण्ड)

२. विष्णुपुराण में आया है कि विष्णु ही ब्रह्मारूप से विश्व की रचना करते हैं, फिर उसके स्थित हो जाने पर विष्णु रूप से पालन करते हैं और अन्त में रुद्ररूप से संहार करते हैं— ब्रह्मत्वे सृजते विश्वं स्थितौ पालयते पुनः। रुद्ररूपाय कल्पान्ते नमस्तुभ्यं त्रिमूर्तये॥ (विष्णुपुराण १, १९, ६६)

यह पृथ्वी समस्त प्राणियों का पोषण करने वाली अनादि माता है। वह पुष्टि और तुष्टि प्रदान करती है। वह परम रत्नगर्भा है तथा नित्य सबकी रक्षाकारिणी है।

मेदिन्यास्वरूपः —

पर्वतोतुङ्गवक्षोजा पयोधिरशना तथा।
समुद्रमुक्ताभूषाढ्या देवी राजति शार्ङ्गिणः॥ २२॥

यह पृथ्वी विष्णुप्रिया है, यह शार्ङ्गधनुप से युक्त होकर शोभायमान है। उसके उत्तुङ्ग पर्वत ऐसे शोभायमान हैं जैसे कि उसके वक्ष हों, ये समुद्र उसकी करधनी हैं तथा समुद्रीमुक्ता उसके आभूषण हैं।

सूर्यचन्द्राग्निदीपेयं मन्दमारुतवीजना।
विशालवनसंचारा पृथिवी विष्णुवल्लभा॥ २३॥

पृथ्वी विष्णुवल्लभा अथवा भगवान् विष्णु की प्रिया है।[१] सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि उसके आलोककर्ता हैं, मन्द समीर उसके पक्ष या पँखें हैं। विशाल वनखण्ड अनुपम संचरण स्थल है।

सर्वंसहा राजतेऽत्र दिक् चक्ररचितस्थितिः।
तामेतां वसुधां कृत्सनां कृपियोग्यस्थलोज्ज्वलाम्॥ २४॥
नानादेपेपु विभजेत् नानाकारां महीपतिः।

सर्व सहनशील पृथ्वी चारों दिशाओं वाले चक्र की परिधि में अवस्थित है। वह सुन्दरतम है, उस पर कृषि के उज्ज्वल नाना स्थल हैं। शासकों को चाहिए कि इस पृथ्वी को कृषियोग्य स्थलों के अनुसार विभाजित करें।

॥ इति काश्यपकृषिसूक्तौ प्रथमभागौद्यौशास्त्रोपदेशक्रमः प्रथम कथनम्॥ १॥

इस प्रकार काश्यपीय कृषि सूक्ति के प्रथम भाग के अन्तर्गत शास्त्रोपदेश क्रम नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

*****

---

१. अन्यत्र भी पृथ्वी को विष्णुपत्नी कहा गया है— समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डिते। विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥ भविष्यपुराण में आया है कि पृथ्वीमाता लोकों को धारण करने वाली है, उसे विष्णु ने धारण किया है— पृथ्वि त्वा धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता॥ त्वं च धारय मां नित्यं पवित्रमासनं कुरु। (मध्यमपर्व २, २०, २३-२४)

अथ द्वितीय कथनम्

॥ गिरिनदीनदवनसार क्षेत्रादि भेदेन सस्यार्ह भूमिविभजनक्रमः ॥

अथ क्षेत्रभेदाः काश्यप उपदिशति —

पयोधिसंवृता भूमिरियमासृष्टिसर्वतः।
ब्रह्मणा तु विधात्रासा निर्मिता हि समस्थला॥ २५॥

अपने निर्माण के आरम्भिक काल से ही यह पृथ्वी सभी दिशाओं से समुद्रों से आवृत्त है। कल्प के आदि में सृजनकर्ता ब्रह्मा ने विभिन्न स्थलानुसार इस भूमि की रचना की है।

फलप्रदात्री विविधा कल्पेषु विविधेष्वपि।
श्लाघिता देव-गन्धर्व-मुनि-भूपालवृन्दकैः॥ २६॥

यह भूमि नाना कल्पों में विविध फलों का उत्पादन करने वाली रही है। देवताओं, गन्धर्वों, मुनियों और अनेकानेक राजाओं के समूहों ने इसकी प्रशंसा की है।[१]

अत्रैव भूम्योत्पत्ति —

प्राप्तसत्त्वफला भूमिः प्रतिकल्पं च भाविता।
कृचिन्निमग्ना वाराशिजलपूरेषु भूरियम्॥ २७॥

---

१. पृथ्वीसूक्त में इन शब्दों में पृथ्वी की प्रशंसा की गई है कि हे पृथ्वी! तुमसे सम्बन्धित क्षुद्र पर्वत, हिमयुक्त हिमालयादि महापर्वत और जंगल सभी हमारे लिए सुखकारी हों। परमेश्वर से पालित विस्तीर्ण भूमि जो कि स्वभावतः कहीं पिंगलवर्ण वाली, कहीं श्याम वर्ण वाली और कहीं रक्तवर्ण वाली हैं, उस पृथ्वी पर हम अजित, अक्षत होकर निवास करें। हे पृथ्वी! तुम्हारा जो मध्यस्थान तथा सुगुप्त नाभिस्थान एवं तुम्हारे शरीर सम्बन्धी जो पोषक अन्नरसादि पदार्थ हैं, उनमें हमें धारण करो और हमें शुद्ध करो। भूमि हमारी माता है, हम पृथ्वी के पुत्र हैं। मेघ हमारे पिता या पालक हैं, वे हमारी रक्षा करें। जिस पृथ्वी पर यज्ञ होते हैं और यूपादि स्तम्भ गाड़े जाते हैं, वह पृथ्वी धन-धान्यों से समृद्ध होकर हमें धन-पुत्रादि प्रदान कर समृद्ध करें — गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवी स्योनमस्तु। बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्। अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम्॥ यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः सम्बभूवुः। तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु॥ यस्या वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः। यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात्। सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना॥ (अथर्ववेद १२, १, ११-१३)

नाना फल सत्वों को प्रदान करने वाली भूमि प्रत्येक कल्प में अपने गुणों के कारण सराही गई है। पूर्वकाल में यह महासमुद्र की विपुल जलराशि में निमग्न रहती थी, समुद्र से ही इसका निकास हुआ है।

क्वचित् तथा समुद्रेण व्यक्तस्वान्तप्रदेशका।
क्वचिन्निर्भिण्णनाडीच कालभेदने कल्पतः॥ २८॥

किसी काल में समुद्र ने उच्च शिखर कन्दराओं, स्वान्त प्रदेशवाली भूमि का त्याग किया था और तदनन्तर एक कल्प में ऐसी भूमि भी समुद्र के अङ्क से निकली जो ऋतुओं और काल के अनुसार उपयुक्त सिद्ध हुई।

निम्नोत्तमादीनां भूमिप्रकारा —

सारासारस्त्रवणयुता निम्ना चोन्नतरूपिणी।
गिरिभिः संविभक्ताच नदीभिश्च क्वचित्स्थले॥ २९॥

यह भूमि सारासार स्त्रवणयुक्त अथवा कठोर और कमजोर होती है। कहीं से यह निम्न तो कहीं ऊँचाई लिए हुए है। कहीं पर्वतों तो कहीं पर नदियों ने इसके विभिन्न प्रदेशों का विभाजन किया है।

नदेन सारभूम्या च ह्रदेन महतापि च।
क्वचित् शर्करारूपा च क्वचिदत्युष्णरूपिणी॥ ३०॥

कहीं-कहीं यह समुद्रीय भूमि है तो कहीं पर समतल है, कहीं-कहीं बृहत् सरोवरों ने इसका विभाजन किया है। इसी प्रकार यह कहीं-कहीं कङ्कड़-पत्थरों वाली हैं तो कहीं-कहीं पर उष्ण स्वभाव वाली है।

क्वचित् जलविहीना च जातेयं वसुधा क्रमात्।
क्वचिदूषररूपा च क्वचित् बीजविनाशिनी॥ ३१॥
एवं बहुविधा जाता मेदिनीयं प्रकीर्तिता।

यह भूमि कहीं-कहीं जलाभाव वाली है तो कहीं-कहीं क्षारीय या ऊसर भी है। इसी प्रकार कहीं-कहीं यह भूमि फसलोत्पादन तो दूर, बीज तक का विनाश करने वाली भी है। इस प्रकार प्रकृति ने पृथ्वी को बहुविध स्वरूप दिया है।

अतो महीपतिः सर्वप्राणिपालन दीक्षितः॥ ३२॥
सस्याभिवृद्धये भूमिं परीक्षेत सुलक्षणाम्।

प्रजा का हित चिन्तन करने वाले महीपति को सस्यौपज की समृद्धि के आधार पर भूमि का लाक्षणिक परीक्षण करना चाहिए।

अथ भूमिदोषान् —

अस्थिपाषाणखण्डाद्यैः हीनां मृदुलमृत्तिकाम्॥ ३३॥

उपयोग से पूर्व भूमि के विभिन्न दोषों पर विचार करना आवश्यक है। भूमि को शल्यदोष[१], पाषाण खण्डों से रहित कर, मुलायम मिट्टी युक्त करना चाहिए। मृदु मिट्टी वाली भूमि उपयोगी होती है।

भूगुणानाह —

सुस्निग्धामल्परक्तां च कृष्णवर्णां तथैव च।
तुषकाचविहीनां च सारां रससमुज्ज्वलाम्॥ ३४॥

भूमि सुस्निग्ध या चिकनाई वाली होनी चाहिए। हल्की लाल, कृष्णवर्ण वाली मिट्टी, तुष या भूसा, काँच से रहित, सारयुक्त तथा रसदार एवं साफ-स्वच्छ भूमि अच्छी होती है।

न श्वभ्रयुक्तां नागाधां नोत्तुङ्गां च समस्थलाम्।

---

१. वास्तुशास्त्रों में शल्यदोष पर पर्याप्त विचार किया गया है।) भूमिशोधन के लिए ज्योतिर्निबन्धकार का कथन है कि दैवज्ञ को चाहिए कि वह सर्वप्रथम अपने इष्टदेवता का स्मरण कर प्रश्न पूछने वाले के प्रथम अक्षर को जाने और भूमि में शल्य है अथवा नहीं, इस पर सम्यक् रूप से विचार करें। शल्य के विषय में जो भी पूछने आए, उसके मुख से अ, क, च, ट, त, प, य, ह प य— ये अ तथा वर्गों के आद्य अक्षर उच्चरित हों तो वे ही पूर्व दिशा से लेकर मध्यस्थान तक शल्य बताने वाले होते हैं : स्मृत्वेष्टदेवतां प्रश्नर्वचनस्याऽऽद्यमक्षरम्। गृहीत्वा तु ततः शल्याशल्यं सम्यग्विचार्यते॥ (ज्योतिर्निबन्ध पृष्ठ १६६, १५-१६)
कहा गया है कि यदि प्रश्नकर्ता अ वर्ग के अक्षर से प्रश्न प्रारम्भ करे तो पूर्व दिशा में डेढ़ हाथ नीचे मनुष्य का शल्य कहना चाहिए, ऐसा होना मृत्युकारक होता है। यदि क वर्ग से प्रश्न हो तो आग्नेय कोण में दो हाथ नीचे गर्दभ का शल्य गड़ा हुआ है, ऐसा होने पर प्रशासन से दण्ड-जुर्माना हो सकता है और इस भय का निवारण नहीं होगा। यदि च वर्ग से प्रश्न किया जाए तो दक्षिण की ओर कटि पर्यन्त गहराई पर नरशल्य कहे, ऐसा होने पर गृहपति की लम्बी बीमारी के बाद निधन होगा। यदि ट वर्ग से प्रश्नारम्भ हो तो नैर्ऋत्य दिशा में भूमितल से डेढ़ हाथ नीचे कुत्ते की हड्डी दबी है, ऐसा कहे और ऐसा होने पर वहाँ मृत शिशुओं का जन्म होगा। यदि प्रश्नकर्ता त वर्ग के अक्षर से प्रश्न प्रारम्भ करे तो पश्चिम दिशा में डेढ़ हाथ नीचे शिशु का शल्य बताना चाहिए। ऐसा होने पर गृहस्वामी कभी उस घर का उपभोग नहीं करता, वह प्रवास पर ही रहता है। यदि प्रश्न प वर्ग के अक्षर से प्रारम्भ हो तो वायव्य कोण में चार हाथ नीचे भूसा एवं कोयले का शल्य कहना चाहिए। ऐसा होने से मित्र का विनाश एवं निरन्तर बुरे सपने दिखाई देंगे। यदि प्रश्नकर्ता य वर्ग के अक्षर से प्रश्न का प्रारम्भ हो तो उत्तर दिशा में आधी कटि नीचे विप्र का शल्य कहना चाहिए। ऐसा होने से वहाँ निवास करने वाला शीघ्र ही निर्धनत्व को प्राप्त हो जाएगा, चाहे वह कुबेर ही क्यों न हो। यदि प्रश्न श वर्ग के अक्षर से पूछा गया हो तो ईशान कोण में चार डेढ़ हाथ नीचे गाय का शल्य कहना चाहिए। ऐसा हुआ तो वहाँ रहने पर गोधन का विनाश तो होगा ही, अपरञ्च गृहपति भी दुःखी होगा। यदि प्रश्न ह प य वर्ग से पूछा गया हो तो भूमि के मध्य में वक्ष तक की गहराई पर मनुष्य की खोपड़ी, केश, भस्म, लोहा आदि दबा बताना चाहिए। ऐसा हुआ तो वहाँ रहने पर समूचे कुल का उन्मूलन हो जाता है। (तुलनीय वास्तुरत्नावली, द्वितीय अध्याय)

मल्लिकाजातिकुटज सुरागन्धसमुज्ज्वलाम्॥ ३५॥

कृषियोग्य भूमि की परीक्षा करते समय ध्यान रखना चाहिए कि वह छिद्रों वाली न हो, न तो बहुत गहरी हो न ही बहुत ऊँची अथवा उबड़-खाबड़ हो। भूमि इकसार या समस्थला हो। उससे मल्लिका, चमेली, कुटज और सुरा जैसी गन्ध आती हो तथा उज्ज्वल हो।[1]

अथवा पद्मखर्जूरतिनिशप्रसवक्रमाम्।
अपीतसलिलां शश्वत् पीतोदकजलामपि॥ ३६॥

भूमि की परीक्षा वहाँ पर उत्पन्न पद्म या कमलदल, खर्जूर, तिनिश के अनुसार क्रमशः श्रेष्ठता से की जानी चाहिए। वह पानी से सन्तृप्त अथवा बारम्बार सिंचाई से सन्तुष्ट होने वाली न हो तथापि कभी-कभार ऐसा हो भी सकता है।

शीघ्राङ्कुरणोपाय —

बीजवृद्धिकरीं वेगात् सीतासौख्यप्रदायिनीम्।
वृषफेनाक्तकां वापि सत्वजन्तुसमन्विताम्॥ ३७॥

शीघ्र बीजोत्पत्ति के लिए और हल के फाल से आसानी से जोतने के लिए निर्धारित भूमि पर वृषभ के मूत्र का छिड़काव किया जाना चाहिए अथवा वहाँ पर उपयोगी चौपायों को बाँधकर रखना चाहिए।[2]

अकण्टकां करीषादिहीनां च निविडा घनाम्।
तोलनेऽधिक भाराढ्यामोषधीवृद्धिदामपि॥ ३८॥

भूमि अकण्टकी और करीषादि से हीन, निविड़ा तथा दृढ़ता वाली हो तथा

---

१. हयशीर्षपञ्चरात्र में ऐसे ही कतिपय गुणों पर विचार हुआ है। कहा गया है कि आवासादि के योग्य भूमि वह है जहाँ पर गायें क्रीड़ा करती हों, उनके साथ बछड़े और बैल हों तथा वहाँ सुन्दरियों के साथ अच्छे व्यक्तियों का निवास हों। ऐसी भूमि जिससे काश्मीरी केसर, चन्दन, कर्पूर और अगरु की गन्ध आती हों, कमल व लालकमल की गन्ध आती हों, चमेली व चम्पा के पुष्पों की गन्ध आती हों, पाटल पुष्प व मल्लिका के कुसुमों की गन्ध आती हों, नागकेशर की गन्ध आती हों, दही और दूध सहित घृत की गन्ध आती हों, जिससे मदिरा और आसव की गन्ध निकलती हों, व्रीहि धान्य की गन्ध देने वाली और अन्य सुगन्धव्यापिनी धरती सभी वर्णों के लिए साधारणतः ग्रहण करने योग्य होती हैं— सुरभीणां रतिर्यत्र सवत्सानां वृषै सह। सुन्दरीणां रतिर्यत्र पुरुषैः सह सत्तम॥ काश्मीरचन्दनामोद कर्पूरागरुगन्धिनी। कमलोत्पलगन्धा च जातिचम्पकगन्धिनी॥ पाटलामल्लिकागन्धा नागकेशरगन्धिनी। दधिक्षीराज्यगन्धा च मदिरासवगन्धिनी॥ सुगन्धिव्रीहिगन्धा च शुभगन्धयुता च या। सर्वेषामेव वर्णानां भूमिः साधारणी मता॥ (शारदातिलक पदार्थादर्श टीका, ३, १९)

२. भूमि परीक्षा के प्रसंग में ऐसे उपाय बृहत्संहिता, मानसार, मयमतम् में दिए गए हैं। प्रयोगसार, महाकपिल पञ्चरात्र जैसे तन्त्र ग्रन्थों में भी ऐसे निर्देशात्मक उद्धरण मिलते हैं।

तौलने पर भारी लगे तो वह चिकित्सकीय पौध अथवा ओषधियों के लिए वृद्धिकारक होती है।

अथ भूमिवर्णा —

ब्राह्मणक्ष्मां क्षत्रभूमिं वैश्यभूमिं तथैव च।
शूद्रभूमिं क्वचिद्देशे सङ्कीर्ण गुण भूमिकाम्॥ ३९॥

भूमि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा कहीं-कहीं सङ्कीर्णता से शूद्र भी होती है। ये संज्ञाएँ गुणों के आधार पर निर्धारित की गई है।[1] इसके मिश्रित गुण भी हो सकते हैं।

मेदिनीपञ्चभेदाः —

एवं पञ्चविधां जात्या विभक्तां विमलोदकाम्।
अन्तःसारयुतां बाह्यसारामपि च कल्पकीम्॥ ४०॥

इसी प्रकार भूमि को परत भेदानुसार पाँच प्रकार से बाँटा जा सकता है— सार, निर्मल जल, अन्तःसारयुता, बाह्यसारयुता, कल्पकी अथवा जो मानवों को पुष्टि प्रदान करने वाली हो।

शुभाशुभगुणामाह —

नयनानन्दजननीं वल्मीकादिविवर्जिताम्।
दुष्टसत्वविहीनां च सत्वपक्षिनिवेशिनीम्॥ ४१॥

भूमि नयनों में आनन्द की जननी हो, दीमक वल्मीक तथा हानिकारक जन्तुओं, कीटों, दुष्ट जीवों से रहित हो। इसी प्रकार उजाड़ करने के हेतु भूमि पक्षियों के निवास वाली भी नहीं होनी चाहिए।

वातवेगेन (वेगेन्त?) वात्या वा वह्निवेगेन वा पुनः।
अपीतसलिलामन्तर्निष्कुटोद्यानवृद्धिदाम् ॥ ४२॥

---

१. महाभारत में चारों वर्णों की भूमि का यही नामकरण रंगों के अनुसार किया गया है- ब्राह्मणां सितो वर्ण क्षत्रियणां तु लोहितः। वैश्यानां पातको वर्णः शूद्राणामासितस्तथा॥ (महा. शान्तिपर्व २८८, ५) इसी प्रकार महाकपिलपञ्चरात्र में आया है— श्वेता तु ब्राह्मणी पृथ्वी रक्ता वै क्षत्रिया स्मृता। वैश्या पीता च विज्ञेया कृष्णा शूद्रा प्रकीर्तिता॥ ब्राह्मणी घृतगन्धा स्यात् क्षत्रिय रसगन्धकृत्। क्षीरगन्धा भवेद् वैश्या शूद्रा विङ्गन्धिनी क्षितिः॥ मधुरा ब्राह्मणी भूमिः कषाया क्षत्रिया स्मृतां। वैश्या तिक्ताऽथ विज्ञेया शूद्रा स्यात् कटुका मही॥ ब्राह्मणी भूः कुशोपेता क्षत्रिया स्याच्छराकुला। कुशकाशाकुला वैश्या शूद्रा सर्वतृणाकुला॥ सिता पीता तथा रक्ता कृष्णवर्ण समन्विता। स्थिरोदका दृढा स्निग्धा भूमिः सर्वसुखावहा॥ शीतस्पर्शोष्णकाले च वह्निस्पर्शा हिमागमे। वर्षासु चोभयस्पर्शा सा शुभा परिकीर्तिता॥ (शारदातिलक पदार्थादर्शटीका ३, १९)

कृषि भूमि व्यापारिक हवाओं या वातवेग की दिशा में नहीं होनी चाहिए। न ही वात्या या भँवरीय, चक्रीय हवाओं और अग्निवेग की दिशा में हो अर्थात् वहाँ अग्निभय नहीं होना चाहिए। वह पानी को सोखने वाली न होकर ऐसे बगीचे और उद्यान के योग्य हों जिनको आवास के पास ही लगाया जाता है।

प्रच्छायभूरुहां वृद्धिदायिनीं वाल्पनिम्नकाम्।
नाना बीजावली वृद्धि कारिणीं च मुहुर्मुहः॥ ४३॥

कृपियोग्य भूमि पर प्रचुर वृक्षावली नहीं होनी चाहिए। भूमि समृद्धि प्रदायक हो और अल्प प्लवा के साथ ही नाना बीजावली की उत्पादिका एवं वृद्धिकारिणी होनी चाहिए।

मृदुस्पर्शां च नितरां गोप्रियां गोधनप्रियाम्।
शुभलक्षणसंयुक्तामल्पदोषामपि क्वचित्॥ ४४॥

सस्य योग्य भूमि के लिए यह विचारणीय है कि वह स्पर्श करने पर मृदु लगे। गायों व अन्य मवेशियों को प्रियकर लगती हो। भूमि शुभ लक्षणों वाली होनी चाहिए तथापि उसमें अल्प कमियाँ हो सकती हैं।

सुलभोदकनिस्रावां सुलभस्वीकृतोदकाम्।
एवं लक्षणसंयुक्तखल भूमिवृतां क्वचित्॥ ४५॥
वसुधां भूपतिर्वीक्ष्य गृह्णीयादुत्तमामिह।

भूमि के पास नित्य जलस्रोत सुलभ होने चाहिए और भूमि में जल को स्वीकृत करने का गुण हो। ऐसे लक्षणों से संयुक्त होने पर उसे खेतों, खलिहानों के लिए ग्राह्य करना चाहिए। राजा को चाहिए कि वह शुभ लक्षणों वाली भूमि को देखकर उसे कृषियोग्य भूमि के रूप में अधिगृहीत करें।

भूपरीक्षाविदपरीक्षा —

भूपरीक्षाक्रविदो गुणाढ्या नृपचोदिताः॥ ४६॥

भूमि की शुभाशुभता की परीक्षा के लिए ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त किया जाना चाहिए जो कि गुणों, लक्षणों के आधार पर उसका वर्गीकरण करने की पर्याप्त दक्षता रखते हों।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वापि विशः शूद्रास्तु वा पुनः।
दकार्गल (दगार्गल!) प्रमाणज्ञाः कृषिशास्त्रविशारदाः॥ ४७॥

भूमिविद् चाहे ब्राह्मण हो, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र हो, उनके लिए यह भी

आवश्यक है कि वे दकार्गल[1] अर्थात् भूमिगत जलानुसन्धान की विधियों के ज्ञाता हों और कृषिशास्त्र विशारद भी होने चाहिए।

परीक्षणार्थ शुभाशुभनिमित्तम् —

परीक्षयेयुः भूमिं तु शुभे शुभनिमित्तके।
स्नातः शुचिः शुद्धवासाः धृतस्वर्णोङ्गुलीपकः ॥ ४८ ॥

जब (कृषिकार्य या पौधरोपणादि के निमित्त) किसी भूमि की परीक्षा करनी हो तब भूमिविद् को चाहिए कि वह शुभ दिवस देखें, शुभ निमित्त या शकुन का अवलोकन करें और स्नानादि से शुद्ध होकर शुद्ध परिधान धारण करें। अङ्गुली में स्वर्ण की अंगूठी धारण करें।

निर्दिष्टां भूमिमासाद्य कुर्यात् तत्र प्रदक्षिणम्।
सहमङ्गलघोषेण स्वस्तिवान कोविदः ॥ ४९ ॥

इसके बाद वह भूमिविद् निर्धारित स्थान पर जाएँ और वहाँ की परिक्रमा करें। इस अवधि में साथ में किसी कोविद, ब्राह्मण द्वारा स्वस्तिवाचन, मङ्गलघोष किया जाना चाहिए।

सायंकालेऽथवा प्रातः ब्राह्मणैर्वेदपारगैः।
पञ्चगव्येन शुद्धेन सलिलेनाथवा पुनः ॥ ५० ॥

इस कार्य में वेदवेत्ता या ब्राह्मण को काल शुद्धि के लिए सायंकाल अथवा सुबह का समय लेना चाहिए। निर्धारित स्थान को जल व पञ्चगव्य अथवा दूध, दही, घी, मूत्र एवं गोबर से शुद्ध किया जाना चाहिए।

खनित्रेणापि तुलया टङ्कयापि क्वचित् बुधः।
भूमिं परीक्षयेत् खात्वा निरीक्ष्य च मुहुर्मुहः ॥ ५१ ॥

---

१. वराहमिहिर का मत है कि जिस विद्या के ज्ञान से भूमि के अन्दर उपलब्धि जल का बोध होता है, उस धर्म और यश को प्रदान करने वाली विद्या दकार्गल है, उसके बारे में कहा जाता है। मनुष्य के शरीर में जिस प्रकार नाना अंग और नाड़ियाँ हैं, उसी तरह इस पृथ्वी के पेटे में भी ऊँची-नीची शिराएँ हैं। आकाश से केवल एक ही वर्ण वाला, एक ही स्वाद वाला जल पृथ्वी पर बरसता है परन्तु यही जल पृथ्वी की विशेषता से उक्त स्थान में एकाधिक रस और स्वाद वाला हो जाता है। इस तरह भूमि के वर्ण और रस के समान जल के रस और वर्ण होते हैं। अतएव किसी भी स्थान, उसके वर्ण और रस के आधार पर ही वहाँ के जल के रस और स्वाद का भौतिक सत्यापन किया जाना चाहिए : धर्म्यं यशस्यं च वदाम्यतोऽहं दकार्गलं येन जलोपलब्धिः। पुंसां यथाङ्गेषु शिरास्तथैव क्षितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्थाः ॥ एकेन वर्णेन रसेन चाम्भश्च्युतं नभस्तो वसुधाविशेषात्। नानारसत्वं बहुवर्णतां च गतं परीक्ष्यं क्षितितुल्यमेव॥ (बृहत्संहिता ५४, १-२)

इस विधि के बाद वहाँ पर तुला या टङ्क अथवा कुदाल से खुदाई करनी चाहिए और इसके अनन्तर भूमिविद् को बार-बार भूमि की गुणधर्मिता का निरीक्षण, परीक्षण करना चाहिए।

जलेनपरीक्षणविधय: —

आघ्राय पीत्वा च मृदुं तोलयित्वापि वा क्वचित्।
क्षिप्त्वा पात्रस्थसलिले घटिकावधि कोविदः॥ ५२॥

भूमिविद् को चाहिए कि वह उक्त भूमि के जल की जाँच करें। वह उसकी गन्ध को जाने, पीकर उसके मृदुत्वादि को जाने। उक्त जल की भारीयता को जाने। पानी को एक पात्र में भरकर एक घटी के लिए रखें।

वर्णबिन्दुरसस्त्रावैः विद्यात् भूम्याश्च लक्षणम्।
समवर्णा समच्छाया घना स्निग्धा च भूरपि॥ ५३॥

इसके बाद उस पानी के अच्छे-बुरे रंग को देखें, उसके बिन्दुओं पर ध्यान केंद्रित करें, रस व स्राव गुण का परीक्षण भी करें। इन्हीं आधार पर उस भूमि के लक्षणों को जानना चाहिए अर्थात् इस जल से भूमि की समवर्णता, समच्छाया, सघनता, स्निग्धता को समझना चाहिए।

देवानामपि भूपानां प्रशस्ता मुनिनिश्चिता।
ब्राह्मणानां विशां चापि क्षेमदा वृद्धिदायिनी॥ ५४॥

इस प्रकार जाँची गई योग्य भूमि को ज्ञानियों ने देवताओं, ईश्वर के लिए अति उत्तम निर्धारित किया है। यह भूमि ब्राह्मण, वैश्यों के लिए क्षेमदा और अभिवर्द्धनीय कही गई है।

शुभलक्षणसंयुक्ता सर्वेषां शुभदा धरा।
कुटुम्बारोग्यदा शश्वत् धनगोधान्यवृद्धिदा॥ ५५॥

शुभ लक्षणों से युक्त भूमि सभी के लिए शुभकारक होती है। वह निखिल कुटुम्ब के लिए आरोग्यदायिनी, समृद्धि, धन, गो, धान्यादि को बढ़ाने वाली होती है।

निर्दिशेदुत्तमां भूमिं मध्यमामपि वा क्वचित्।
अधमां वर्जयेत् यत्नात् भूमिलक्षणपण्डितः॥ ५६॥

भूमि की ग्राह्यता के लिए विचारणीय है कि वह (आवश्यकतानुसार) निर्देश्य, उत्तम, मध्यम एवं अधम प्रकार की होती है। सदैव उत्तम भूमि को ही ग्रहण

करना चाहिए। मध्यम भूमि को भी कभी-कभी ले लेना चाहिए किन्तु भूमिलक्षणज्ञ पण्डित को अधम भूमि के अधिग्रहण से बचना ही श्रेयस्कर होता है।

कृषियोग्या भूमिरियमुद्यानायेयमादृता।
वनाय भूरियं प्रोक्ता जलाधाराय निश्चिता॥ ५७॥

यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि भूमि के कृषियोग्य, उद्यान योग्य, वन योग्य और जलधारा या जलस्रोत योग्य— ये चार स्वभाव भी होते हैं। ये क्रमशः खेती-बाड़ी, बाग या आराम, वन या अभयारण्य तथा जलाशयों के लिए उपयुक्त होती है।

इयं भूमिरिति प्रोक्ता चतुर्था च स्वभावतः।
इति भूमिं शुभे काले निर्दिशेच्च नृपाज्ञया॥ ५८॥

पूर्वानुसार भूमि के ये चार स्वभाव कहे गए हैं। इस प्रकार की भूमियों का राजाज्ञाओं से शुभकाल में निर्धारण, अधिग्रहण किया जाना चाहिए।

स्थलविभागनिर्देश्य —

सीमास्थलविभागश्च कर्तव्यो भूमिमिच्छता।
ग्रामेष्वपि च देशेषु दुर्गेषु नगरेष्वपि॥ ५९॥

भूमि की इच्छा रखने वालों अथवा भूमिपतियों को अपनी भूमि के सीमा स्थल का विभाजन कर देना चाहिए। यह विभाजन ग्राम, देश, दुर्ग अथवा नगरानुसार किया जा सकता है।

प्रासादान्तस्तु वा भूमिं कृष्युद्यानादियोग्यकाम्।
निर्दिशेन्मतिमान् युक्त्या नानाक्षेत्रस्वरूपवित्॥ ६०॥

एक मतिमान् भूलक्षणाधिकारी को भूमि के उक्त प्रकारों, स्वभावों की जानकारी होनी चाहिए। उसे विशेष सावधानी के साथ भूमि का वर्गीकरण, विभाजन करना चाहिए। इस वर्गीकरण में प्रासादानन्तर कृषि, उद्यान-विहार आदि क्षेत्र स्वरूपों को भी दृष्टिगत रखना चाहिए।

जलस्वरूपवित् प्राज्ञः प्राणिनां सुखसिद्धये।

एक ज्ञानी जलस्वरूपविद् को प्राणियों के सुख की सिद्धि का सदैव ध्यान रखना चाहिए।

॥ इति काश्यपकृषिसूक्तौ प्रथमभागे गिरिनदीवनसारक्षेत्रादिभेदेन
सस्यार्ह भूमिविभजनक्रम द्वितीय कथनम्॥ २॥

इस प्रकार काश्यपीय कृषि सूक्ति के प्रथम भाग के अन्तर्गत पर्वत, नदी, वन, उपजाऊ क्षेत्र आदि के भेद और उपज योग्य भूमि के विभाजन क्रम का द्वितीय कथन पूर्ण हुआ॥ २॥

*****

अथ तृतीय कथनम्

॥ भूम्यां जलाधारस्थापनक्रमकथनम्॥

अथ ग्रामदुर्गपुरादीनां काश्यप उपदिशति —

प्रमाणज्ञैः शिल्पीवर्यैः शास्त्रपारङ्गतैर्नृपः।
कारयेत् ग्रामनिर्माणं दुर्गाणां च पुरामपि॥ ६१॥

मुनि काश्यप अब जलस्रोतों के निर्माण के लिए निर्देश करते हैं कि शासक को चाहिए वह ग्रामनिवेश, दुर्गनिर्माण, पुर निवेश जैसे कार्यों को योग्य प्रमाणज्ञ, शिल्पियों तथा शास्त्रों में पारङ्गतजनों के हाथों ही करवाएँ।

वनमध्ये नदीतीरे गिरिसानुतटेऽथवा।
स्वदेशेष्वपि राष्ट्रेषु तत्रतत्र विशेषतः॥ ६२॥

निर्माण एवं स्थापना से पूर्व यह ज्ञातव्य है कि शासक को अपने देश या राज्य हेतु वनखण्ड के मध्य, नदियों के किनारों, पर्वतों की तलहटी क्षेत्र का चयन करना चाहिए।[१]

आभीरपल्लीं घोषं च व्रजं वा गोधनाश्रितम्।
तथा क्षुद्रग्रामजालं स्थापयेत् सुमुहूर्तके॥ ६३॥

ऐसे चयनित स्थानों पर राजाओं को पशुचारकों के लिए आभीरपल्ली (अहीर

---

१. मत्स्यपुराण में आया है कि जहाँ पर्याप्त रूप से घास होती हों, ईंधन मिलता हो, जो स्थान रमणीय हो, पड़ोसी राजा विनयशील हो, वैश्य और शूद्र लोग अधिक मात्रा में रहते हों, जो शत्रुओं द्वारा हरण किए जाने योग्य न हो और कुछ विप्रों तथा अधिकांश कर्मकरों से भरापूरा हो, देवस्थान रहित सुन्दर हो, अनुरक्तों से युक्त हो, जहाँ के निवासी कर इत्यादि के भार से पीड़ित न हों, पुष्प और फल की बहुतायत हो, आपत्ति के समय वह वासस्थल शत्रुओं के लिए अगम्य हो, जहाँ लगातार समान रूप से राजा के सुख-दुःख के भागी और प्रेमीजन रहते हों, जो सर्प, बाघ और तस्करों से रहित हो तथा सरलतापूर्वक उपलब्ध हो, इस प्रकार के देश में राजा को अपने सहायकों-सामन्तों सहित निवास सुनिश्चित करना चाहिए। (मत्स्यपुराण २१७, १-५)

पाली), गोष्ठ (गोठां), चरणोट भूमि या बाड़ा[१] एवं गोशाला के साथ ही लघु गाँवों, खेटक-खेड़ों या पल्लियों-पालों की स्थापना करनी चाहिए। इसके लिए शुभमुहूर्त देखा जाना चाहिए।

वापीकूपार्थनिर्देश —

वापी-कूपसमायुक्तमुद्यानादि विभूषितम्।
सस्यक्षेत्रावृतं कार्यं नियमेन महीपतिः॥ ६४॥

एक शासक को अपने अधीनस्थ गाँवों को वापी या बावली, कुओं और सुन्दर उद्यान, आरामादि से युक्त करना चाहिए। इनके चतुर्दिक कृषियोग्य क्षेत्र या खेती की भूमि रखनी चाहिए।

सस्यार्हाप्राणाधारः —

ग्रामाणां नगराणां च पुराणामपि सारभूः।
सस्यार्हा कथिता प्राणः जीवनम् चोत्तमं तथा॥ ६५॥

शासक को अपने प्रत्येक गाँव, नगर और पुरों की योग्य कृषि भूमि को अनाजोत्पादन के लिए रखना चाहिए। धान्य उत्तम है और वह हमारे जीवन के लिए प्राणधन है।

प्राणनाडीति गार्ग्यश्च प्रोवाच वदतां वरः।
सस्यार्हक्षेत्रसंयोगादेव सर्वत्र शाश्वतम्॥ ६६॥

जैसा कि मुनिश्रेष्ठ गार्ग्य ने भी कहा है कि अनाज का प्रत्येक दाना हमारे लिए प्राण-नाड़ी के समान है। पुरातन काल से ही सर्वत्र कृषियोग्य क्षेत्र का होना आवश्यक माना गया है।

ग्रामादिनिर्माणफलं कथितं मुनिपुङ्गवैः।
प्राणिरक्षा च नितरां पुरुषार्थफलं तथा॥ ६७॥

कृषि भूमि के आधार पर ही ग्राम, नगर, पुरादि के निर्माण व स्थापना की

---

१. चरणोट या गोचरभूमि की पुराणों में बड़ी महिमा आई है। भविष्यपुराण में गोचरभूमि के उत्सर्ग का विधान आया है। इसके लिए आए मन्त्र में कहा गया है कि गोचरभूमि शिवलोक स्वरूप होती है, चूंकि गोलोक तथा गौएँ सभी देवताओं से पूजित होती हैं, इसलिए कल्याण की कामना से इस गोचर भूमि का गौओं के लिए दान किया जाता था— शिवलोकस्तथा गावः सर्वदेवसुपूजिताः॥ गोभ्य एषा मया भूमिः सम्प्रदत्ता शुभार्थिना। (भविष्यपुराण मध्यमपर्व ३, २, १२-१३)

सफलता निश्चित करती है, मुनिवरों का ऐसा मत है। ये क्षेत्र ही प्राणियों की रक्षा करते हैं और उनके जीवन के पुरुषार्थ चतुष्ट्य को सफल करते हैं।

देवतुष्टिर्यज्ञफलं सृष्टेश्च फलमुत्तमम्।
सजीवस्य हि लोकस्य प्राणरक्षाकरी भृशम्॥ ६८॥

देवताओं की तुष्टि यज्ञ का फल होती है (और वह भी सस्य क्षेत्र से ही सम्भव हो सकता है), वह सृष्टि का उत्तम फल कहा गया है। ऊपजाऊ भूमि को प्राणियों की रक्षा करने वाली और उन्हें सजीव बनाए रखने वाली कहा गया है।

सारभूरिति निर्दिष्टा जीवानां फलमुत्तमम्।
अतः सुलक्षणोपेतां दोषहीनां महीपतिः॥ ६९॥
अथवा स्वल्पदोषां तु निर्दिशेत् तत्रतत्र तु।

इस प्रकार सारभूमि या कृषि क्षेत्र को जीवन का उत्तम फल कहा गया है। इसलिए राजाओं को सुलक्षणा, दोषहीन भूमि को अवश्य ही रखना चाहिए। यदि भूमि में अति अल्पदोष भी हो तो भी उसके गुणों का निर्देश करते हुए जहाँ-तहाँ बचाकर रखना चाहिए।

राजपथादीनां —

विभक्तां ग्राममार्गेण पुरमार्गेण वा क्वचित्॥ ७०॥
महामार्गेण वा देशे विभजेद्भूमिमुत्तमाम्।

शासक को चाहिए कि वह अपने राज्य में मार्गों के अनुसार भी भूमि का चिह्नीकरण करें। ऐसे मार्गों में ग्राम्यमार्ग, पुरमार्ग एवं महामार्ग होते हैं जिनको भूमि की उत्तमता के अनुसार करना चाहिए।

जलाशयदिशां —

ग्रामाणां नगराणां च पश्चिमे भाग उत्तमे॥ ७१॥
उदीच्यामथवा प्राच्यां दक्षिणस्यां तथा क्वचित्।
जलाशयं स्थापयेत्तु भूमिस्थित्यनुसारतः॥ ७२॥

अब जलाशय के लिए निर्देश किया जा रहा है। शासक को चाहिए कि वह ग्राम, नगर में भूमि की स्थिति के अनुसार पश्चिम भाग में जलाशय का निर्माण करवाए। ग्रामादि की दक्षिण, पूर्व अथवा उत्तर में भी इनका निर्माण किया जा सकता है। पश्चिम में जलाशय निर्माण करना उत्तम है जबकि दक्षिण, पूर्व व उत्तर में क्रमशः मध्यम, अधम और निंद्य कहा गया है।

गभीरं परिघानां (परिघाक्तु?) धनुराकारभासुरम्।
दीर्घं क्वचित्वर्तुलं वागाक्त (वागाद्यं?) तु सलिलाशयम्॥ ७३॥

जलाशय के लिए नींव बहुत गहरी होनी चाहिए। उस पर परिघ की रचना करनी चाहिए। पाल को धनुषाकार और भव्य बनाएँ। बाँध सदैव दीर्घ और किञ्चित वर्तुलाकार होना चाहिए।

दृढप्रणालिकासेतुमार्गेण च सुरक्षितम्।
उत्तुङ्ग तटकल्पाढ्यमथो मार्गेण संयुतम्॥ ७४॥

जलाशय का बन्ध या बाँध सुदृढ़ होना चाहिए। उसके लिए प्रणालिका या नहरें होनी चाहिए। सेतुमार्ग या ब्रिज के साथ ही उसकी सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध होना चाहिए। तट अपेक्षाकृत ऊँचा हो तथा उस पर मार्ग भी हो।

जलागमनमार्गेण शोभितं च विशेषतः।
अतोगिरेः समीपे वा चोत्तुङ्गे भूतलेऽथवा॥ ७५॥

जलाशय में जल की आवक के लिए नदी, नालों या नहरों आदि का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए। इसलिए जलाशय को पहाड़ियों या ऐसे ऊंचे स्थान के पास निम्न भूमि पर बनाएँ जहाँ शीघ्र ही पानी संग्रहित हो जाता हो।

महाह्ल(ह्र?)देन संयुक्ते स्थापयेत्तु जलाशयम्।
महाजलस्थैर्यभाजं जलाधारम् तु भूतले॥ ७६॥

पहाड़ियों की शृङ्खलाएँ होने पर वहाँ पर महाह्रद या वृहद् सरोवर का निर्माण किया जाना चाहिए। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि जलाशय का इस प्रकार निर्माण किया जाए कि उसमें अधिकाधिक जल का संग्रहण हो सके।

तडागोपयौगीभूमि —

सारक्षेत्रे स्थापयेत्तु स्वयं स्त्रावयुतेऽपि वा।
सैकतादिविहीने तु पाषाणादि वर्जिते॥ ७७॥

जलाशय के लिए भूमि कैसी हो, इस सम्बन्ध में कहा गया है कि ऐसी भूमि पर बाँध को बाँधना चाहिए जहाँ कि भूमि सुदृढ़ हो, जहाँ कोई झरना गिरता हो किन्तु भूमि रेतीली नहीं हो, न ही पथरीली होनी चाहिए। ऐसी भूमि जलाशय के लिए विनाशकारक होती है।

जलाशयं तु गम्भीरं जलपूरार्गलायुतम्।
तथा तं स्थापयेद्विद्वान् जलपूर्णे जलाशये॥ ७८॥

जलाशय को गहराई वाला तथा जल की निकासी के लिए उसमें अर्गला युक्त किंवाड़ बनाने चाहिए ताकि जब वह परिपूर्ण हो जाए तब पानी को निकाला जा सके।

येन वा न विरोधः स्यात् ग्रामोदेर्नगरस्य च।
प्राकारोद्यानदुर्गाणां खलक्षेत्रस्य वा पुनः॥ ७९॥

इस प्रकार का प्रबन्ध किए जाने पर जलाशय के आसपास बसे ग्रामवासियों, नागरिकों को जलभरण आदि संकटों से बचाया जा सकेगा। नगरों के प्राकार,, उद्यान, दुर्गों और खेत-खलिहानों को भी इस व्यवस्था से निरापद रखा जा सकता है।

जलभीतिः प्रवाहाद्यैः न स्यात्सर्वत्र भूमिपः।
तथा तं स्थापयेत् देशे परीक्षियेत(परीक्षेत?) क्रमादिमम्॥ ८०॥

जलाशयों का निर्माण विशेष रूप से सर्वेक्षण और योजनाबद्ध रूप से करना चाहिए। ऐसे स्थान पर जहाँ कि बाढ़ या विशेष बहाव का खतरा नहीं हो, वहाँ पर इनका निर्माण उचित है। निर्माण के बाद उसका नियमित रूप से परीक्षण, निरीक्षण करते रहना चाहिए।

मासक्रमेण वा वर्षक्रमेण च मुहुर्मुहः।
स्थापयेन्नृपतिस्तत्र तटरक्षणकारिणः॥ ८१॥

जलाशयों को टूटने और प्रजादि को खतरे से बचाने के लिए आवश्यक है कि ऐसे सरोवरों का सामान्य रूप से मासिक और विशेष रूप से वार्षिक निरीक्षण का प्रबन्ध किया जाए। इस कार्य के लिए योग्य तटरक्षककर्ता या अधिकारी की नियुक्ति करनी चाहिए।

प्रावट्कालस्यविचारः —

वर्षाकाले विशेषेण कुल्यादीनां शतं तथा।
वापीनां दीर्घिकाणां च रक्षणं क्षेमदं मतम्॥ ८२॥

विशेषकर वर्षाकाल में जलाशयों पर विशेष निगरानी रखनी चाहिए। इस अवधि में राज्य की सैंकड़ों कुल्याओं या नहरों (में विशेष बहाव या टूटने के खतरे को दृष्टिगत रखते हुए), बावड़ियों, दीर्घिकाओं की रक्षा के लिए चौकस रहना चाहिए। जनहानि, धनहानि को रोकने के लिए यह आवश्यक है।

जलाशये तु सलिलपूर्णे संरक्षिते क्रमात्।
सस्यादिवृद्धिस्तत्रैव निश्चिता(निश्चितं?)सुखदायकः॥ ८३॥

इस प्रकार जलाशयों के लबालब होने पर उनके संरक्षण पर पूरा ध्यान देना चाहिए। जल के संरक्षण से कृषि क्षेत्र की सुरक्षा होगी तथा अधिकाधिक उपज ली जा सकेगी जो निश्चित ही सुखप्रदायक होगी।

रोगहानिर्वह्निभयहानिश्च सुखमुत्तमम्।
पोषणं रक्षणं शस्तं द्विपदां च चतुष्पदाम्॥ ८४॥

यह आवश्यक है कि मानव व चौपायों के लिए पोषण, रक्षण के उपाय निश्चित किए जाएँ, उनको रोगजन्य हानि, अग्निकाण्डों से सुरक्षा दी जाकर सुखी रखना चाहिए।

विहङ्गमानामपि च सर्पादीनां च सर्वतः।
सुखं तु परमं चोक्तं न व्याधिश्च भवेत् ध्रुवम्॥ ८५॥

यह सुरक्षा व्यवस्था पक्षियों तथा सरिसृप वर्ग के प्राणियों के लिए भी की जानी चाहिए। इस प्रकार के प्रबंध से कोई व्याधि नहीं होगी साथ ही सभी को निश्चितरूप से परम सुख की प्राप्ति होगी।

सलिलमाहात्म्यम् —

पानद्रव्यं तु सलिलं द्विपदां च चतुष्पदाम्।
विहङ्गमानामपि स सर्पादीनां च सर्वतः॥ ८६॥

यहाँ यह स्मरणीय है कि पानी सबके लिए है, मानव व चौपायों के सभी के लिए एक ही पानी है। पक्षी, सर्पादि प्राणी भी उसी पर निर्भर रहते हैं।

सुखं तु परमं चोक्तं न व्याधिश्च भवेद्ध्रुवम्।
पानद्रव्यं तु सलिलं द्विपदां च चतुष्पदाम्॥ ८७॥

उसी जल को पीकर सभी प्राणी सुख और परम सन्तोष को प्राप्त करते है, व्याधियों से निरापद रहते हैं। पान योग्य होने से वह पानी है, क्या द्विपद और क्या चतुष्पद वह सभी के लिए है।

जलोत्पत्याऽऽख्यानम्–

एकमेव हि निर्दिष्टं ब्रह्मणा सृजता प्रजाः।
महोदकस्थानमेषः जलाशय उदीरितः॥ ८८॥

पूर्वकाल में सृष्टि की रचना करते समय ब्रह्मा ने सभी प्राणियों के हित के लिए इस जल की रचना की थी और उसका पान निश्चित किया था। इसीलिए जलस्थानों के जल के प्रति उदार होना चाहिए।

अतः सर्वप्रयत्नेन प्रजारक्षाधुरन्धरः।
स्थापयेत् रक्षयेद्राजा जलाशयमिमं क्रमात्॥ ८९॥

यही नहीं, प्रजारक्षा में दक्ष राजाओं को चाहिए कि वे प्रयत्नपूर्वक ऊपर निर्दिष्ट निर्देशानुसार जलस्रोतों का निर्माण करें और उनकी सुरक्षा पर ध्यान दें।

जलाशयद्वयं भूपः क्वचिदेकं जलाशयम्।
सारक्षेत्रानुसरणं स्थापयेत् ग्रामयोग्यकम्॥ ९०॥

यह प्रत्येक शासक का कर्त्तव्य है कि वह दो नहीं तो कम से कम एक जलाशय का निर्माण अवश्य करवाएँ। उक्त जलाशय भले ही गाँव में हो किन्तु वहाँ की भूमि की प्रकृति और क्षेत्र के अनुसार इसका निर्माण होना चाहिए।

जलाश्रयेकर्त्तव्यानि —

गिरिप्रस्त्रवणोपेतं महाह्रदयुतम् तथा।
वननिम्नगया युक्त महानिम्नगया क्वचित्॥ ९१॥

शासक को चाहिए कि वह जलाशय को किसी पहाड़ी सोते-चश्मे या झरने, सुदीर्घ सरोवर, वनप्रदेश में प्रवहमान सरिता या अन्य किसी बड़ी नदी से जोड़कर नित्य जलराशि से परिपूर्ण रखने का प्रयास करें।

देशे देशे विशेषेण ग्रामाणां च पुरामपि।
जलव्ययस्थानयुतं कल्पयेत् युक्तितः क्रमात्॥ ९२॥

विभिन्न देशों के नाना भागों के स्थानों पर विशेषकर ग्रामों व पुरों में जलस्रोत के लिए उचितानुचित सोचकर स्थान को चिह्नित किया जाना चाहिए। जलाशय का स्थान गाँव और पुरों के लिए सर्वथा अनुकूल होना चाहिए।

जलस्थाने द्रुमरोपणीय निर्देशः —

जलाशयतटे भूपः वृक्षांश्च परिवर्द्धयेत्।
वेतसं च वटं तत्र कोलकन्दावलिं क्वचित्॥ ९३॥

यह आवश्यक है कि जल के स्थान पर (सुदृढ़ता व सुंदरता के लिए) वेतस, बरगद और कभी-कभी कोलकंदावली या कंदकीय पादपों का भी आरोपण किया जाना चाहिए।

प्लक्षमश्वत्थकं चैव खदिरं खादिरं तथा।
तिन्दुकं तिन्त्रिणीं वापि भूर्जरं चापि वेणुकम्॥ ९४॥

इसके साथ ही प्लक्ष, अश्वत्थ या पीपल, खदिर या कत्था, तेंदू, इमली, भूर्ज या भोजपत्र और वेणुक या सरकण्डा, पतले बाँस या बरुओं का रोपण किया जा सकता है।

निम्बं कदम्बमपि च ये च सारद्रुमा मताः।
तांस्तु वृक्षान् महीपालः यत्नेनाहृत्य कालतः॥ ९५॥

इसी प्रकार नीम, कदम्ब और अन्य सार योग्य द्रुमों का रोपण भी विचारणीय है। शासक को चाहिए कि वह ऐसे ही योग्य वृक्षों को रोपणीय काल, अनुकूलता पर विचार कर कहीं से मँगवाए और प्रयत्नपूर्वक लगवाएँ।

जलाशयतटे युक्त्या स्थापयेत् क्षेमसिद्धये।
तटस्य निम्नभूम्यां वा तत्कुल्यायाश्च निर्गमे॥ ९६॥

उक्त वृक्षों, द्रुमों को जनहित में सावधानी से, विधिपूर्वक जलाशय के तट और नहरों के निकास की नीचे की भूमि, मुहानों पर लगाया जाना चाहिए।

स्नानघट्टाविरोधेन पानघट्टार्हकं क्वचित्।
वृक्षांश्च वर्द्धयेत् युक्त्या तत्र तत्र विशेषतः॥ ९७॥

जहाँ पर लोक का स्नान या जल के गिरने का स्थल हो, उनको छोड़कर द्रुमों को किनारे के नीचे की भूमि पर लगाना चाहिए ताकि कोई व्यवधान या विरोध नहीं हो। युक्तिपूर्वक लगाने से ही वृक्षों की वृद्धि होती है।

खलभूम्यां तथा वृक्षान् वटादीन् सुखदायिनः।
तटाकदीर्घिकातीरे ह्र(ह्र?)दादीनां तटे तथा॥ ९८॥

रोपण में वट, उदुम्बर जैसे वृक्षों को लगाना शुभ है, वे सुख प्रदान करने वाले होते हैं। इनको निकटवर्ती खलिहान, झीलों के किनारे, ह्रद या वृहद् कुंओं के तट पर लगाया जाना अच्छा होता है।

प्रच्छायवृक्षान् भूपालः वर्द्धयेत् क्रमतस्तथा।
आक्रीडेष्वपि चोद्यानेष्वेवं विश्रान्तिभूमिके॥ ९९॥

शासक को चाहिए कि वह छायादार वृक्षों को क्रीड़ा स्थल पर अवश्य लगवाएँ। छायादार वृक्षों से उद्यान व विश्राम स्थलों का विकास भी किया जाना चाहिए।

राजमार्गार्थ निर्देशः —

महामार्गस्थले तत्र जलाशयसमीपतः।

वातप्रोतप्रसवकान् प्राणिनां श्रमहारिणः॥ १००॥

नगरों, पुरों और राजधानी को जोड़ने वाले महामार्ग या राजमार्गों के दोनों ओर, जलाशयों के समीप भी वृक्षों को लगाना चाहिए। यहाँ पौधरोपण से पवन का प्रवाह निरन्तर रहता है और ये वृक्ष प्राणीमात्र के श्रम या थकान का हरण भी करते हैं।

अन्यदप्याह —

वनभोजनयोग्येषु स्थानेषु विविधेष्वपि।
देवालयोद्यानतले भूपालोद्यानके तथा॥ १०१॥

अन्य जिन स्थानों पर पौधों को लगाया जाए, वे हैं वन भ्रमण और वन विहार के दौरान निश्चित भोजन स्थल, मन्दिरों के उद्यान और राजाओं की बाड़ियाँ।

अन्यदपि —

मुनीनामुटजानां च तले तत्र विशेषतः।
सेनानिवेशस्थाने च भूपविश्रान्तिकस्थले॥ १०२॥

महापुरुषों, मुनिजनों के आश्रम, कुटीर, सेना निवेश स्थल या स्कन्धावार (छावनियाँ) और राजाओं, सामन्तों तथा राजकीय अतिथियों के विश्राम योग्य स्थलों पर वृक्षों को लगाया जाना चाहिए।

अन्यदपि —

यज्ञार्हस्थले चापि बल्यर्हस्थानकेऽपि च।
प्रच्छायवृक्षान् भूपालः वर्द्धयेत् क्रमशस्तथा॥ १०३॥

जिन स्थलों पर यज्ञभूमि हो, बलिभूमि या धार्मिक पूजा-अर्चन वाली, चरणोट स्थली[१] पर भी समय-समय पर राजा को छायादार वृक्षों के रोपण का प्रावधान करना चाहिए।

अत्रैव द्रुमगुणाः —

विहङ्गमाल्हादकरान् फलपुष्पादिदायिनः।
तथा व्याधिप्रशमकान् शीतलान् कोमलान् तरून्॥ १०४॥

---

१. ऐसी भूमि की सीमा निश्चित करने का मत भविष्यपुराण में आया है। उसकी सुरक्षा के लिए पूर्व में वृक्षों का रोपण करना चाहिए और दक्षिण में सेतु या मेड़ बनानी चाहिए। पश्चिम में कँटीले वृक्ष लगाएँ और उत्तर में कूप का निर्माण करवाना चाहिए, इस उपाय से उसकी सीमा का कोई उलंघन नहीं करेगा। उस भूमि को जलधारा और घास से परिपूर्ण करना चाहिए। (भविष्यपुराण मध्यमपर्व ३, २, २४-२८ एवं अन्य)

वृक्ष कैसे हों, इस सम्बन्ध में ज्ञातव्य है कि लगाए जाने वाले पेड़ पक्षियों के आह्लाद को बढ़ाने वाले हों, फल-फूल प्रदान करने वाले हों। वे व्याधियों का शमन करने में सहायक के साथ-साथ शीतल व कोमलकाय हों।

अकण्टकांश्च पनसाम्रांश्चापि रसालकान्।
पुन्नागमालतीकुन्दचम्पकावलिमप्यथ ॥ १०५ ॥

ऐसे पेड़ जिन पर काँटे कदाचित् नहीं हों, पनस, आम, रसाल के साथ ही पुन्नाग, मालती, कुन्द और चम्पा की शृङ्खलाएँ भी विकसित की जानी चाहिए।

स्थापयेदावरणके तत्र तत्र विशेषतः।
जलाशयजलस्त्रावात् वर्द्धयेच्च क्रमात्तरून्॥ १०६ ॥

उक्त द्रुमों का निर्धारित सीमा या आवरण में रोपण किया जाए। ऐसी व्यवस्था की जाए कि समय-समय पर उन्हें क्रमशः वृद्धि के लिए जलादि मिलता रहे।

अथ जलाशय प्रशंसा: —

जलाशयविहोने तु सुखं नैवोपजायते।
न सान्ध्यकर्म न स्नानं वृक्षाणामपि वर्द्धनम्॥ १०७॥
न स्यादित्येव मुनिभिः सौख्यं त्विति विनिश्चितम्।
अतः सर्वप्रयत्नेन भूपालो रक्षणव्रती॥ १०८ ॥

जलाशयों, जलस्रोतों के अभाव में पेयजल का प्रबन्ध नहीं होगा। जल के अभाव में न तो सान्ध्यकर्म होगा और न ही स्नान हो सकता है फिर भला पौधों की वृद्धि कैसे हो सकती है ? इसी कारण मुनियों ने कहा है कि पानी के अभाव में सुख की सृष्टि नहीं होती, यह निश्चित है। अतः प्रजा की रक्षा का संकल्प करने वाले शासक को चाहिए कि वह सर्व प्रयत्नपूर्वक जलस्रोतों का भी विकास करें।[१]

----

१. अपराजितपृच्छा में आया है कि राज्याधिकार पाने के लिए सदा-सर्वदा अन्न का संग्रह करके उस पर अधिकार रखना चाहिए और इस अन्नोत्पादन कार्य को बढ़ाने के लिए जगह-जगह जलाशयों की व्यवस्था करनी चाहिए। इन जलाशयों के लिए उपयुक्त भूमि भाग की परीक्षा हेतु सदा सूत्रधार शिल्पी, गजधर या शिल्पशास्त्रों के ज्ञान की सेवा लेना चाहिए कि वह सूत्रधार शास्त्र ज्ञान सम्पन्न हैं भी या नहीं ? यह आवश्यक है कि नगरों में, पुरों में, खेट, कूट और कर्वट में जहाँ भी अवसर मिले वहाँ वापी, कूप, तड़ागों की और नदियों पर बाँध बनाने और जल संरक्षण के लिए सदा तत्परता दिखानी चाहिए— राज्यार्थं धार्यते शस्यं शस्यार्थं तु जलाश्रयः। भूमिर्भागपरीक्षार्थं सूत्रधारं परीक्षयेत्॥ नगरे च पुरे ग्रामे खेटे कूटे च कर्वटे। वापी-कूप-तडागानां नदीनां बन्धनादिकम्॥ (अपराजितपृच्छा सूत्र ७५, ९ एवं ३५)

अन्यदप्याह —

ग्रामेष्वपि च देशेषु वनमध्ये तु वा पुनः।
स्थापयित्वा तु गम्भीरं जलाशयमतन्द्रितः॥ १०९॥

पुनः कहा गया है कि शासक को चाहिए कि वह ग्राम, देश के वनखण्ड में गम्भीर, वृहदाकार जलाशयों का निर्माण करवाएँ।

कुल्यां दृढतरां नित्यं सुलभोदकनिः स्त्रवाम्।
नानाशाखासमाक्रान्तां महाकुल्यायुतां तथा॥ ११०॥
जलाशयेन सहितां स्थापयेत् बहुशोदृढाम्।

जलाशयों से नहरों को भी निकाला जाए जो बहुत मजबूत बनी हों और हमेशा उनमें पानी का प्रवाह बना रहे। बड़ी नहरों से जुड़ी अनेक शाखाओं या वितरिकाओं का विस्तार भी किया जाना चाहिए जो अन्तःसम्बद्ध हो। इनका और जलाशयों का निर्माण (दीर्घकालीन महत्व को ध्यान में रखते हुए) बहुत मजबूत करवाना चाहिए।

॥ इति काश्यपकृषिसूक्तौ प्रथमभागे भूम्यां जलाधारस्थापनक्रम
तृतीय कथनम्॥ ३॥

इस प्रकार काश्यपीय कृषि सूक्ति के प्रथम भाग के अन्तर्गत भूमि पर जलाधार स्थापना क्रम नामक तृतीय कथन पूर्ण हुआ॥ ३॥

*****

अथ चतुर्थ कथनम्

॥ नदीमातृककुल्याकूपादिक्रमकथनम्॥

काश्यप उपदिशति —

यत्र सस्यक्षितेः कुल्या जलाधारोऽपि वा क्वचित्।
न कल्पिता वा न स्थाप्या सततोदकपूरिता॥ १११॥
तत्र कुल्या नदीमातृमुखा स्थाप्येति निश्चिता।
तच्चतुर्विधमाख्यातं कृषिपद्धतिकोविदैः॥ ११२॥

अब चतुर्थ कथन में नदी से नहर, कूपादि निर्माणावश्यकता पर विचार किया जाएगा। कश्यप मुनि का उपदेश है कि ऐसी कृषियोग्य भूमि जहाँ पर जलधारा हो और जिसे न तो किसी ने कल्पित किया हो और न ही किसी से तैयार किया हो, जो पानी में ही डूबी रहती हो, वहाँ पर नदियों से निकली नहरों का निर्माण करवाना चाहिए। कृषिपद्धति के जानकार जनों की सम्मति में वे चतुष्फलनीय होनी चाहिए।

कुल्यार्थ निर्देशः —

आद्या नदीमातृका स्यात् कुल्या चाथ ह्रदाश्रिता।
जलाशयाश्रिता वापि महीध्रभृगुपार्श्वभाक्॥ ११३॥

नहरों को किसी भी नदी, विशाल सोते या ह्रद, विशाल सरोवर-बाँध अथवा किसी पर्वत से निष्पन्न नित्य सलिला धारा (झरनों) से निकाला जा सकता है।

कुल्या चतुर्विधा(द्या?) ह्येवं स्थाप्या देशप्रमाणतः।
यत्रोर्ध्वभागे नद्यादिः दृश्यते भूस्वभावतः॥ ११४॥
तत्र नद्या मुखं कार्यं स्वतः प्रस्त्राव भासुरम्।

देश की भौगोलिक प्रकृति के अनुसार नहरों को चार प्रकार से बनाया जा सकता है। जहाँ से नदी का उद्गम हो उस ऊपरी भाग पर भूमि के प्लवानुसार बहाव क्षेत्र को देखें और नहर निर्माण के लिए विचार करें क्योंकि वहाँ से नहर में जल का प्रवाह स्वाभाविक रूप से हो सकता है।

कृषियोग्यं स्थलं यत्र विद्यते देशभूमिषु॥ ११५॥
प्रायस्तदूर्ध्वके भागे दूरे वा दूरतोऽपि वा।
कुल्या धारः प्रकर्तव्यः कृषिकार्यविचक्षणैः॥ ११६॥

जिस प्रदेश में कृषियोग्य स्थान हो, वहाँ पर कृषि कार्य में दक्ष, विशेषज्ञों को जलबहाव के लिए निर्माण कार्य करवाना चाहिए। नहरें सिंचित भूमि से थोड़ी ऊँचाई पर और दूरी पर बनाएँ।

प्राक्गामिन्यां निम्नगायां कुल्यारम्भं क्वचित्स्थले।
तथा पश्चिमगामिन्यां कुल्यां संपरिकल्पयेत्॥ ११७॥

कुछ स्थलों पर नहरों की शुरुआत नदी के बहाव क्षेत्र से पूर्वगामी हो अथवा नदी के पश्चिम में बहने वाली भी संकल्पित की जा सकती है।

हरिदन्तरगामिन्यामथवा तां प्रकल्पयेत्।
कोणान्तरप्रवेशिन्यामापगायामपि क्वचित्॥ ११८॥

क्रमणोत्तुङ्गभूमिस्तु सर्वत्र हि विशिष्यते।

इसी प्रकार नहर को किसी नदी की शाखाओं के रूप में भी बनाया जा सकता है और नदी जहाँ पर मुड़ाव लेती हो, वहाँ से भी नहर का निर्माण किया जा सकता है किन्तु नदी का प्रवाह मार्ग सदैव ऊँचाई से निचाई की ओर ही निर्धारित जानना चाहिए अर्थात् नहर निर्माण में प्लव पर ध्यान देना होगा।

निम्नगा मातृका कुल्या नद्यारब्धा कृतस्थला॥ ११९॥
क्रमेण भूमिं विविधामाक्रम्य बहुरूपिकाम्।
ग्रामात् ग्राममथाक्रम्य वनादूनतलं तथा॥ १२०॥

नदी के बहाव क्षेत्र और दिशा, प्लवादि (ढलान) को ध्यान में रखकर नित्य प्रवाही नहरों का जाल बिछाना चाहिए। नहरें नीचे से नीचे की ओर बढ़ाएँ, इस प्रकार वे अपने बहाव क्षेत्र में आगे से आगे विविध रूपों की भूमि को सिंचित करती चलेंगी जिनमें ग्राम और वन क्षेत्र भी होता है।

कुल्यावैपुल्यमानं —

स्वकीयक्षेत्रगां कुर्यात् प्रकृतिक्षेमसिद्धये।
चतुर्हस्तः पञ्चहस्तः षड्हस्तः सप्तहस्तकः॥ १२१॥
दशहस्तकमानं वा कुल्यावैपुल्यमीरितम्।

नहरों को प्रत्येक निजी खेत तक पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिए ताकि प्राकृतिक समृद्धि को सिद्ध किया जा सके अथवा सब कोई आत्मनिर्भर हो। नहर की चौड़ाई पाँच प्रकार की हो सकती है। (पानी व भूमि की उपलब्धता के अनुसार) नहरें चार हाथ, पाँच, छह, सात और दस हाथ तक चौड़ी रखी जा सकती है।

सार्थकासार्थककुल्याः —

क्वचिन्महाह्रदारब्धा कुल्या सा जलपूरिता॥ १२२॥
तथा महोदकनदीतलारब्धा च निश्चिता।
स्वक्षेत्रभागावधिकं कुल्यावैशाल्यमुत्तमम्॥ १२३॥

अब नहरों की प्रकृति पर विचार किया जा रहा है। कुछ नहरें ऐसी होती है जिनमें ह्रद में पानी होने पर ही पानी का प्रवाह किया जा सकता है और कुछ ऐसी जिनमें नित्य सलिला नदी, तालाब आदि से नित्य ही पानी उपलब्ध रहता है किन्तु जल की सार्थकता तब ही है जबकि वह किसी कृषिक्षेत्र तक पहुँचे।

तुल्यमेवं हि कल्प्यं तदुन्नतिस्तु स्थलोचिता।
सर्वत्रागाधता योज्या जलप्रसावयोग्यका॥ १२४॥

प्रत्येक खेत या अंतिम छोर तक पानी की पहुँच हो, इसके लिए आवश्यकतानुसार नहर की ऊँचाई को भी तय किया जाना चाहिए। प्रत्येक स्थान पर नहर की गहराई को भी निर्धारित किया जाता है, यह सब पानी के प्रवाह पर ही निर्भर करता है।

महातटाकं तीर्त्वा वा मध्यमार्गं क्वचित् तले।
सर्वप्राणिहितायैतां कुल्यां भूपः प्रकल्पयेत्॥ १२५॥

शासक को चाहिए कि वह ऐसी (तीसरे प्रकार की) नहरों का निर्माण करवाए जो सभी प्राणियों की दृष्टि से हितकारी हो। ये किसी बड़े सागर से सम्बद्ध कर मैदान पर बनाएँ या मध्यम मार्ग पर निर्माण का विचार करना चाहिए।

गिरिप्रस्त्रवणारब्धां कुल्यामपि तले क्वचित्।
स्वक्षेत्रगामिनीं कुर्यात् कृपिसंपद्विवृद्धये॥ १२६॥

मैदानी भूमि के लिए चतुर्थ प्रकार की नहर को गिरिप्रस्त्रवण या पहाड़ी झरने से निकाला जा सकता है। इस जल का उपयोग व्यक्ति अपने खेतों में कृषि सम्पत्ति की वृद्धि के लिए कर सकता है।

कुल्यामेकां पूर्णजलां तथा कुल्यांद्वयं क्वचित्।
कुल्यात्रयं वा क्षेत्राणां हिताय हि विधीयते॥ १२७॥

किसी उत्तम क्षेत्र के लिए एक, दो और कभी-कभी तीन उपर्युक्त नहरें भी बनाई जा सकती है, ऐसा तब किया जाए जबकि उस क्षेत्र को लाभ मिलता हो।

नदीहीने क्वचित् देशे सैकतस्थल कल्पिता।
कुल्यापि च सुखायैषा निश्चिता कृषिकोविदैः[१]॥ १२८॥

नहरों के संजाल से मिलने वाले पानी से वह प्रदेश भी सस्यश्यामल हो

---

१. कुल्याप्रसङ्गे कालिदासोक्ति— कुल्याम्भोभिः पवनचपलैः शाखिनो धौतवृक्षाः भिन्नो रागः किशलयरुचामाज्य-धूमोद्गमेन्। एते चार्वागुपवनभुविच्छिन्नदर्भाङ्कुराणाम् नष्टाशङ्का हरिणशिशवो मन्दमन्दं चरन्ति॥ (अभिज्ञान. १, १५) अर्थात्— वायु से उड़ाए गए नहर के जलकणों से शाखाधारी वृक्ष धुल गए हैं परन्तु हवन के घृत के धुएँ के उठने के कारण कोमलपत्तों वाले पौधों का रंग बदल गया है, इधर नीचे की ओर कटी हुई दर्भा के अग्रभाग वाली बगीचे की भूमि पर हरिणों के छौने निर्भय होकर धीरे-धीरे चर रहे हैं।

सकता है जहाँ पर कि कहीं नदी की धारा नहीं हो या जो रेतीला प्रदेश हो, ऐसा कृषिविदों का निश्चित मत है।

सन्ततस्त्रावसंयुक्ता स्थली सा ग्राववर्जिता।
सुक्षेत्रा सुगुणोपेता सस्यक्षेमाय कल्पते॥ १२९॥

ऐसी भूमि जहाँ पर पानी का सतत् प्रवाह हो, जिसमें कङ्कड़-पत्थर नहीं हो, जो सुक्षेत्रा हो और कृषि के लिए उपयोगी नाना गुण विद्यमान हो, उसे सस्यक्षेत्र (खेती के योग्य) जानना चाहिए।

ह्रदारब्धां तु वा कुल्यां नेयात्स्वग्रामसम्पदे।
उद्यानायापि वा देशे चाक्रीडायापि वा क्वचित्॥ १३०॥

उक्त क्षेत्र में नहर निकालने की अपेक्षा, उस क्षेत्र को सिंचाई सुविधा से जोड़ना चाहिए जहाँ पर आवश्यकता हो और जहाँ ग्राम के हित का प्रश्न हो। यह बगीचों, क्रीड़ाविहार स्थल के लिए उपयोगी होगा।

अत्रैव निर्माणनिर्देशः —

कुल्याप्रकल्पनं युक्त्या जलस्त्रावसमुज्ज्वलम्।
स्नानाय पानाय तथा कृषिकार्याय च क्षितौ॥ १३१॥
निश्चितं मुनिभिः पूर्ववेदिभिः जीवरक्षकम्।

नहर निर्माण के लिए विशेषज्ञ या स्थपति को पूर्व स्थितियों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। नहर को पूरी दक्षता के साथ बनाना चाहिए। वहाँ पर सुगमता से जलप्रवाह हो ताकि भूक्षेत्र में स्नान, पेयजल, कृषिकार्य के लिए पानी उपलब्ध हो सके, ऐसा पूर्व काल में मुनिजनों ने जीवों की रक्षार्थ निर्देश किया है।

कुत्र कुल्यानिर्माणं —

क्वचिद्देशे भूतलं तु कुल्यानीरं प्रणाशयेत्॥ १३२॥
पाययेत् शोषयेद्वापि स्वान्तर्दोषादिभिः स्वयम्।
अतस्तत् भूतलं वर्ज्यं कुल्यानिर्माणकौविदैः॥ १३३॥

नहर निर्माण कहाँ करें, इस बारे में कहा गया है कि कई प्रदेशों में नहरें नष्ट कर दी जाती है, पानी को खुर्द-बुर्द कर दिया जाता है या पानी सूख जाता है, ऐसे क्षेत्रों को छोड़कर ही नहरनिर्माणकोविदों या अभियन्ताओं को नहरों का निर्माण करना चाहिए।

क्वचिदूषरभूमिश्च दृश्यते सर्वतः क्षितौ।
सा चापि वर्ज्या कुल्यायै भूदोषाक्रान्तभूरपि॥ १३४॥

सिंचाई के लिए नहर निर्माण के लिए यह भी विचारणीय है कि ऐसे प्रदेश में नहर निर्माण करना व्यर्थ ही होगा जहाँ पर कहीं-कहीं या सर्वत्र ऊसर जमीन हो। ऐसी दूषित भूमि वर्जित है।

अतः सद्गुणसम्पन्नं भूतलं वीक्ष्य पार्थिवः।
कुल्याप्रकल्पनं देशे स्थापयेत् सस्यसंपदे॥ १३५॥

इस प्रकार शासक को नहर निर्माण करते समय भूमि की गुणवत्ता की जाँच भी करवा लेनी चाहिए। अच्छी ऊपजाऊ भूमि वाले प्रदेश में ही नहर का निर्माण करवाना चाहिए।

अन्यदप्याह —

क्वचित्कुल्याद्वयं योज्यं तथा कुल्या त्रयं(त्र्यं?) क्वचित्।
स्थलानुकूलं सर्वत्र तत्कल्पनमुदीरितम्॥ १३६॥

कहीं-कहीं पर दो या तीन नहरों के निर्माण से बड़ा कार्य हो सकता है, किसी स्थल के हानि-लाभ और अनुकूलता पर विचार कर ही नहरों का निर्माण करवाना श्रेयस्कर होता है।

कुल्ये केषां जलप्रवाहं —

सर्वासामपि कुल्यानां जलाधारस्थलीषु च।
प्रवेशश्च क्र मात्प्रोक्तः शास्त्रविद्भिर्मुनीश्वरैः॥ १३७॥

स्थापत्य कृषि शास्त्रवेत्ता मुनिश्वरों का मत है कि जल स्रोतों, नहरों से पानी का प्रवाह धीमा रखना चाहिए ताकि कोई बिगाड़ा नहीं हो।

अन्यदपि —

जलाशयविहीने तु स्थले-ग्रामे-पुरे तथा।
वने वनान्तरे वापि तां कुल्यां क्षेत्रगामिनीम्॥ १३८॥

कृषि भूमि को उर्वरा बनाने और उसे धन-धान्यादि से परिपूर्ण रखने के लिए बुद्धिमानों को चाहिए कि वे ऐसे स्थल, ग्राम, पुर, वनखण्डों में नहरों का निर्माण करें कि जहाँ पर इनका अभाव हो।

प्रकल्पयेत् तथा धीमान् सस्यवृध्यै(? द्ध्यै) विशेषतः।

तले तत्र क्षुद्रकुल्या शस्यते च फलप्रदा॥ १३९॥

किसी भी सस्यक्षेत्र में पुख्ता सिंचाई के लिए लघु वितरिकाओं, धोरों का निर्माण किया जाना चाहिए ताकि सकल उत्पाद हो और फसल अच्छी प्रकार परिपक्व हो सके।

अन्यदप्याह —

प्राणिनामपि सस्यानां जीवनं मतम्।[१]
अतः सर्वत्र देशेषु पार्थिवः क्षेमसिद्धये॥ १४०॥
कुल्यां नदीमातृकां वा स्थलान्तरकृतामपि।
जलपूर्णां प्रकुर्वीत खातयेत् रक्षयेत्सदा॥ १४१॥

जल अपने आप में प्राणियों और फसलों के लिए जीवनदायी होता है। इसलिए शासक को नदी की तरह अपने राज्य में सभी छोर पर नहरों का निर्माण करवाना चाहिए। सरितसंयुक्त नहरें नदियों या नदी के पानी की क्षमता पर ही निर्भर करती हैं। जनहित में नहरें खुदवाकर उन्हें सदा पानी से परिपूर्ण रखने और उनकी सुरक्षा अनुरक्षण का कार्य भी किया जाना चाहिए।

अरक्षिता सा विफला दोषभाक् जलवर्जिता।
अतो भूपतिभिः सर्वैः कुल्यारक्षणमुत्तमम्॥ १४२॥

ऐसी नहरें जो अरक्षित और उपेक्षित हों, जिनमें प्रवाह दोषपूर्ण और अल्पप्रवाही हो, वे अनुचित होती है। इसलिए शासक को सभी नहरों का अनुरक्षण, रक्षण सर्व प्रकारेण करते रहना चाहिए।

---

१. तत्र तावज्जलाशयप्रशंसा विष्णुधर्मोत्तरे-- उदकेन विना वृत्तिर्नास्ति लोकद्वये सदा। तस्माज्जलाशयाः कार्याः पुरुषेण विपश्चिता॥ अग्निष्टोमसमः कूपः सोऽश्वमेधसमोमरौ। कूपः प्रवृत्तपानीयः सर्वं हरति दुष्कृतम्॥ कूपकृत्स्वर्गमासाद्य सर्वान्भोगानुपाश्नुते। तत्रापि भोगनैपुण्यं स्थानाभ्यासात्प्रकीर्तितम्॥ (विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३, २९६, ५-७)

पद्मपुराण में आया है कि जल से खेती पकती है जिससे मनुष्यों को प्रसन्नता होती है। जल के बिना प्राणों को धारण करना असम्भव है। पितरों का तर्पण, शौच, सुन्दर रूप और दुर्गन्ध का नाश-- ये सब जल पर ही निर्भर है। इस जगत में संग्रह किए समस्त बीजों का आधार जल ही है। कपड़े धोना और बर्तनों को माँजकर चमकाना जल के ही अधीन होता है। इसी से हर किसी कार्य में जल को पवित्र माना गया है। अतः सभी प्रकार के प्रयत्न करके सारा बल और सारा धन लगाकर बावड़ी, कुआँ और पोखर बनवाया जाना चाहिए। जो निर्जल प्रदेशों में जलस्रोत बनवाता है, उसे प्रतिदिन इतना पुण्य मिलता है कि वह एक-एक दिन के पुण्य के बदले एक-एक कल्प पर्यन्त स्वर्ग में निवास करता है। (पद्मपुराण सृष्टिखण्ड)

कुल्यारक्षादीनां-

धर्म इत्येव निर्दिष्टमृषिभिस्तत्वदर्शिभिः।[1]
वापीभ्यश्च तटाकेभ्यः कूपेभ्यश्च विशेषतः॥ १४३॥

बावड़ी, तालाब, कूप आदि से कहीं अधिक धर्म नहरों की रक्षा व अनुरक्षण कार्य में माना गया है। ऐसा उन लोगों का कथन है जो कि इस सत्य के ज्ञाता हैं।

अथ दकार्गलं येन जलोपब्धिः

जलपोषणमादिष्टं कृषिक्षेमाय भूतले।
क्वचित् स्थल्यामूर्ध्वमागे निश्चिता सलिलस्थितिः॥ १४४॥

कृषि क्षेत्र में सिंचाई की निरंतरता से उपज का उत्कर्ष होता है। अब दकार्गल पर विचार किया जा रहा है कि कहाँ-कहाँ पर पानी पाया जाता है। कुछ स्थलों या मैदानी-छापर भागों में पानी ऊपरी परत पर ही पाया जाता है।

क्वचित्तु कथिता भूम्यामधोभागे जलस्थितिः।
क्वचित्पाषाणभू(मू?)यिष्ठे जलस्त्रावस्तु नश्यति॥ १४५॥

कहीं-कहीं पर जल की स्थिति भूमि के बहुत नीचे के भाग ही होती है और कुछ प्रकरणों में यह पूरी तरह पहाड़ों की चट्टानों में बहता हुआ पाया जाता है।

मृद्दोषदूषितेऽन्यत्र जलस्त्रावश्च नश्यति।
अतः सैकतभूयिष्ठा जलपूर्णा वसुन्धरा॥ १४६॥
वापीकूपादियोग्येति निश्चिता तत्त्वदर्शिभिः।[2]

कहीं-कहीं पर दूषित मिट्टी के कारण बहता हुआ जल अदृश्य हो जाता है। इसलिए दकार्गल विद्या को तत्त्व से जानने वालों ने वापी, कूपादि के योग्य उस भूमि को ही माना है जो जल से परिपूर्ण (अनूप) हो और जिस पर कंकड़-पाषाणादि उपलब्ध होते हैं।

कुत्र कूपावश्यकमाह —

यास्मिन्देशे ग्रीष्मकाले सस्यक्षेत्राय वा पुनः॥ १४७॥

---

१. सूत्रधारमण्डनोक्ति—
विधारितं जीवनमेव येन तद्वोपदैकेन समं पृथिव्याम्।
स षष्टिसंख्यं च सहस्त्रवर्षं स्वर्गलोकसौख्यखिलानि भुङ्क्ते॥ (राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् ४, ३५)

२. अत्रैव चक्रपाणिमिश्र मतमाह —
साधारणानूपाश्चं जाङ्गलान्पर्वतान्वितान्। देशान्निमित्तजान् ज्ञात्वा वदेत् सर्व विचक्षणः॥ आनूपे निकटे यथोत्तमतिभिनीरं भवेज्जाङ्गले दूरे स्याच्च मरुस्थलेऽश्मनिकरे देशे सशैले पुनः। (विश्ववल्लभ १, ३-४)

उद्यानयापि वा नीरं न पर्याप्तं हि कुल्यजम्।
तस्मिंस्तु देशे सर्वत्र कूपं निर्मापयेन्नृपः॥ १४८॥

जिस प्रदेश में ग्रीष्मकाल में कृषि क्षेत्र और उद्यान आदि के लिए नहर से पर्याप्त पानी की उपलब्धि कठिन हो, वहाँ पर शासक को सर्वत्र ही कूप निर्माण के आदेश देने चाहिए।

नानाकूपानि च वाप्यादीनां —

क्षुद्रकूपं च कूपं महाकूपं[१] च वापिकाम्[२]।
चतुरश्रं मण्डलं वा दीर्घाकारमथापि वा॥ १४९॥

कूप तीन प्रकार के होते हैं— लघु कूप या कूपिका, कूप और महाकूप। कूप से बड़ी बावड़ियाँ होती है जिनको चतुरस्त्र या चौकोर, मण्डलाकार अथवा दीर्घाकार बनानी चाहिए।

खातविधि च रक्षण निर्देश —

स्थापयेत् खातयेत्तच्च रक्षयेच्च यथाविधि।
उत्तरायणमासेषु प्रायो देशेषु सर्वतः॥ १५०॥
अधोभागे जलं दृश्यं नद्यामापि तले क्वचित्।
तस्मात् कूपादिखननमुत्तरायणमासिके॥ १५१॥

---

१. तथा च वास्तुमण्डने—
कूपास्युः वेदहस्तादि त्रिदशहस्तान्त विस्तरा। श्रीमुखो-विजयः प्रान्त्ये-दुन्दुभिश्च-मनोहरः॥
चूडामणिश्च दिग्भद्रे-जयो-नन्दन-शङ्करैः। (३, ८७-८८)
तथा च राजवल्लभे—
कूपाः श्रीमुखवैजयोऽपि तदनु प्रान्तस्तथा दुन्दुभिस्तस्मादेव मनोहरश्च परतः प्रोक्तस्तु चूड़ामणिः।
दिग्भद्रो जयनन्दशङ्करमतो वेदादिहस्तैर्मिता विश्वान्तैः क्रमवर्द्धितैश्च कथिता वेदादधः कूपिका॥ (४, २७)
उक्तञ्च विश्वकर्मीय ज्ञानप्रकाशदीपार्णवे—
चतुहस्ताादिद्वैका यावत् हस्त त्रयोदश। श्रीमुखो विजय चैव प्रान्तो दुन्दुभि श्रीमनोहरः॥
चूडामणि दिग्भद्रो जया नन्दस्तु शङ्करः। श्रीमुखो चतुर्हस्ताद्य शङ्करस्य त्रयोदश॥
एव नामा द्विगुणोपेत वृत्तकूपादशोगमा। सङ्ख्याहस्तद्वयं कुर्यात् कूपिका नामतद्भवेत्॥ (१८, २-४)
तथा च देवीपुराणे—
कुर्यात् पञ्चकरादूर्ध्वं पञ्चविंशत्करावधि। कूपं वृत्तायतं प्राज्ञ सर्वभूतसुखावहम्॥
कूपः पञ्चकरादूर्ध्वं यावद्वर्गस्तदुद्भवः। वापी दण्डयमयादूर्ध्वं दशावर्गा नृपोत्तमैः॥

२. राजवल्लभवास्तुशास्त्रेऽपि—
वापी च नन्दैकमुखी त्रिकूटा षट्कूटिका युग्ममुखा च भद्रा।
जया त्रिवक्त्रा नवकूटयुक्तास्त्र्यकैस्तु कूटैर्विजया मता सा॥ (४, २८)

कूप, वापी आदि की विधिपूर्वक स्थापना, खनन और रक्षा की जानी चाहिए। सूर्य जब उत्तरायण में हो तब कूपादि का खनन करवाएँ। प्रायः सभी प्रदेशों में इसी काल में कूपादि का खनन करवाएँ। यूँ सर्वत्र जल को भूमि के नीचे देखा गया है, कभी-कभी नदी की तलहटी में जल की स्थिति होती है।

सम्पूर्णसलिलावासिहेतवे चिरकालिकम्।
दका(गा?)र्गलविधिज्ञेन धीमता भूमिवल्लभः॥ १५२॥

कूप, वापी के खनन प्रसंग में यह जान लेना चाहिए कि वहाँ पर सम्पूर्ण रूप से पानी मिलना चाहिए। पानी की स्थिति नित्य बनी रहे, यह भी आवश्यक है। इसके लिए शासक को चाहिए कि वह दकार्गलविधिज्ञ या भूमिस्थ पानी का ज्ञान रखने वाले की सम्मति लें।

वापीकूपादिखननं सलिलस्थितिमेव च।
आदौ निश्चित्य वृक्षाद्यैः भूनाडीवीक्षणादपि॥ १५३॥

कूप, वापी आदि का खनन करने के पूर्व प्रथमतः भूमिस्थ जलीय शिराओं का अवलोकन, अध्ययन करना चाहिए। इस जलानुमान के लिए वृक्षों की अवस्थिति के अनुसार विचार किया जाना श्रेयस्कर होता है।[1]

शुभकालं अर्चाविधि च —

भूमिं परीक्ष्य कलयेत् सुमुहूर्त सुलग्नके।
प्रायः प्रातस्तु खननं शुभाय परिकीर्त्यते॥ १५४॥

---

१. विशेष दृष्टव्य- बृहत्संहितोक्त दकार्गलाध्याय एवं विश्ववल्लभोक्त दकार्गल नामक प्रथमोल्लास। बृहत्संहिता के विवृत्तिकार उत्पलभट ने अपनी टीका में मनु के मत को उद्धृत करते हुए कहा है : गुल्मपादपवल्ल्यः स्युः पत्रैश्चाखण्डितैर्युताः। तदधो विद्यते वारि खाते तु पुरुषत्रये॥ पद्मक्षुरोशीरकुला गुण्ड्रा काशः कुशोऽथवा। नलिकानलखर्जूरजम्बूवेतसकार्जुनाः॥ यत्र स्युर्द्रुमवल्ल्यश्च क्षीरयुक्ताः फलान्विताः। छत्रेभनागनीपाश्च शतपत्रविभीतकाः॥ सिन्दुवारा नक्तमालाः सुगन्धा मदयन्तिकाः। ग्नैते स्युस्तत्र जलं खातेऽम्भः पुरुषत्रये॥ गिरेरुपरि यत्रान्यः पर्वतः स्यात् ततो जलम्। तस्यैव मूले पुरुषैस्त्रिभिर्वाऽधो विनिर्दिशेत्॥ अर्थात् : जिस स्थान पर वृक्ष गुल्म तथा वल्लियों के पत्ते स्निग्ध और छिद्र विहीन हों, वहाँ तीन पुरुष (एक पुरुष = १२० अंगुल) नीचे भूमि में जल धारा स्थित होती है। जहाँ कपल, गोखरू, उशीर (खस) और कुल के साथ गुण्ड्र भी हो अथवा काश, कुश, नलिका के साथ खर्जूर, जामुन, अर्जुन और वेंत हों अथवा दुग्धधारी वृक्ष समूह हो, वल्ली, एकमूला, छत्र, नागकेशर हो अथवा शतपत्र (पद्म), नीप, नक्तमाल (करंज) वृक्षों के साथ सिंदुवार (सेहुवार) वृक्ष से युक्त हो अथवा विभीषक, मदयन्तिका के वृक्ष जहाँ स्थित हों यहाँ भी तीन पुरुष नीचे भूमि में जल की स्थिति होती है। जहाँ एक पर्वत के ऊपर दूसरा पर्वत स्थित हो, वहाँ, दूसरे पर्वत से तीन पुरुष नीचे जल की स्थिति होती है। (बृहत्संहिता अध्या. ५३)

भूमि की परीक्षा के अनन्तर सुमुहूर्त, सुलग्न को देखकर कूपादि के लिए खनन कार्य आरम्भ करना चाहिए।[१] खनन कार्य विशेषकर सुबह के समय ही करें।

अभ्यर्च्य वरुणं नीरनाथं भूदेविकामपि।
वनदेवीं तथाभ्यर्च्य बलिदानात् विशेषतः॥ १५५॥
कूपं वापीं दीर्घिकां च स्थापयेत् क्रमतो नृपः।

शासक, निर्माणकर्ता को चाहिए कि वह सर्वप्रथम जल के देवता वरुण की अर्चना करें, भूदेवी या वसुन्धरा की अर्चना करें, वनदेवी को नमस्कार कर, बलिदान आदि विशेष कृत्यों को सम्पन्न करें। तदनन्तर कूप, वापी, दीर्घिका की निर्माण की प्रक्रिया आरम्भ करें।

खननकार्यमाह —

आदौ महावटं खात्वा दीर्घं वा चतुरश्रकम्॥ १५६॥
मण्डलाकारमथवा खातमृत्स्नां तुदूरतः।
निक्षिप्य क्र मशस्तत्र जलसंदर्शनावधि॥ १५७॥
मृदुद्धरणमाख्यातं भटैर्वीरैः कृषीवलैः।

भूमि की परीक्षा, पूजादि उक्त कृत्यों के उपरान्त खड्डा खोदें, प्रथमतः खड्डा

----

१. पूर्वाचार्यों का मत है कि हस्त, पुष्य, धनिष्ठा, शतभिषा, अनुराधा, मघा, उत्तरात्रय और रोहिणी इन दस नक्षत्रों में कूपारम्भ किया जाना शुभ होता है। रामदैवज्ञ का मत है कि पुष्य, अनुराधा, हस्त, उत्तरात्रय, धनिष्ठा, शतभिषा, रोहिणी और मृगशिरा नक्षत्रों में सूर्य के शुभ रहने पर, शुभग्रह के वार, शुभ योग और शुभ तिथियों में, क्रूरग्रहों के निर्बल रहने पर, चन्द्रमा के पुष्ट तथा जलचर संज्ञक राशियों में रहने पर और दशम स्थान पर शुक्र हो, शुभग्रह की राशि और नवमांश हो, वृहस्पति एवं बुध उदय हो तो सम्पूर्ण जलस्रोतों का निर्माण करवाया जाना शुभ होता है—
कूपादीनामाकृतिभेदात्प्रत्येकनक्षत्राण्युक्तानि तत्रादौ कूपारम्भस्य-
हस्तः पुंष्यो वासवं वारुणञ्च सौम्यं पित्र्यं त्रीणि चैवोत्तराणि।
प्राजापत्यं चापि नक्षत्रमाहुः कूपारम्भे श्रेष्ठमाचार्यवर्य्याः॥ (ज्योतिषरत्नमाला ४, ३३)
कूपारम्भमुहूर्तः मुहूर्तचिन्तामणौ—
पुष्ये मित्रकरोत्तरस्ववरुणब्रह्माम्बुपित्र्येन्दुभिः शस्तेऽशुभवारयोगतिथिषु क्रूरेष्ववीर्येषु च।
पुष्टेन्दौ जलराशिगे दशमगे शुक्रे शुभांशोदये प्रारम्भः सलिलालयस्य शुभदो जीवेंदुपुत्रोदये॥ (२, ५५)
कश्यप के किसी ग्रन्थ सम्भवतः 'महासंहिता' में भी इस सम्बमन्ध में विचार किया गया है। मुहूर्तचिन्तामणि के पीयूषधारा टीकाकार गोविन्द दैवज्ञ ने कई मुहूर्त दिए हैं, इनमें से जलाशय इत्यादि के खनन के मुहूर्त के क्रम में यह मत उद्धृत किया गया है— गुरौ ज्ञे वा लग्नगते शुक्रे कर्मगते विधौ। आप्यभे जलकार्याणामारम्भः सिद्धिदः स्मृतः॥ (पीयूषधारा २, २५) अर्थात्— बृहस्पति अथवा बुध दोनों को जब कर्मगत शुक्र और जलचर राशियों (४, १०, ११, १२) के चन्द्रमा हों तब यदि जल सम्बन्धी कार्य आरम्भ किया जाए तो सिद्धिकारक होता है, यह जानना चाहिए।

को दीर्घ और चौकोर खोदें या मण्डलाकार खोदें। इसमें से निकले भराव को थोड़ी दूरी पर रखें और खुदाई को तब तक निरन्तर रखें जब तक कि पानी न दिखाई दे। इस कार्य के लिए कोई सुभटवीर या खनक और कृषिकार्य निष्णात् ही दक्ष होता है।

तत्रादावेवाधिष्ठानमाह —

जलं सैकतसम्मिश्र वीक्ष्य कूपादिषु क्रमात्॥ १५८॥
अधोऽधिष्ठानकल्पस्तु दार्ढ्याय च विधीयते।
स्थले सैकतभूयिष्ठे चेष्टिकाजालकैरपि॥ १५९॥
सुपक्वैरिह चादिष्टमाधिष्ठानप्रकल्पनम्।
कठिने भूमिभागे तु दीर्घिकाकल्पने क्वचित्॥ १६०॥

कूप, वापी आदि की खुदाई करते समय यह ध्यान रखें कि गहराई से यदि मटमैला या मिट्टी से मिला हुआ पानी आता है अधिक गहराई तक खुदाई करें और भीतर से कूप कहीं ढह न जाए, इसके लिए मजबूत अधिष्ठान बनाएँ। आधार में जबकि भूमि पथरीली या मजबूत मिलने लगे तब वहाँ पर अच्छी तरह पकी हुई ईंटों से अधिष्ठान या कोठी बनाई जानी चाहिए। जहाँ कहीं पर कठोर भूमि हो, वहाँ पर दीर्घिका की परिकल्पना या निर्माण करना चाहिए।

अधिष्ठानमधोभागे शिलाखण्डैः प्रकल्पयेत्।
कूपस्याधः स्थले चैवमधिष्ठानं यथाक्रमम्॥ १६१॥

कुछ मामलों में निम्न सतह पर शिलाखण्डों से भी अधिष्ठान तैयार करना चाहिए। यदि कूप की बन्धाई का प्रसंग हो तब भी अधोभाग को सुदृढ़ तैयार करें।

सिकताजलसम्मिश्रमृदुद्धरणकार्यतः ।
दृढीकृत्य क्रमान्नित्यं भूयिष्ठं सलिलं ततः॥ १६२॥

कूप के निम्नस्थ जल, रेत आदि मिश्रित मलबे को बाहर निकालने के लिए विधिवत कार्य किया जाना चाहिए (टोकरी को भर-भरकर रस्सी के सहारे बाहर खींचना चाहिए)। ऊर्ध्वाध्वर चय कार्य से कूप को दृढ़ करते हुए तैयार करें तब जलस्रोत उत्तम तैयार होता है।

अन्यादप्याह —

विलोक्य तत्र कूपादावधिष्ठानोपरि क्रमात्।
इष्टिकाखण्डकैः कालेनिर्माणं कल्पयेन्नृपः॥ १६३॥

कूप खनन के लिए निर्माता, शासक को चाहिए कि वह कूपाधार में अधिष्ठान के लिए विधिवत् योजना तैयार करें और निर्माणकाल के समय ईंटों, खण्डों से चय कार्य करवाएँ।

सुधासम्मिश्रितैः कूपनिर्माणं त्विष्टिकादिभिः।
चिरकालस्थितिकर माहुस्तत्त्वविदो बुधाः॥ १६४॥

बुद्धिमानों का मत है कि कूप के चय कार्य में ईंटों को चूने से चुनवाएँ। इससे पकड़ स्थायी रहेगी और वह कूप चिरकाल पर्यन्त स्थित रहता है।

अतः सर्वत्र देशेषु वापीकूपादिकल्पनम्।
सुधेष्टिकादिभिः कार्यमिति शास्त्रेषु निश्चितम्॥ १६५॥

इस प्रकार चूने की पकड़ को जानकर स्थापत्य शास्त्रियों ने कहा है कि सभी देशों में वापी, कूपादि का निर्माण चूना और ईंटों से पक्का करवाना चाहिए।

सोपानादिकल्पनम् —

अधिष्ठानात् भूतलान्तं प्रत्यहं चेष्टिकादिभिः।
प्रकल्पनं प्रकुर्वीत क्वचित् सोपानकल्पनम्॥ १६६॥

कूपादि के भूतलान्त, आधार में अधिष्ठान से ईंटों का प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार विशेष बावड़ी की रचना में सीढ़ियों का निर्माण भी करना चाहिए।

मुखद्वारं प्रकुर्वीतशिलाभिः भूतले क्रमात्।
प्राच्यां प्रतीच्यामथवा स्थलयोग्यं विदुर्बुधाः॥ १६७॥

कूपादि के भूतल से बनने पर मुखद्वार को शिलाओं से बनवाएँ। मुखद्वार को पूर्व अथवा पश्चिम की ओर रखना चाहिए। स्थलानुसार इस विचार को बुद्धिजनों से शुभ माना है।

तत्रैव अरहटनिर्देशः —

घटीयन्त्रस्थलं तीरे शिलाभिः परिकल्पयेत्।
ततः सलिलनिःस्रावहेतवे दृढभूमिके॥ १६८॥
तीरेषु क्षुद्रकुल्यां च स्थापयेत् स्थलयोग्यकम्।

कूपादि पर जलोत्थान के लिए ऊपर पत्थरों से बनाए मजबूत तीर पर घटीयन्त्र या रहट को स्थापित किया जाना चाहिए। उससे निकाले गए जल के संग्रहण के लिए मजबूत ढाणा बनवाएँ और पानी को स्थल की आवश्यकतानुसार कहीं भी आगे ले जाने, सिंचाई के लिए तीर से धोरा अथवा नाली बनाएँ।

तोयोत्थान युक्त्यादीनां —

घटीयन्त्रं तु विविधं वृषभर्वाह्यमुत्तम्॥ १६९॥
दृढशृङ्खलिकायोगात् हस्तिहस्तादिभिः क्वचित्।
वाह्यं तु तन्मध्यं स्यादधमं नरवाह्यकम्॥ १७०॥

कूप वाप्यादि से जलोत्थान की कई युक्तियाँ हैं। इनमें प्रथम युक्ति के अन्तर्गत वृषभ से चालित रहट का प्रयोग है, इसे उत्तम माना गया है। इसके बाद मध्यम वर्ग की युक्ति हस्तिशूण्डिका (या चमड़े की बनी थैली जो हाथी की शूण्ड की भाँति नीचे से चौड़ी और ऊपर से संकड़ी होती है अथवा हाथियों द्वारा जलोत्थान) की है जिसे मजबूत शृङ्खलाओं से बाँधकर ऊपर पानी उठाया जाता है। तीसरी जो अधम युक्ति है वह है मानवबल चालित[1] जलोत्थान करना।

घटीयन्त्रप्रेरणेन चाधःस्थं सलिलं क्रमात्।
कूपादितीरभाक् लोके दृष्टं सर्वत्र सर्वतः॥ १७१॥

घटीयन्त्र या रहट के संचालन से कूप के नीचे भरे रहने वाले जल को बारी-बारी चक्रीय विधि से ऊपर उठाया जाता है। पानी को उठाने की इस प्रकार की विधियों को लोकाञ्चल में सर्वत्र देखा जा सकता है।[2]

---

१. पाँवटी नामक जलयन्त्र में मानव अपने पांवों से चक्र का घूर्णन करता हुआ जलोत्थान करता है)। बारहवीं सदी के एक शब्दकोश में आरहट्टिय-नर शब्द का प्रयोग यह बताता है कि जलोत्थान के लिए मनुष्यों का उपयोग होता था। (सोसायटी एंड कल्चर इन द नॉदर्न इण्डिया इन द ट्वेल्थ सेंच्युरी : बी. एन. एस. यादव, इलाहाबाद, १९७३ ई., पृष्ठ १३४-३४ एवं भारत के प्राचीन नगरों का पतन : डॉ. रामशरण शर्मा, नई दिल्ली, १९९६ ई., पृष्ठ २१७)

२. राजा भोजराजकृत 'समरांगणसूत्रधार' में जलोत्थान की विधियों का वर्णन हुआ है और उठाए गए जल से संचालित होने वाले यन्त्रों का विवरण भी दिया गया है। यथा—

निम्नगं भवति द्रोणीदेशादूर्ध्वस्थिताज्जलम्। यत्र तत् पातयन्त्रः स्याद् वाटिकादिप्रयोजनम्॥

जलों को चढ़ाकर गिराने वाले पात यन्त्रों में पहली गति वाला वारि-यन्त्र निम्नग होगा। इसमें जल द्रोणी-देश से अर्थात् नहर से अन्यत्र ऊँचाई के स्थान पर (टंकी आदि) में भरा हो। वहाँ से पात-यन्त्र (नल, टोंटी आदि) से उस संगृहीत जल को गिराया जाए। यह जल वाटिका, बाग-बगीचों की सिंचाई के काम में लिया जाता है।

उच्छ्रायसमपाताख्यं यन्त्रोर्ध्वा नाडिका पयः। जलाधारगुणान्मुञ्चेदधस्तात् समनाडिका(कम्)॥

वारियन्त्रों में दूसरी गति वाला उच्छ्राय समपात नामक यन्त्र होगा। इस यन्त्र में नाडिका (नल) द्वारा जल को जलाशय से ऊपर उठाकर पुनः वैसी ही नाडिका (नल) द्वारा नीचे छोड़ा जाता है।

यत्र पातसमुच्छ्रायं पतित्वोच्छ्रायतो जलम्। तिर्यग् गत्वा प्रयात्यूर्ध्वं सच्छिद्रस्तम्भयोगतः॥

जल की तीसरी गति वाला यन्त्र पातसमोच्छ्राय नामक होगा। इसमें गिरता हुआ (पतित्वो) और उठता हुआ जल (उच्छ्रायतो) समान होता है। अतएव वह आड़ा-तिरछा (तिर्यग्) जाकर ऊपर की ओर प्रयाण करता है। इसमें छिद्रों वाले स्तम्भों के सहारे से उठता हुआ भी आड़ा-तिरछा समानतः गिरता है।

तन्नीरं कुल्यकायोगात् सस्यक्षेत्राय शस्यते।
कृषिकार्यरतास्तस्मात् धीमन्तः पुरुषा भुवि॥ १७२॥

उक्त युक्तियों से पानी को धोरों या नालियों से कृषिभूमि पर ले जाया जाता है। चराचर में कृषि कार्य में निपुणजन इस प्रकार कृषिकार्यार्थ जल से सिंचाई करने के कार्य में निरंतर लगे रहते हैं।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्येऽपि युक्तितः।
घटीयन्त्रप्रयोगेन वापीकूपादिनीरकम्॥ १७३॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कोई भी हो, घटीयन्त्र युक्ति के प्रयोग से वापी, कूपादि के पानी को काम में लेना चाहिए।

जलाशयस्थं नीरं वा नदीमातृककुल्यगम्।
ह्रदोत्थं च जलं शुद्धं जलदोषविवर्जितम्॥ १७४॥

इन (मोहरी, पाँवटी, रहट, चड़स आदि) युक्तियों से लोगों को नदियों, झीलों, नहरों व ह्रदों से निर्मल जल का प्रयोग करना चाहिए। दूषित जल वर्जित है।

अन्यदप्याह —

कृषिक्षेत्राय शाकादिस्थानकाय च भूतले।
चम्पकादिलतास्थल्यामपि नीत्वा यथाक्रमम्॥ १७५॥

उक्त पानी से कृषि क्षेत्र, शाक, फलादि की बाड़ियों या भूमि पर स्थित चम्पकादि लता स्थल या उद्यानों को यथाक्रम से सिंचाई की जानी चाहिए।

कृषिप्रयोजनं लोके प्रमुवन्ति यथाविधि।
जलाधारस्थलं तस्मादादौ प्राप्य कृषीवलैः॥ १७६॥

इस प्रकार की लोकाधारित विधियों से कृषि प्रयोजन सिद्ध होता है, किसान

पतित्वोच्छ्रयतस्तोयं तिर्यगूर्ध्वोर्ध्वमेत्यथ। सच्छिद्रस्तम्भयोगेन तत् स्यात् पातसमोच्छ्रयम्॥
उपर्युक्त क्रमानुसार जल की चौथी गति वाला यन्त्र उच्छ्रय संज्ञक होगा। इसमें तिर्यक् या टेढ़े रूप में जल को ऊपर से ऊपर की ओर ही चढ़ाया जाता है और सछिद्र स्तम्भ के सहारे नीचे गिरे हुए से ऊँचाई की ओर जाने वाला होता है अर्थात् इसमें छेद वाले स्तम्भ अर्थात् नल से जल को ऊपर चढ़ाकर गिराया जाता है।
वाप्यां वापि च कूपो विधानतो दीर्घिकादिका विहिता।
यत्रोर्ध्वमम्बु गमयति तदिहोच्छ्रयसञ्ज्ञितं कथितम्॥ (समरांगण. ३१, ११०-११४)
इस क्रम में एक यन्त्र वह होता है जिसमें वापिकाओं, कूपों तथा विधानतः बनी हुई दीर्घिका-कुण्ड-पुष्करों से उचित ढंग से जल को ऊपर की ओर उठाया जाता है। यह यन्त्र उच्छ्राय संज्ञक कहा गया है।

को सर्वप्रथम किसी जलस्रोत से लगे क्षेत्र के लिए ही उस पानी का प्रयोग करना चाहिए।

कुल्याद्यैरपिकूपाद्यैः ह्रदाद्यैरपि भूतले।
जलाशयाद्यैरपि च जलं प्राप्यं हि निश्चितम्॥ १७७॥

उक्त बात निश्चित ही किसी भी नहर, कूप, ह्रद या जलाशय से प्राप्त होने वाले जल के लिए कही जा सकती है।

अथ वृष्टिजलसंरक्षणविचारः —

मेघप्रचारकाले तु वृष्टिः सर्वत्र निश्चिता।
देवयोगोन्मुनीन्द्राणां सङ्कल्पादपि सर्वथा॥ १७८॥

पावस काल में देवयोग, मुनियों के संकल्पादि के वश सर्वत्र निश्चित ही वृष्टि होती है, इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

कादम्बिनीभिः काले तु संवृष्टं सलिलं नृपः।
जलाशयादिस्थानेषु पूरयेत् क्षेमसिद्धये॥ १७९॥

शासक को चाहिए कि वर्षा काल में जो जल बरसता है, सभी के मङ्गल-माङ्गल्य के लिए उसे बाँध, जलाशयादि संग्रह स्थलों पर जमा करने या रोकने की व्यवस्था करें अर्थात् मेघों से प्राप्त दुर्लभ पानी को व्यर्थ नहीं बहने देना चाहिए।

रक्षयेत्तत्प्रयत्नेन जलमूला कृषिर्मता।
अतः सर्वत्र भूपालैरन्यैः पुरुषपुङ्गवैः॥ १८०॥

जल के संग्रहण और रक्षण का हरसम्भव प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि समस्त कृषिकार्य, उत्पादन आदि को जल पर ही निर्भर बताया गया है। ऐसे में शासकों, गणमान्यजनों को जल रक्षा पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

ऋतुकाले तु सर्वत्र जलं प्राप्यं प्रयत्नतः।
संरक्ष्यमिति च प्रोक्तं काश्यपेन महर्षिणा॥ १८१॥

जल की प्राप्ति उसके ऋतुकाल में ही सम्भव है, सर्वत्र उसे पाने और बचाने का प्रयत्न करना चाहिए, इस प्रकार महर्षि काश्यप का कथन है।

॥ इति काश्यपकृषिसूक्तौ प्रथमभागे नदीमातृककुल्याकूपादिक्रम
चतुर्थ कथनम्॥ ४॥

इस प्रकार काश्यपीय कृषि सूक्ति ग्रन्थ के अन्तर्गत प्रथम भाग में नदी मातृक, नहर, कूप आदि क्रम का चौथा कथन पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

*****

अथ पञ्चम कथनम्

॥ कृषीवालानां ग्रामकार्यकराणां च गुणलक्षणकथनम् कृषिप्रशंसा च ॥

कृषकादीनाम् लक्षणः काश्यप उपदिशति —

कृषिकार्यरता ये तु पुरुषाः ग्रामवासिनः ।
दंभासुयादि मुक्ताश्च परस्परहितैषिणः ॥ १८२ ॥

अब सुधी किसानों और गाँवों में सर्वजनहित के कार्य करने वालों के गुणों पर विचार किया जा रहा है। जो ग्रामवासी पुरुषजन कृषिकार्य में संलग्न होते हैं, उन्हें दम्भ, असूया ईर्ष्यादि बुराइयों से मुक्त होकर परस्पर हित की भावना से ओत-प्रोत होना चाहिए।

गोभूमिदेवभक्ताश्च नितरां सत्यवादिनः ।
परानुकूल्यनिरताः सन्ततं तुष्टचेतसः ॥ १८३ ॥

कृषिकार्य में संलग्नजन गाय, पृथ्वी और ईश्वर की भक्ति में निरत तथा सत्यवादी होते हैं। वे सदैव औरों के अनुकूल होते हैं और उन्हें सन्तुष्ट रखने में लगे रहते हैं।

अजातशत्रवो लोके परकार्यप्रयोजनाः ।
चतुष्पाद्वर्गवात्सल्यभूषिता नयकोविदाः ॥ १८४ ॥

ऐसे लोग अजातशत्रु होते हैं अर्थात् उनका पृथ्वी पर कोई शत्रु नहीं होता, पर कार्य में ही वे अपना हित चिन्तन करते हैं। पशुधन के प्रति उनके हृदय में वात्सल्य का भावाभूषण होता है।

गणनाकर्मकुशलाः शुद्धाः शौचपरायणाः ।
नित्यकर्मरताः काले कृतातिथिस(?सु)त्क्रियाः ॥ १८५ ॥

ग्रामवासिन, कर्मचारी गणनाकर्म में कुशल, शुद्ध और शौच परायण, नित्यकर्म में संलग्न होते हैं तथा अपने कर्तव्यों को सही समय पर संपादित करने वाले और अतिथि सत्कार में तत्पर रहने वाले होते हैं।

तन्द्रालस्यादिहीनाश्च कामक्रोधादिवर्जिताः।
परस्परं स्नेहभाजः साह्यकर्मरताश्च ये॥ १८६॥

उनमें तन्द्रा और आलस्य नहीं होता, वे काम, क्रोधादि का त्याग किए, परस्पर स्नेह के भाजन, परस्पर समरसता रखने वाले, एक दूजे की सहायता करने का भाव रखने वाले होते हैं।

ते तूत्तमाः समादिष्टाः पुरुषाः पुण्यदर्शनाः।
जलाशयतटादीनां कुल्यादीनां च रक्षकाः॥ १८७॥

जो जलाशयादिकों के तट, नहरों आदि का संरक्षण करते हैं और पुण्यप्रदर्शक, पवित्र भाव का प्रदर्शन करते हैं, वे उत्तम और निपुण लोग कहे जाते हैं।

गोरक्षणैकनिरताः राजविश्वासशालिनः।
पुत्र पौत्रादिसम्पन्नाः श्वशुरभ्रातृवर्गकाः॥ १८८॥

इसी प्रकार वे गायों की रक्षार्थ तत्पर, शासक के प्रति विश्वसनीय या राजाओं के विश्वासशाली, पुत्र-पौत्रादि, श्वसुर, भ्रातृवर्ग से सम्पन्न होते हैं।

ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्याः शूद्राश्च कृषिजीविनः।
सङ्कीर्णवर्णजा ये तु व्याधाद्या ये नरा भुवि॥ १८९॥
आखेटरसिका ये तु ये च गोरक्षका मताः।
ये त्वजापालकाः ख्याताः ये चान्ये कृषिजीविनः॥ १९०॥
ते सर्वे मनुजा लोके सर्वदेशेषु सर्वथा।
परस्परप्रीतियुक्ताः लोकक्षेमाय दीक्षिताः॥ १९१॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्य कोई भी सङ्कीर्ण वर्ण में उत्पन्न अथवा व्याधजन जो कृषि कार्य पर आश्रित हों, आखेट पसंद करने वाले, गौधनचारक, बकरियों का पालन करने वाले या अन्य कृषिजीवी लोग— वे सभी इस पृथ्वी पर सभी देशों में परस्पर प्रीति से युक्त रहकर लोकक्षेम या लोगों की भलाई के मार्ग के अनुगामी होते हैं।

ग्रामाधिपत्यादीनामाह —

ग्रामाग्रगण्यैः जात्यग्रगण्यैरेवं नृपाज्ञयाः।

शिक्ष्या:(क्ष्य?)स्ववृत्तयो लोकवार्ताभीताः कृपालवः ॥ १९२॥

शासक की आज्ञानुसार ग्रामाग्रगण्य (ग्रामाधिप), जात्याग्रगण्य (समुदाय श्रेष्ठी या प्रमुख) कार्य करते हैं, वे हितैच्छा से लोकवार्ता या कृषि कार्य से स्ववृत्ति की सीख देते हैं।

स्वस्वजीवनरक्षाख्यमखेपु कृतदीक्षकाः।
सर्वप्राणिहितायैते कथिता पुण्यपू(पु?)रुषाः॥ १९३॥

ऐसे पुण्यपुरुष, मुखिया लोगों को अपने-परायों के जीवन की रक्षार्थ तत्पर रहने को कहते हैं, यज्ञादि कृत्यों में दीक्षित करते हैं, वे सभी प्राणियों के हितों की रक्षा करते हैं।

तेषु ये ब्राह्मणाः शुद्धाः सत्यधर्मपरायणाः।
कृपालवो नीतिविदः पश्चात्तापादिभूषणाः॥ १९४॥

वे ब्राह्मण जो अन्तःकरण से शुद्ध, सत्य धर्म परायण, कृपालु, नीतिविद् और पश्चातापादि गुणों से भूषित होते हैं,

यथार्हदण्डकाः सर्वरक्षाकर्मणि दीक्षिताः।
नृपालाज्ञापालनोत्काः बहुसद्गुणमण्डिताः॥ १९५॥

जो आवश्यकता को जानकर आवश्यक दण्ड प्रावधान निश्चित कर सकता हो, सभी प्राणियों की रक्षा के कार्य में प्रवीण हो, नृपाज्ञाओं के पालन के लिए प्रस्तुत हों और बहुविध सद्गुणों से परिपूर्ण हो,

ग्रामाधिपतयस्ते तु कर्तव्याभूतिमिच्छता।
ग्रामस्यैकस्य वा ते तु ग्रामाणां वा क्वचित् स्थले॥ १९६॥

राजा या शासक को चाहिए कि ऐसे ही ब्राह्मण को समृद्धि के लिए किसी ग्राम का मुखिया अथवा ग्रामाधिपति नियुक्त करें। कहीं-कहीं वह एक या एक से अधिक ग्रामों का मुखिया भी बनाया जा सकता है।

न्यायान्याय्यक्र मस्थैर्यधर्मस्थापनकारिणः।
ते वै कृषिक्रियासाह्यकारिणः सम्प्रकीर्तिताः॥ १९७॥

इस प्रकार की नियुक्ति कृषि आदि कार्यों के लिए उचित हैं क्योंकि वे ग्रामाधिपति (कृषि विषयक) विवादों, किसी के प्रति हुए अन्याय के प्रसङ्ग में न्यायोचित निर्णय को स्थिर करते हैं और धर्मपालन की प्रक्रिया को बनाए रखते हैं।

भूपालैः क्षत्रियैरेवं धनिकैर्वैश्यकैरपि।
कृषिकार्येषु तैः साह्यं कार्यं लोकहिताय हि॥ १९८॥

इस प्रकार शासक को, क्षत्रिय, धनिकों, वैश्यों को लोकहित की दृष्टि से राज्य के कृषिकार्य के निमित्त सहायता करनी चाहिए।

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं कृषिसाह्यमितीरितम्।
भूपालैः क्षत्रियैस्तस्मात् ब्राह्मणैः वैश्यकैरपि॥ १९९॥

कृषि कार्यार्थ की गई सहायता को धर्म और यश का साधन माना गया है, यह आयुष्य प्रदायक है। इसलिए शासक को, क्षत्रिय, ब्राह्मण और वैश्यों को चाहिए कि वे कृषिकार्य में हरसम्भव सहायक बने।

शूद्रैरपि यथाशक्ति कृषिसाह्यं महाफलम्।
नानाविधानां बीजानां गवामपि च दानतः॥ २००॥

इसी प्रकार शूद्र वर्गोत्पन्न व्यक्ति को भी इस कार्य में महत्फल जानकर सहायता करनी चाहिए। इस दिशा में विशेषकर नाना प्रकार के बीजों, फलों का दान (उत्पादन) करके भी सहायता की जा सकती है।[१]

अत्रैव सुभाषिताः —

क्षेत्रदानान्महापुण्यमाहुर्लोके मुनीश्वराः।
कुल्याखननतो वापि सस्यक्षेत्रस्य रक्षणात्॥ २०१॥

मुनीश्वरों का मत है कि किसी क्षेत्र (भूमि) के दान से, कूप-वापियों, नहरों के निर्माण और कृषि क्षेत्र की रक्षा से महापुण्य की प्राप्ति होती है।

जलाशयस्थापनाद्वा वाप्यादीनां विशेषतः।
अन्नशालास्थापनाद्वा कृषिसाह्यं महाफलम्॥ २०२॥

जलाशयों के निर्माण, विशेष रूप से कूप-बावड़ियों की खुदाई, अन्नशालाओं की स्थापना और कृषि के विकास से महत्फल अर्जित किया जा सकता है।

गवां च संरक्षणतो ब्राह्मणानां विशेषतः।
यथाशक्तिक्रियासाह्यं महाफलमुदीरितम्॥ २०३॥

---

१. महाभारते—
दमेन शोभते विप्रः क्षत्रियो विजयेन तु।
धनेन वैश्यः शूद्रस्तु नित्यं दाक्ष्येण शोभते॥ (शान्तिपर्व २९३, १)

गौधन और ब्राह्मणों के संरक्षण और अपनी सम्पूर्ण क्षमताओं के अनुसार कृषि कार्यार्थ योगदान किए जाने से महत्फल का प्रतिफल पाया जा सकता है।

तत्रैव रक्षकनियुक्तिनिर्देशः —

तस्मात् सर्वत्र देशेषु पुरुषास्तु कृपालवः।
ग्रामरक्षणभृत्यांश्च तटरक्षणभृत्यकान्॥ २०४॥

कृषि सम्पन्न प्रदेश में सावधानी पूर्वक सर्वत्र ग्राम रक्षार्थ और जलाशयों के तटों के रक्षार्थ भृत्यों या कर्मचारियों की नियुक्ति की जानी चाहिए।

स्थापयित्वा ही सर्वत्र तत्र-तत्र विशेषतः।
विद्राव्य चोरान् दण्ड्यांश्च दण्डयित्वा यथाक्रमम्॥ २०५॥

इन कर्मचारियों को क्षेत्र की आवश्यकता के अनुसार कार्य करना चाहिए, यदि वे आवश्यक समझें तो चोरों, तस्करों को देश निकाला दे दें अथवा उनको उनके अपराध के अनुसार निश्चित दण्ड भी दें।

धर्म स्थितिं च परमं सुखं जीवनरक्षणम्।
प्रकुर्वन्तस्तु पुरुषाः देवैः श्लाघ्या प्रकीर्तिताः॥ २०६॥

इस प्रकार कर्मचारियों को धर्म की स्थिति या नियमों की पालनाएँ बनाए रखने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। धर्म की स्थिति जीवन रक्षक और परम सुखद हैं। ऐसे नियम परायण पुरुषों की देवता भी प्रशंसा करते हैं।

तत्रैव नियुक्त्यार्थ निर्देशमाह —

सत्यं दानं क्षमाशीलमानृशंस्यं तपो घृणा।
यस्मिन् संदृश्यते सर्वं नियोक्तव्यः स पूरुषः॥ २०७॥
ग्रामन्यायसभायां च भूमिपालैर्यथाक्रमम्।

शासक को चाहिए कि जो सत्यव्रत हो, दानकर्ता, क्षमा, शीलयुक्त या चरित्रवान और दयालु तथा तपस्वी हो, ऐसे व्यक्तियों की अनुकम्पापूर्वक नियुक्ति की जानी चाहिए। ग्रामन्याय सभाओं व भूमिपालन के लिए यथाक्रम ऐसे ही व्यक्तियों को रखा जाना चाहिए।

अन्यदप्याह —

ग्रामाधिपत्यं च तथा कृषियुक्तिप्रवर्तनम्॥ २०८॥
तद(ा)धीन शुभकरमित्याहुः परमर्षयः।

सन्त, महापुरुषों का सुझाव है कि उचित समय पर ग्रामीण सभाओं व न्यायालयों में उपर्युक्त गुणोचित व्यक्तियों को ही अधिकारियों के रूप में नियुक्त किया जाना श्रेयस्कर होता है। ऐसे व्यक्तियों के हाथों से कृषि का उद्धार होता है।

अन्यदप्याह —

ब्राह्मणानामलाभे तु क्षत्रियो वैश्य एव वा॥ २०९॥
तत्र संयोजनीयः स्यात् प्रजानां क्षेमहेतवे।
सर्वत्रार्षं प्रमाणं च क्षेमाय विजयाय च॥ २१०॥

यदि कोई ब्राह्मण नहीं मिले तो प्रजा की रक्षा के निमित्त किसी क्षत्रिय अथवा वैश्य को भी वहाँ पर नियुक्त किया जा सकता है। हर प्रकार से कार्य की सफलता एवं सुरक्षा के लिए सन्तों, सज्जनों की प्राधिकारता सर्वोच्च जाननी चाहिए।

शूद्रस्य नियुक्तिविषयेनिर्देशमाह —

कृषियुक्तिस्तु लोकेऽस्मिन् क्वचित् शूद्रेष्वपि स्थिता।
स शूद्रः सद्गुणाढ्यश्च विप्रभक्तिपरायणः॥ २११॥

उपर्युक्त निर्देश के बावजूद कभी-कभी इस लोक में शूद्रों, अन्त्यजों में भी कृषियुक्तिकर्मार्थ योग्यताएँ मिलती हैं, ऐसे शूद्र का चयन किया जा सकता है किन्तु उसकी विप्रभक्ति परायणता को देखा जाना चाहिए।

अन्यदप्याह —

शास्त्रविश्वासशाली च मानज्ञः साधुसेवकः।
धीमान् कालप्रमाणज्ञः हितकारी हितप्रियः॥ २१२॥

इस सम्बन्ध में कालानुसार नियुक्त्यर्थ विचार आवश्यक है तथापि यह ध्यान रखना चाहिए कि वह ज्ञानी हो, साधुओं का सेवक हो, पुण्यात्माओं का दास, बुद्धिमान, हितकारी एवं हितप्रिय हो।

अन्यदप्याह —

भवितव्यश्च विनयी तद्युक्तिः श्लाघनास्पदम्।
प्रायो ग्रामेषु सर्वत्र भृत्या शूद्राः प्रकीर्तिताः॥ २१३॥

साथ ही ऐसे व्यक्ति की अर्हताओं में यह ज्ञातव्य है कि वह विनयी हो, अनुशासित हो, उसकी योजनाएँ प्रशंसनीय हो। यूं गाँव में सामान्यतः हर स्थान पर अनुचर वर्ग को शूद्रवर्ग की कोटि में लिया गया है।

पुनरपि —

त एव कृषिकार्येषु योक्तव्या नान्यजातयः।
वैश्याश्च क्षत्रियाश्चैव गुणाढ्याः सूक्ष्मबुद्धयः॥ २१४॥
गणनादिक्रि यास्वेवं रक्षणादि क्रि यासु च।
नियोक्तव्या भूमिपालैः विप्रा नीतिषु नित्यशः॥ २१५॥

केवल उक्त वर्गों से ही व्यक्तियों को कृषिकार्य के लिए चयनित किया जाना चाहिए, किसी अन्य वर्ग से नहीं। वैश्य व क्षत्रिय गुणों से युक्त हों और सूक्ष्म बुद्धिवाले हों। उन्हें गणना एवं अन्य व्यवसायों के लिए सुरक्षा आदि के कर्तव्यों के लिए राजा को नियुक्त किया जाना चाहिए किन्तु राज्य की नीति निर्धारण जैसे मामलों में सदा ही ब्राह्मणों को वरीयता दिया जाना उचित होता है।

अथ पशवरक्षादीनां —

गवां रक्षणकार्येषु प्रजारक्षणकर्मणि।
चोरादिदण्डकार्येषु जलाधारादिरक्षणे॥ २१६॥
देवालयादिरक्षासु कृषिकार्ये विशेषतः।
कार्यान्तरेष्वपि ग्राम्येष्वेवं भूपालकर्मणि॥ २१७॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च दृढबुद्धयः।
सर्वे सर्वत्र योक्तव्याः तदा क्षेमाय कल्पते॥ २१८॥

राज्य में पशु-चौपायों की सुरक्षा के लिए, प्रजा की रक्षा के उपायों के प्रसङ्ग में, चोरादि को दण्ड दिए जाने के लिए और जल संग्रह व रक्षणार्थ, देवालयों की निगरानी और अन्य मुख्य कृषि से जुड़े साहसिक कार्यों के लिए तथा गाँवों व राजकीय साहसपूर्ण कार्यों सहित अन्य प्रकरणों में ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों में से कोई भी जो निर्णयात्मक दृष्टि से दृढ़ हों, को किसी भी अवस्था में नियोजित किया जा सकता है, ऐसी नियुक्ति से सुरक्षा कार्य प्रशस्त होता है।

अन्यदपि —

तदा जनपदस्यापि राष्ट्रस्य च विशेषतः।
सुखादिरैकमत्याच्च जायते परमं सुखम्॥ २१९॥

राज्य के हित में इस प्रकार के सहमति पूर्वक किए गए निर्णय से जनपद और राष्ट्र के लिए सुखद परिणाम प्रात होते है और सन्तोष की प्राप्ति होती है।

अधुना भार्गवोक्ति —

ऐककण्ठ्यं चैकमत्यं पतङ्गेषु च नित्यशः।
दृश्यमिती निर्दिष्टं भार्गवेणेह मौनिना॥ २२०॥

महर्षि भार्गव की उक्ति है कि राज्य में एकता, सामूहिकता पर सदैव ध्यान दिया जाना चाहिए, इसका पाठ हमें पतङ्गों से पढ़ना चाहिए जो कि एक ही स्वर एवं एक ही राय वाले होते हैं।

तस्मात् ग्रामे जनपदे पुरे वा दुर्गकल्पने।
निवासिनो जनाः सर्वे गतासूयादिदुर्गुणाः॥ २२१॥

इसी प्रकार गाँव, जनपद, पुर और दुर्ग या राजधानी की बस्तियों में सभी मनुष्यों को ईर्ष्यादि दुर्गुणों से रहित होकर मिलजुल कर निवास करना चाहिए।

निवासिनाकर्तव्यमाह —

सेतुसंरक्षणे मार्गरक्षणे कृषिरक्षणे (तथा)।
पुरग्रामादि रक्षासु चाक्रीडोद्यानरक्षणे॥ २२२॥

प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह अपने प्रदेश के सेतु या पुलिया का संरक्षण करे। मार्ग, खेत, पुर, ग्रामादि सहित उद्यानों की रक्षा करते हुए वहाँ पर अपना निवास करें।

अन्यदपि —

प्रजानां रक्षणे गवामपि च रक्षणे।
धर्मरक्षास्वपि तथा न्यायकार्यस्य रक्षणे॥ २२३॥

इसी प्रकार प्रत्येक नागरिक कस्बे के मनुष्यों और गौधन आदि प्राणियों की समान रूप से रक्षा करना अपना कर्तव्य माने। धर्म की रक्षा सहित न्यायकार्य की पालना निश्चित करें।

अन्यदप्याह —

यच्चान्यात् रक्षणं प्रोक्तं नानारूपं महर्षिभिः।
सर्वासु तासु रक्षासु सर्वैर्ग्रामादिवासिभिः॥ २२४॥
प्रत्येकमादरः श्रेयान् शस्यते शास्त्रचोदितः।

महर्षियों का कथन है कि सुरक्षा की आवश्यकता वाले सभी मामलों में गाँव

के निवासियों को वैयक्तिक रूप से जिम्मेदार बनाया जाना चाहिए। प्रत्येक का आदर और श्रेय-सम्मान हो, यह शास्त्रों की उक्ति है।

तत्रैव प्रजापालनाय निर्देशमाह —

यस्मिन् ग्रामेऽथवा राष्ट्रे राज्ञः सद्म न कल्पितम्॥ २२५॥
तस्मिन् देशे विशेषेण प्रजानां पालनाय हि।
अमात्यो वा राजवंश्यः गुणी प्रतिनिधिस्तु वा॥ २२६॥
प्रकुर्वीत निवासं तु धनसेना सहायवान्।
प्रजाभिः प्रार्थितं दत्वा रक्षेत् ताश्चापदो भृशम्॥ २२७॥

यदि किसी ग्राम या राष्ट्र (बृहत्पुर या राजधानी) में यदि राजकीय आवास नहीं हो तो वहाँ पर विशेष रूप से मंत्री या राजवंश के परिवार के सदस्य अथवा किसी गुणी प्रतिनिधि को रखकर प्रजा की रक्षा पर ध्यान देना चाहिए, प्रजा की वित्तीय आवश्यकता को जानकर उनकी मदद करनी चाहिए। धन ही नहीं, सङ्कटकाल हो तो सेना भी उपलब्ध करवानी चाहिए।

अन्यदपि —

नानाविधैरूपास्तु जीवनं परिकल्पयेत्।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राः सङ्कीर्ण जातिजाः॥ २२८॥
ये चान्ये मनुजा लोके ग्राम(ा)दिस्थलनिवासिनम्।
स्वधर्मनिरतास्ते तु सुखभाजो यशस्विनः॥ २२९॥

ऐसे रक्षार्थ नियुक्त व्यक्ति को नाना रूपों से प्रजा की सुरक्षा के लिए प्रबंध करना चाहिए। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और सङ्कीर्ण या वर्णसङ्कर जातियों सहित अन्य स्थानों के निवासियों को जो कि अपने स्वाभाविक कर्तव्यों में लगे हों, उन्हें ऐसे परिवेश में प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हुए सुखभाजन होकर यश का अर्जन करना चाहिए।

अन्यदप्याह —

सम्प्राप्तपरमानन्दाः सकुटुम्बाः सगोधनाः।
विराजन्ते हि देशेषु तत्र-तत्र विशेषतः॥ २३०॥

राष्ट्र के निवासियों को अपने कुटुम्ब, गोधनादि सहित अपने-अपने क्षेत्र में निवास करते हुए परमानन्द प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए।

प्रजार्थ निर्देशमाह —

नृपाज्ञावर्तिनः सर्वे श्रुतिस्मृतिकृतादराः।
परोपकारनिरतास्तथा वीतभया नराः॥ २३१॥

प्रजाजनों को राजाज्ञानुवर्ती होना चाहिए। श्रुतियों व स्मृतियों के निर्देशों का आदर करना चाहिए। परोपकार में निरत होकर, भयादि से दूर निश्चिन्त होकर निवास करना चाहिए।

अन्यदप्याह —

आधिवाव्याधिनास्ते सत्क्रियाः साधुसेविनः।
विराजन्ते हि देशेषु तत्र-तत्र विशेषतः॥ २३२॥

यह भी निर्देश है कि प्रजा जनों को, जो भी जहाँ पर हों, वहाँ पर आधि-व्याधि से रहित होकर सत्कार्यों में संलग्न हो, साधु-सज्जनों की सेवा का सङ्कल्प लेकर अपना जीवनयापन करना चाहिए।

कृषिवृत्त्यार्थकर्तव्यमाह —

सर्वेषामेव तेषां तु कृषिवृत्तिः सनातनी।
शुभदा भूतिदा श्लाघ(६?)या यथान्यायप्रवर्तनात्॥ २३३॥

सनातन रूप से कृषि वृत्याश्रित जनों ने यह अनुभव किया है कि उचित, न्याय सम्मत आचरण से ही उन्हें यथेष्ट, प्रशंसनीय समृद्धि की प्राप्ति हुई है।

कृषिचतुर्वर्णयोग्यकर्मः —

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्वकर्मनिरता अपि।
कृषिकर्मसु योग्यास्ते साधुश्लाघ्यं हि तद्विदुः॥ २३४॥

यों तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि सभी अपने-अपने कर्म में संलग्न रहते आए हैं तथापि वे कृषिकर्म के लिए योग्य है क्योंकि कहा गया है कि कृषि कर्म सभी के लिए प्रसंशनीय है।

कृषिकर्मप्रशंसामाह —

यज्ञानामपि चाधारः प्राणिनां जीवदायकम्।
कृषिकर्म प्रशंसन्ति मुनयो दिव्यचक्षुषः॥ २३५॥

कृषि कर्म प्राणीमात्र के लिए जीवनदायक कहा गया है, यह यज्ञाधार है, इसीलिए दिव्यचक्षु मुनियों ने कृषि कर्म की सदा से प्रशंसा की है।

के निवासियों को वैयक्तिक रूप से जिम्मेदार बनाया जाना चाहिए। प्रत्येक का आदर और श्रेय-सम्मान हो, यह शास्त्रों की उक्ति है।

तत्रैव प्रजापालनाय निर्देशमाह —

यस्मिन् ग्रामेऽथवा राष्ट्रे राज्ञः सद्म न कल्पितम्॥ २२५॥
तस्मिन् देशे विशेषेण प्रजानां पालनाय हि।
अमात्यो वा राजवंश्यः गुणी प्रतिनिधिस्तु वा॥ २२६॥
प्रकुर्वीत निवासं तु धनसेना सहायवान्।
प्रजाभिः प्रार्थितं दत्वा रक्षेत् ताश्चापदो भृशम्॥ २२७॥

यदि किसी ग्राम या राष्ट्र (बृहत्पुर या राजधानी) में यदि राजकीय आवास नहीं हो तो वहाँ पर विशेष रूप से मंत्री या राजवंश के परिवार के सदस्य अथवा किसी गुणी प्रतिनिधि को रखकर प्रजा की रक्षा पर ध्यान देना चाहिए, प्रजा की वित्तीय आवश्यकता को जानकर उनकी मदद करनी चाहिए। धन ही नहीं, सङ्कटकाल हो तो सेना भी उपलब्ध करवानी चाहिए।

अन्यदपि —

नानाविधैरूपास्तु जीवनं परिकल्पयेत्।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राः सङ्कीर्ण जातिजाः॥ २२८॥
ये चान्ये मनुजा लोके ग्राम(ा)दिस्थलनिवासिनम्।
स्वधर्मनिरतास्ते तु सुखभाजो यशस्विनः॥ २२९॥

ऐसे रक्षार्थ नियुक्त व्यक्ति को नाना रूपों से प्रजा की सुरक्षा के लिए प्रबंध करना चाहिए। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और सङ्कीर्ण या वर्णसङ्कर जातियों सहित अन्य स्थानों के निवासियों को जो कि अपने स्वाभाविक कर्तव्यों में लगे हों, उन्हें ऐसे परिवेश में प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हुए सुखभाजन होकर यश का अर्जन करना चाहिए।

अन्यदप्याह —

सम्प्राप्तपरमानन्दाः सकुटुम्बाः सगोधनाः।
विराजन्ते हि देशेषु तत्र-तत्र विशेषतः॥ २३०॥

राष्ट्र के निवासियों को अपने कुटुम्ब, गोधनादि सहित अपने-अपने क्षेत्र में निवास करते हुए परमानन्द प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए।

नृपात् दत्तं (प्राप्तं!) स्वतःक्रीत सस्यक्षेत्रं तु मानवाः।
सम्प्राप्य यत्नवन्तश्च कृषिकार्यं कृतादराः॥ २३६॥

कृषि के निमित्त कोई क्षेत्र (खेत, बीड़ आदि) राजकृपा से प्राप्त हो अथवा स्वयं द्वारा खरीदा गया हो, उस पर कृषि के निमित्त स्वयमेव ही जुट जाना कर्तव्य है।

देवानां च मुनीनां च ते मताः प्रीतिदायिनः।
धनानामपि सर्वेषां कृषिरेव परं धनम्॥ २३७॥

स्वयमेव ही कृषि करने वाले ऐसे लोग देवताओं और मुनियों के हृदय में प्रीति को बढ़ाने वाले होते हैं क्योंकि कृषि ही समस्त प्रकार की सम्पत्तियों को प्रदान करने वाली मानी गई है।

परैपग्राह्यमादिष्टं सर्वश्लाघ्यं महाफलम्।
देवानां प्रीतिजनकं शुद्धद्रव्यप्रदायि तत्॥ ३३८॥

कृषि कर्म की प्रशंसा इसलिए भी है कि यह एक ऐसा साधन और साध्य है जिसका कोई हरण नहीं कर सकता है, यह सर्वप्रिय महाफल है, देवताओं के लिए प्रीतिजनक है, यह शुद्धद्रव्य प्रदायक है और यह सभी के निमित्त अधिकृत है।

पारतन्त्र्यहारीकर्मः —

पारतन्त्र्यहरं चैव नित्यं लक्ष्मीविलासकृतम्।
तथातिथीनां देवानां स्वकुटुम्बस्य जीवदम्॥ २३९॥

कृषि कर्म परतन्त्रता का उन्मूलन करने वाला है। यह नित्य वैभव और विलास को करने वाला है, यह अतिथियों और देवताओं के साथ-साथ स्वकुटुम्ब को जीवन देने वाला भी है।

नानाविधानन्दकरं कृषिकर्म प्रशस्यते।
अतस्तदन्या वृत्तिस्तु पारतन्त्र्येण गुम्फि(फि?)ता॥ २४०॥

कृषि कर्म वास्तव में नाना विधानों से उत्पन्न होने वाले आनन्द को करने वाला प्रशस्त कर्म माना जाता है। इसके साथ अन्य कई प्राणियों की वृत्ति जुड़ी हुई है, यह उनका आश्रय है।

पुनर्प्रशंसामाह —

पुण्यानां ह्यनिदा चापि निन्दिता तत्त्वदर्शिभिः।
अतः सद्गुणसम्पन्नाः पुरुषा स्वप्रयत्नतः॥ २४१॥

वेदाध्यन सम्पन्ना अपि रक्षाप्रवत्तयः।
वाणिज्यवृत्तयश्चान्ये शूद्राः सङ्कीर्णजा अपि॥ २४२॥

अन्यान्य साधनों, पर-व्यवसायों को भले ही तत्त्वदर्शियों ने निन्दित बताया है किन्तु कृषि को नहीं, अतएव सद्गुणों से सम्पन्न पुरुषों को अपने प्रयत्न से कृषि कर्म करना ही चाहिए भले ही वह वेदाध्ययन से सम्पन्न विप्रवर्य हो अथवा रक्षात्मक कार्य में लगा रहने वाला क्षत्रिय या वाणिज्यवृत्ति में स्थित वैश्य हो या फिर शूद्र अथवा सङ्कीर्ण किसी भी वर्ग से सम्पृक्त हो।[१]

सत्यव्रता दयाढ्याश्च कृष्यादानरता भृशम्।
सम्मान्यवृत्तयः कामं साधुभिश्च सुरैरपि॥ २४३॥

(सभी को) सदा सत्यव्रत में दृढ़ रहकर, दयार्द्र होकर कृषि कर्म के मार्ग पर आरूढ़ होना चाहिए। ऐसे कृषि कार्य में रत लोगों की प्रशंसा साधु-सन्त ही क्या, देवता भी किया करते हैं।

कृषिरक्षाधर्माह —

कृषिप्रवृत्तिं सर्वेषां देवानां प्रीतिदायिनीम्।
यत्नतो रक्षयेयुस्तां जीवानां जीवनप्रदाम्॥ २४४॥

कृषि की दिशा में प्रवृत्ति से सदैव देवताओं की प्रीति मिलती है अतः इस कर्म भाव की सदा ही प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि इसी में समस्त प्राणियों का जीवन निहित है।

वने जनपदे देशे क्षेत्रे ग्राम्ये भृगोस्तढे।
कृषिप्रवृत्तिं सङ्कल्प्यां मन्यन्ते हि मुनीश्वराः॥ २४५॥

मुनीश्वरों का मत है कि कृषि सर्वत्र सङ्कल्पपूर्वक होती रहनी चाहिए चाहे वह वन हो, जनपद, देश, क्षेत्र, ग्राम अथवा वहाँ का कोई ऊँचा भूभाग ही क्यों न हो। कृषि अनिवार्य की जानी चाहिए।

---

१. श्रीमद्भगवद्गीता में स्वभाव से उत्पन्न गुणों द्वारा चतुर्वर्णों के कर्तव्य बताए गए हैं— शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥ शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्। दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥ कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्। परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्॥ (गीता १८, ४२-४४) सातवीं सदी में सम्पादित हुई पराशरस्मृति में विप्रादि समस्त जनों को कृषि कार्य करने की आज्ञा दी गई है।
श्रीकृष्ण ने अपने कर्म-धर्म की प्रशंसा की है और पराये को भय देने वाला बताया है— श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥ और भी, श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥ (उपर्युक्त ३, ३५; १८, ४७)

पुरातनदृष्टान्तपूर्वकनिर्देशमाह —

पुरातनैस्तु मुनिभिरुटजाङ्गण भूमिषु।
कृषिकर्मकृतं लोके सर्वप्राणि हितार्थिभिः॥ २४६ ॥

पूर्व युग में मुनियों ने प्रत्येक मुक्तस्थल भले ही वह किसी कुटीर का आङ्गन ही क्यों न हो, पर कृषि कर्म किया है। वे इस बात को भली भाँति जानते थे कि कृषि से ही समस्त प्राणियों का हित जुड़ा हुआ है।

तदादि कृषिकार्यं तु खण्डशः सूक्ष्मबुद्धिभिः।
नीतं देशेषु सर्वत्र फलदं चाभवत् क्रमात्॥ २४७॥

(यह सच भी है कि) देश के प्रत्येक ओर-छोर पर सूक्ष्मबुद्धि रखने वालों ने कृषि की गतिविधियाँ आरम्भ की और उससे यथेष्ट फल प्राप्त किया।

अतः कृष्यादानमेतत् सर्वैः पुरुषपुङ्गवैः।
सूक्ष्मधीभिरिहासेव्यं शाश्वतानन्द हेतवे॥ २४८॥

अतएव लगातार प्रसन्नता, शाश्वत आनन्द को बनाए रखने के लिए सभी सूक्ष्म बुद्धि वाले लोगों, पुरुष-पुङ्गवों ने कृषि कर्म को अङ्गीकार किया है।

इति काश्यपकृषिसूक्तौ प्रथमभागे कृषीवलानां ग्रामकार्यकराणां च
गुणलक्षणकथनम् कृषिप्रशंसा नाम पञ्चमं कथनम्॥ ५॥

इस प्रकार काश्यपीय कृषि सूक्ति ग्रन्थ के अन्तर्गत प्रथम भाग में किसान, ग्रामीण कार्यकर्ताओं के गुणों के लक्षणों का कथन और कृषि प्रशंसा नामक पांचवां कथन पूर्ण हुआ॥ ५॥

*****

अथ षष्ठः कथनम्

॥ कृषिकार्यार्हद्रव्यसङ्ग्रहणमाह॥

काश्यप उपदिशति। शुभ मुहूर्ते कृषिक्रियाम् —

मेधावी कृषिकार्यज्ञः भूलक्षणविदां वरः।
शुभे मुहूर्ते सुमनास्त्वदारम्भे कृषिक्रियाम्॥ २४९॥

(अब षष्ठ कथन आरम्भ होता है, इसमें कृषि कर्म के लिए द्रव्य सङ्ग्रहण पर विचार करते हुए काश्यप कहते हैं कि) मेधावी कृषि कर्म कर्ता जो कि भूमि लक्षणों का जानकार हो, उसे कृषि की आवश्यक क्रियाओं का आरम्भ सत्रारम्भ में शुभ मुहूर्त में करना चाहिए।

त्रिमूर्तिभूदेवीधान्यदेवीध्याननिर्देशमाह —

सेवेत फलसिध्य(द्य)र्थं त्रिमूर्तिध्यानपूर्वकम्।
भूदेवीं धान्यदेवीं च स्मृता मनसि निर्मले॥ २५०॥

(कृषक को चाहिए कि वह) अपने कार्य में सफलता के लिए त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर) का ध्यान कर, भूदेवी, धान्य की अधिष्ठात्री देवी का निर्मल मन से स्मरण करें।

तत्रैव गोस्थानालङ्करणमाह —

पूजयित्वाऽथवा भक्त्या द्रव्यसङ्ग्रहणोद्यतः।
गोष्ठं गोस्थानकं वापि गोमयालेपनक्रियम्॥ २५१॥

यदि कृषक कृषि आदान या संसाधन सङ्ग्रहण की प्रक्रिया में उद्धत हुआ हो तो उसे सर्वप्रथम गोष्ठ या गोठाँ, गायों के स्थान को गोबर आदि से लीपना चाहिए।

गन्धपुष्पाद्यलङ्कारभासुरं च विशेषतः।
तिन्दुकैस्तिनिशैर्वापि सर्जकैः सारदारुकैः॥ २५२॥
गोबन्धतूलकं कृत्वा शृङ्खलाद्यैरथापि वा।
अलङ्कृत्य तु तं देशं गन्धकुङ्कुमपुष्पकैः॥ २५३॥

गायों के उक्त स्थान की लिपाई-पुताई के बाद कृषक को चाहिए कि वह वहाँ पर गन्ध, पुष्पादि से अलङ्करण करें। तिन्दुक या तेंदुपत्ता, तिनिश, सर्जक या सारदारु के काष्ठ से बने गायों के बाँधने के खूँटे-तूलक, गायों के लिए प्रयुक्त होने वाली श्रृङ्खला आदि को गन्ध, कुङ्कुम, पुष्पादि से सजाएँ।

प्रदक्षिणं वा कृत्वा तत्स्थले गाश्चारयेत् बुधः।
शुभलक्षणसंयुक्ताः धेनूः सञ्चारयेदिह॥ २५४॥

इस सब तैयारी के उपरान्त, बुद्धिमान को चाहिए कि वह उस स्थान की प्रदक्षिणा करें और शुभ लक्षणों से सम्पन्न गायों को वहाँ पर प्रवेश करवाएँ।[1]

---

१. धाराधिप महाराज भोजराज ने गोचलन विधि इस प्रकार लिखी है—सर्पेशमैत्रशशिपुष्यपुनर्वसू च वागीश

वृषालङ्कारादीनां-

सवत्सांश्च वृषभान् श्वेताङ्गान् शुभलक्षणान्।
सुवर्णकुप्यशृङ्गाग्रान् गन्धाद्यैश्चाप्यलङ्कृतान्॥ २५५॥

इसके साथ ही कृषक को चाहिए कि वह सवत्स (बछड़ों के सहित)[१] गायों और बैलों को भी वहाँ पर प्रवेश करवाएँ। (कृषि कार्य से पूर्व) बैलों का देखें कि वे श्वेत अङ्ग वाले हो, शुभ लक्षणों वाले हों। उनको स्वर्णादि की कुप्पिकाएँ, खुङ्गालियाँ सींगों पर धारण करवाए, गन्धादि से उनके बदन का लेपन करें और अलङ्करण करें।[२]

घासैः शस्यैः पलालैश्च जलपात्रैश्च मङ्गलैः।
पूरयेदथ तंदेशं गोष्ठे शुभमुहूर्तके॥ २५६॥

इसके साथ ही उक्त गोशाला, खिड़क को घास, ताजा शस्य (रिजका,

शक्रशततारधनिष्ठहस्ताः। पौष्णानलानिल विशाखमघाश्वि मूलागोषु प्रशस्तमथवार्थ विशेषयात्रा॥ याम्यो हरिर्दहनमैत्रफणींद्रहस्ता धाताहिर्बुध्नमरुदयम विश्वचित्रा। वारेऽर्कसूनुयसुधात्मजभास्करणां कुर्य्यात्प्रवेशागमने मरणं पशूनाम्॥ त्रिपूत्तरेषु रोहिण्यां सिनीवाली चतुर्दशी। श्रवणे चैव नक्षत्रे चित्रायामष्टमीषु च॥ गोषु कार्य्यं न कुर्वीत प्रस्थानं वा प्रवेशनम्। पशवस्तत्र नश्यन्ति अन्यत्र वनचारिणः॥ (राजमार्तण्ड ९६४-९७)

१. सवत्सा धेनु को भारतीय जनजीवन में अति ही शुभ माना गया है। इसे शकुन के रूप में भी देखा जाता है। ज्योतिष और शकुनशास्त्रों में बछड़े सहित गाय की महिमा आई है। मुहूर्त ग्रन्थों में आया है कि बछड़े सहित माँ और सवत्स धात्री को देखकर कूच करने पर विजय मिलती है, व्यक्ति की कामनाएँ फलवान् होती है। श्रीपतिभटाचार्य ने कहा है कि भेरि, मृगङ्ग, मर्दल, शंख, वीणा, वेदध्वनि, मधुर-माङ्गलिक गीतों का घोष, पुत्रान्वित युवती और सवत्सा सुरभि, धुले हुए वस्त्रों को लिए धोबी-रजक यदि सामने आए तो प्रशस्त जाने—भेरिमृदङ्ग मृदुर्मद्दल शङ्खवीणा वेदध्वनिर्मधुरमङ्गलगीतघोषाः। पुत्रान्विता च युवतीः सुरभिः सवत्सा धौताम्बरश्च रजकोऽभिमुखः प्रशस्तः॥ (ज्योतिषरत्नमाला, सम्पादक-अनुवादक श्रीकृष्ण जुगनू, यात्राध्याय, ६२-६४)

मयमतम् नामक वास्तुग्रन्थ में आया है कि जब भूमि का परिग्रहण किया जाए तब वहाँ पर गो-वृषादि के साथ निवास करें तो उक्त भूमि गोमय से पवित्र होगी। उनके भ्रमण करने से उक्त स्थल पूजा योग्य होगा। इस भूमि पर गो परिवार का नाद होने से, चलने-फिरने से भूमि का कलुष दूर होगा। जब गो वत्स को दुलार करेंगी तो उसके मुँह से निकला फेन गिरकर भूमि का संशुद्धीकरण करेगा। भूमि गोमूत्र से सिञ्चित होगी, गोबर आदि से विलेपित होगी, गायों के भूसे को चबाने, जुगाली क्रिया से गिरी लार से उसकी उर्वरता बढ़ेगी—

सवृषाश्च सवत्साश्च ततो गास्तत्र वासयेत्। यतो गोभिः परिक्रान्तमुपघ्राणैश्च पूजितम्॥ संहृष्टवृषनादैश्च निर्धौतकलुषीकृतम्। वत्सवक्त्रच्युतैः फेनैः संस्कृतं प्रस्नवैरपि॥ स्नातं गोमूत्रसेकैश्च गोपुरीषैः सलेपनम्। च्युतरोमन्थनोद्गारैर्गोष्पदैः कृतकौतुकम्॥ गोगन्धेन समाविष्टं पुण्यतोयैः शुभं पुनः। तथा पुण्यतिथोपेते नक्षत्रविषये शुभे॥ (मयमतम् : मयकृत, सम्पादक-अनुवादक - श्रीकृष्ण 'जुगनू', वाराणसी, २००८ ई., ४, ५-८)

२. वराहमिहिर ने बैलों के शुभ लक्षण बृहत्संहिता में बताए हैं। अथर्ववेद के गोष्ठसूक्त में गोधन की महिमा आई हैं। (अथर्ववेद ३, १४, १-६)

मेथी), पूस, जल से परिपूर्ण मङ्गल पात्र या कुण्ड से युक्त करना चाहिए। यह समस्त कार्य शुभ मुहूर्त में ही करना चाहिए।[1]

क्रीत्वा वा वृषभान् श्वेतान् शुभलक्षणमानितान्।
धेनूर्वा महिषान् वापि बन्धयेत्तत्र कोविदः॥ २५७॥

कृषकों को चाहिए कि वे अपनी गोशाला, खिड़क के लिए श्वेत बैलों को क्रय करें। ऐसे बैल शुभ लक्षणों से युक्त करें। खरीदी गई गायें हों अथवा महिष, जानकार जनों को चाहिए कि वे चिह्नादि[2] बनाकर ही इन पशुओं को वहाँ बाँधे।

---

१. विट्ठलदैवज्ञ ने पशुओं के रक्षा, स्थिति, निवेश अर्थ में मुहूर्त निम्नानुसार उचित बताया है— चित्रा, रोहिणी, उत्तरात्रय (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद), श्रवण नक्षत्र, अमावस्या, रिक्ता तिथि (४, ९ एवं १४), अष्टमी, मङ्गलवार को पशुधन को खरीदकर कभी बाड़े में प्रवेश नहीं कराना चाहिए। शुभ ग्रहों की राशि (२, ३, ४, ६, ७, ९, १२) के लग्नों में जिनसे आठवाँ भाव शुद्ध (पापग्रह रहित) हो और अपनी योनि के नक्षत्रों (यथा- अश्विनी व शततारक की अश्व योनि, रेवती-भरणी हाथी की, पुष्य-कृतिका मेष की, उत्तराभाद्रपद व उत्तराफाल्गुनी गाय की योनि इत्यादि) और चर संज्ञक नक्षत्र शुभ होते हैं- त्वाष्ट्रध्रुवश्रीपतिदर्शरिक्ता भौमाष्टमीभिर्न पशुप्रवेशः। यानं स्थितिश्चाप्यवनं सुलग्नेऽष्टमस्य शुद्धौ निजयोनिभे स्यात्॥ (मुहूर्तकल्पद्रुम ८, १६)
इसी प्रकार वशिष्ठसंहिता में कहा गया है— त्वाष्ट्रध्रुवश्रीपतिभेषु रिक्ता दर्शाष्टमी भौमदिने पशूनाम्। यात्रा प्रवेशनं न कदाचिदेव कुर्याच्च तेषामभिवृद्धिकांक्षी॥ (वशिष्ठसंहिता १४, ६०)
श्रीपति ने इस सन्दर्भ में लग्न के विषय में कहा है। लग्न में शुभ ग्रह हों, पाप ग्रह से रहित तथा अपने जन्म का नक्षत्र हो, अश्विन्यादि ग्रहों में पशुपालनादि विषयक कार्य किए जाने चाहिए—शुभग्रहोदये शुद्धे नैधने स्वर्क्ष योनिषु। रक्षाविधिक्रियाः शस्ताः पशूनां मुनिभिः स्मृताः॥ (ज्योतिषरत्नमाला १२, २४)
यही मत लल्लाचार्य का है जिसे ज्योतिषरत्नमाला की टीका में विवृत्तिकार महादेव ने उद्धृत किया है—राशिषु तदीशयोनिषु निधन विशुद्धौ। शुभ ग्रहे विलग्ने पशु क्रयं रक्षाकार्यं॥ प्रागयुक्ता योगे लल्लोक्तत्वात्। (ज्योतिषरत्नमाला, महादेवीटीका तत्रैवोद्धृत)
ज्योतिर्विद वशिष्ठ का इस सम्बन्ध में कहना है— शुभखचरे लग्नगते शुभवर्गे चाथ नैधने शुद्धे। पशुसङ्ग्रहणं कार्यं रक्षावृद्धिर्विशेषेतस्तेषाम्॥ (वशिष्ठसंहिता २३, २३)
इसी प्रकार व्यवहारतत्त्व में कहा गया है— स्वयोनिधिष्ण्ये विकुजे पशूनां कर्माथ कुर्याद् बुधेन्दुमन्दे। यानं प्रवेशं च तिथावशैषे चित्रोत्तरावैष्णवभान्येषु॥
इसी प्रकार व्यवहारोच्चय में कहा है— पूर्वात्रयो धनिष्ठेन्द्रपौष्णे सौम्यविशाखयोः। आश्लेषायामथाश्विन्यां यात्रा-सिद्धिश्चतुपदाम्॥ (पीयूषधारा टीका १२, १४ पर उद्धृत)

२. पशुओं की पहचान आदि के लिए ऐसी परम्परा बहुत प्राचीन काल से ही चली आ रही है। पाणिनि पांच और आठ के अंकों सहित स्रुव, स्वास्तिक जैसे चिह्नों द्वारा पशुओं के कानों को चिह्नित करने की परंपरा का वर्णन करते हैं : कर्णे लक्षणस्याविष्टाष्टपञ्चमणिभिन्न छिन्नच्छिद्रस्रुव स्वस्तिकस्य। (अष्टाध्यायी ६, ३, ११५)
ऋग्वेद के काल से ही भारतीय समाज में यह परिपाटी चली आ रही थी। नाभानेदिष्ट मानव ऋषि के सूक्त में वर्णन मिलता है कि राजा सावर्णि ने जिन हजार गायों का दान किया था, उनके कानों पर आठ का अंक दागा गया था : इन्द्रेण युजा निः सृजन्त वाघतो व्रजं गोमन्तमश्विनम्। सहस्रं मे ददतो अष्टकर्ण्यः श्रवो देवेष्वक्रत॥ (ऋग्वेद १०, ६२, ७) इस मंत्र में आठ कानों वाली गाय का अर्थ तो हो नहीं सकता; कान पर आठ का चिह्न

अथ लाङ्गलपूजनम् —

लाङ्गलान् रज्जुजटिलान् हलानपि विशेषतः।
साङ्गान् निरीशवन्तश्च सारदारुकृतान् ततः॥ २५८॥

इस समस्त कार्य के सम्पादन के बाद, खिड़क के बाहर रस्सियों आदि के साथ हल को वहाँ पर लाना चाहिए। यह सारदारु का बना हुआ और नाना अङ्गों वाला, ईशवन्तादि रचनाओं से सम्पूर्ण रचित होना चाहिए।

शुभस्थलेऽथ निक्षिप्य गन्धाम्रदलपुष्पकैः।
चन्दनैः कुङ्कुमैर्वापि मण्डितांश्च विशेषतः॥ २५९॥

उक्त हल व आदान को वहाँ शुभ स्थल पर लाकर रखें, उस पर गन्ध-चूर्ण, आम्रदल या मञ्जरियों, पुष्पों को चढ़ाएँ। चन्दन, कुङ्कुम आदि से विशेष रूप से मण्डित करना चाहिए।

प्रस्थानकाले पूजननिर्देशमाह —

सह मङ्गलघोषेण धान्यदेवीं च पूजयेत्।
भूदेवीमथ लक्ष्यीं च वाणीं गौरीं सुराधिपम्॥ २६०॥

(अब प्रस्थान काल में पूजनादि के विषय में कहा जा रहा है कि) मङ्गल घोष के साथ धान्यदेवी की पूजा करें, भूदेवी, लक्ष्मी, सरस्वती, गौरी और देवराज इन्द्र का पूजन करें।

वरुणं च धनेशं च पूजयित्वा विशेषतः।
स्वकीयं क्षेत्रमासाद्य वृषभैः सह कोविदः॥ २६१॥

इसी प्रकार जल के देवता वरुण और धनाधिप कुबेर की विशेषकर आराधना करनी चाहिए। तदोपरान्त बैलों को साथ लेकर अपने खेतों की ओर प्रस्थान करें।

अर्थ ही उपयुक्त होता है। ऐसे चिह्न को लगाना एक परम्परा सी थी और वह भी पुराने काल से ही चली आ रही थी। ये चिह्न शुभ और समृद्धिकारक भी माने जाते थे। अथर्ववेद में एक प्रसंग में ऐसी गायों का उल्लेख है जिनके कान पर मिथुन को चिह्नित किया जाता था। यही वर्णन मैत्रायणीसंहिता में आया है। इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ में चिह्नों के आधार पर पहचानी जाने वाली गायों का जिक्र भी है। जैसे : स्थूणाकर्णी (खंभों के चिह्न से युक्त), दात्राकर्णी (दरान्ती के चिह्न वाली), कर्करिकर्णी (वीणा के चिह्न वाली)। इस काल में ऋषियों के चिह्नों से गायों को भी पहचाना जाता था। वसिष्ठ की गायों की पहचान स्थूणाकर्णी और जमदग्नि ऋषि की गायों की पहचान कर्करिणीकर्णी के रूप में थी। (प्राचीन भारतीय लिपिमाला : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पुनर्संपादन- डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', जोधपुर, २०१३ ई., भूमिका भाग)

सुमुहूर्त सुलग्नावश्यकत्वमाह —

लाङ्गलैर्भद्रकैर्युक्तः सुमुहूर्ते सुलग्नके।
कर्षणं कारयेदादौ ऐशान्ये कोणके शुभे॥ २६२॥

(भूमि को कब और कहाँ से सर्वप्रथम जोतें, इस विषय में कहा जा रहा है कि) खेतों में हल, भद्रक सहित जाएँ और शुभ मुहूर्त और शुभ लग्न देखकर भूमि को जोतें। सर्वप्रथम हल से हंकाई खेत के ईशान कोण में शुभ होती है।

अन्यच्च —

आग्नेये वापि वा भागे वारुणे वा क्वचित्स्थले।
सलिलापूरणं कृत्वा सुकर्षाय तदा क्रमात्॥ २६३॥

खेत की हंकाई आग्नेय कोण (दक्षिण-पूर्व) और बहुत ही आवश्यक हो तो पश्चिम दिशा में भी किसी भी भाग से जुताई आरम्भ की जा सकती है। (जब जुताई पूरी हो जाए तब) खेत की भली प्रकार से सिंचाई की जानी चाहिए ताकि उपज-निपज यथेष्ट हो सके।

प्रथमं कर्षणं भूमेः क्षेत्रे स्वीये विशेषतः।
कारयेत् वृषवाह्येन हलेन कृषिकार्यवित्॥ २६४॥

अपने खेत में कृषि के लिए पहली बार हल कृषि कार्य करने वाले को ही चलाना चाहिए। इस कार्य में वह हल काम में लिया जाए जो कि (अच्छे) बैलों द्वारा खींचा जाता हो। (आशय ये है कि पहली बार हल में आदमी या श्रमिक को नहीं जोता जाए, बल्कि बैल को ही जोता जाना चाहिए)।

एवं क्रमेण तत्क्षेत्रं चतुर्धा[४] पञ्चधापि[५] वा।
हलेन कर्षयित्वा षट्[६] दिवसं त्वधिकं तु वा॥ २६५॥

इस प्रकार कृषिकार्य के लिए खेत में छह दिनों की कालवधि में चार या पांच बार हल चलाना चाहिए। यह अवधि (आवश्यकता होने पर) अधिक भी हो सकती है।

अन्यदप्याह —

लोष्टांश्च लगुडानन्यान् बहिर्निक्षिप्य गोमयम्।
आजकं वालगं तत्र स्थापयेत् सारवृद्धये॥ २६६॥

हल प्रवाह के समय वहाँ मिले मिट्टी के ढेले, लकड़ियों के टुकड़ों को बाहर

फैंक देना चाहिए। तदोपरान्त गोबर व बकरी की मेंगनियों के खाद को खेत में बिखेरना चाहिए। इस प्रकार भूमि की उर्वरा क्षमता बढ़ाई जा सकती है।

खनित्रान् शङ्कुलान् क्षुद्रतलुकान् खड्कान् तथा।
छुरिका याश्च कृष्यर्हाः द्रव्यशास्त्रेषु निश्चितम्॥ २६७॥
युक्त्या तदानयेत्सर्वं लवित्रं लवसारकम्।

कृषि कार्य में यथावसर भूमि खोदने के उपकरण (खनित्र), शंकुल (कुदाले, कुदाली), छोटे उपकरण, खड़का, हंसुआ, खूँटी, दराँती, छुरी जैसे काटने के औजार आदि का प्रयोगार्थ संग्रह किया जाना चाहिए। इन औजारों में वे सारे ही उपयोगी उपकरण सम्मिलित मानकर प्रयोग में लिए जाने चाहिए जिनका कृषिकर्ताओं ने द्रव्यशास्त्र में निश्चय किया है।

कृषिकार्यार्थ उचितावसरमाह —

यस्मिन् देशे यदा वृष्टिः प्रथमा ह्यश्चते क्षितौ॥ २६८॥
तदा भूकर्षणं श्रेष्ठमाहुरत्र मुनीश्वराः।

मुनियों ने कहा है कि जब आसमान में वर्षा के पहले बादल दिखाई दें तब कृषिकर्ता को समझ लेना चाहिए कि खेत में हल जोतने का समय यही सही है।

कुल्यामुखेन सलिनमापूर्य निजभूमिके॥ २६९॥
सस्यार्हकालेभूमेस्तु कर्षणं च मुनीरितम्।

मुनीश्वरों का यह भी मत है कि फसल की सिंचाई के लिए उपयुक्त अवसर देखकर नहरों, धोरों, कुल्याओं के मुंह खोल देने चाहिए। यह ध्यान में रखना चाहिए कि कृषि के लिए उपयुक्त समय को देखकर हंकाई-जुताई कर ली जाए।

तस्मात्सर्वत्र देशेषु कृषिकालानुरूपतः॥ २७०॥
मित्राणामुपदेशाच्च युक्त्या च कृषिकार्यवित्।
आदौ भूकर्षणं कार्यं सुनिमित्ते सुलग्नके॥ २७१॥

इस प्रकार शुभचिन्तकों की सलाह, कृषि के अनुकूल परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए कृषिविद् को सारे ही प्रदेश में कृषि की गतिविधियां युक्तिपूर्वक भूमि जोतकर आरम्भ कर देनी चाहिए। इस क्रम में आरम्भ में अच्छा शकुन और सुलग्न देखकर भूमि की जुताई को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

॥ इति काश्यपकृषिसूक्तौ प्रथमभागे कृषिकार्यार्हद्रव्यं संग्रहणम्॥ ६॥

इस प्रकार काश्यपीय कृषि सूक्ति ग्रन्थ के अन्तर्गत प्रथम भाग में कृषि कार्य के लिए द्रव्य संग्रह (नामक कथन) पूर्ण हुआ॥ ६॥

*****

अथ सप्तम कथनम्

॥ लाङ्गलपूजाक्रमाह ॥

काश्यप उपदिशति —

लक्षणात् पूर्वमेवेह लक्षणज्ञैः कृषीवलैः।
लाङ्गलाद्यर्चनं कार्यं वृषादीनां विशेषतः॥ २७२॥

काश्यप मुनि कहते हैं कि खेत को जोतने से पहले विधानविदों की सम्मति से किसान को विशेषकर जोतने के काम आने वाले हल के विभिन्न हिस्सों, सूचक चिह्नों, बैल आदि की अर्चना-पूजा का कार्य करना चाहिए।

क्षेत्रस्य वाथ भूम्याश्च पूजनं फलदायकम्।
शुद्धतोयेन गन्धाद्यैः दीपदानैरथापि वा॥ २७३॥

इसी प्रकार निर्मल जल, चन्दन आदि के गन्ध के अर्घ्य सहित दीपदान करते हुए खेत अथवा कृषिभूमि की पूजा की जानी चाहिए। पूजन का यह कार्य अपेक्षित फलदायक होता है।

भूमि प्रार्थनाह —

भूमिदेवि नमस्तेऽस्तु महि सर्वं सहेऽधुना।
कृष्यारम्भं करिष्यापि प्रसन्ना भव सुव्रते॥ २७४॥
कर्षणं ताडनं यच्च त्वयि यद्यत्कृतं मया।
देवि क्षमस्व तत्सर्वं कुरु मह्यं महाफलम्॥ २७५॥
त्वमेव माता सर्वेषां प्राणिनामिह कीर्त्यते।
अतः प्रसन्ना भूदेवि फलं देह्यमितं क्षितौ॥ २७६॥

पूजनावसर पर यह प्रार्थना करनी चाहिए— ''हे भूमिदेवी आपको नमस्कार है। आप बल देने वाली भूमि हैं, अब मैं कृषि से सम्बन्धित कार्य आरम्भ करने जा रहा

हूँ। हे शुभ परिणामदायिनी! सुव्रते! आप मुझ पर प्रसन्न हों। मेरे इन कार्यों में जुताई, दमन (पाटा दबाना) आदि कार्य सम्मिलित हैं। आपके साथ ऐसे कार्यों के लिए आप मुझे क्षमा करें और मुझे महाफल प्रदान करें। कौन नहीं जानता कि आप समस्त प्राणियों की माता हैं। अतएव हे पृथ्वीदेवी! क्षिति! आप मेरे इस खेत में प्रचुर फसल का उत्पादन कीजिएगा।''

इति स्तुत्वा प्रार्थयित्वा भूदेविं विष्णुवल्लभाम्।
प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कारपूर्वं कृषीवलः॥ २७७॥

इस प्रकार विष्णुवल्लभा भूमिदेवी की स्तुति और प्रार्थना करते हुए किसान को चाहिए कि वह नमस्कारपूर्वक अपने खेत की प्रदक्षिणा करें।

दिग्देवान् रक्षकांश्चापि सूर्यमायुष्करं तथा।
स्तुत्वा भूकर्षणविधौ कुर्यादारम्भमुत्तमम्॥ २७८॥

इसी अवसर पर चारों ही दिग्देवों (दिक्पालों), भूमि के रक्षक देवताओं (भौमिया देव, क्षेत्रपाल-खेतलाजी), आयुष्य के कारक भगवान् सूर्यदेव की भी आराधना करनी चाहिए। तदोपरान्त भूमि जोतने की अच्छी शुरुआत करनी चाहिए।[१]

॥ इति काश्यपकृषिसूक्तौ प्रथमभागे लाङ्गलपूजाक्रम सप्तम कथनम्॥ ७॥

इस प्रकार काश्यपीय कृषि सूक्ति ग्रन्थ के अन्तर्गत प्रथम भाग में हल पूजा नामक सातवां कथन पूर्ण हुआ॥ ७॥

*****

अथ अष्टम कथनम्

॥ वृषभराजपूजाक्रममाह ॥

काश्यप उपदिशति —

सौरभेय महासार वृषराजामितद्युते।

---

१. अथर्ववेद के कृषिसूक्त में ये समस्त भाव हैं। इस सूक्त के ऋषि विश्वामित्र हैं, देवता सीता हैं। ऋषियों ने कृषि को सौभाग्य की अभिवृद्धि करने वाला बताया है। लांगल की प्रार्थना स्वरूप कहा गया है कि यह हल ही गौ-बैल, भेड़-बकरी, घोड़ा-घोड़ी, स्त्री-पुरुष आदि को उत्तम घास और धान्यादि देकर पुष्ट करता है— लाङ्गलं पवीरवत्सुशीमं सोमसत्सरु। उदिद्वपतु गामविं प्रस्थावद् रथवाहनं पीयरीं च प्रफर्व्यम्॥ (अथर्ववेद ३, १७, ३)

भूकर्षणविधौ त्वं हि साह्यं कुरुममानघ॥ २७९॥

काश्यप मुनि का कहना है कि जुताई से पूर्व पूजावसर पर वृषभ की प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिए— "हे सौरभेय! सुरभिनन्दन! महासार! महाशक्ति के धारक! वृषराज! अद्वितीय ऊर्जा के धारणकर्ता! निर्मल कार्यसाधक! इस भूमि जुताई के कार्य में आप मेरी सहायता कीजिए।

सुगन्धमाल्यपुष्पाद्यैरद्य त्वा पूजयाम्यहम्।
फलदो भवमे त्वं तु धर्मकृत् स्वस्ति ते भृशम्॥ २८०॥

" हे धर्मकृत्! मैं आपकी सुगन्ध, माला, पुष्पादि से पूजा कर रहा हूं। आप मेरे लिए सुपरिणामदायी हों। हे सर्वसमर्थ! मैं आपके शुभ के लिए सदैव प्रस्तुत रहूंगा।

तृणैः शस्यैश्च सलिलैः त्वां पोष्याम्यहमादरात्।
शङ्करानुग्रहात् त्वं तु फलदो भव मे सदा॥ २८१॥

" मैं आपको अति ही सम्मानपूर्वक आपके लिए तृण-घास, कड़बी-भूसा, पानी आदि प्रदान करता हुआ पोषण करता रहूंगा। आप भगवान् शंकर के अनुग्रह से सदैव मेरे लिए फलदायी बने रहें।

उत्पाद्य तनयान् शश्वत् त्वत्तुल्यबलवीर्यकान्(न्त्?)।
अलङ्कुर त्वं गोष्ठं मे त्वां पोष्याम्यहमादरात्॥ २८२॥

"आप नित्य ही मेरे गाय के गोष्ठ (बाड़े) को अच्छी और अपने ही समान साहस वाली नस्लों से भरा-पूरा रखना। मैं सदा ही सम्मान व श्रद्धा के साथ आपकी सेवा-स्तुति करता रहूंगा।

वृषराज त्वमेवात्र धनधान्यादि वृद्धिकृत्।
धर्मरूप त्वमेवेह तस्मात् त्वां पोषयाम्यहम्॥ २८३॥

"हे वृषराज! आप ही हमारे लिए धन-धान्यादि की अभिवृद्धि में सहायक हैं। आप धर्म के स्वरूप हैं। अतएव मैं आपको नमस्कार करता हूं।

देवयज्ञं भूतयज्ञं यथा मे सफलं भवेत्।
तथा दयां कुरु त्वं तु चापराधं क्षमस्व मे॥ २८४॥

"मुझ पर प्रसन्न होकर आप अपने आशीर्वाद की वृष्टि करें ताकि मेरे देवयज्ञ और भूतयज्ञ जो मैं करने जा रहा हूं, वे सफल हों। आप मेरे किसी भी अपराध के लिए क्षमा कीजिएगा।"

इति सम्प्रार्थ्य वृषभं पूजयित्वा विशेषतः।
श्रान्ता यथा ते न क्लान्तांस्तावत्तत्कार्यमीरितम्॥ २८५॥

इस प्रकार से प्रार्थना करते हुए बैलों की आराधना करके यह ध्यान में रखना चाहिए कि उनसे तब कार्य न लिया जाए जब कि वे कार्य से थककर पसीना-पसीना हो जाएँ।

तन्मनः क्लेशहेतुस्तु विफलाय विनिश्चितः।
तस्मान्न योजयेच्छ्रान्तान् वृषभान् कृषिकर्मणि॥ २८६॥
तदा गोपूजनं शस्तमित्याहुर्मुनिसत्तमाः।

जब भी बैलों पर ज्यादती होती है, उन्हें पीड़ित किया जाता है, उसका परिणाम देश को भुगतना पड़ता है। इसलिए किसान को खेती में थके हारे बैलों को नहीं लगाना चाहिए। मुनिवरों का मत है कि इस विधि से कार्य लेने पर ही गोधन के पूजन की सार्थकता समझनी चाहिए।

इति काश्यपकृषिसूक्तौ प्रथमभागे वृषभराजपूजाक्रमकथनम्॥ ८॥

इस प्रकार काश्यपीय कृषि सूक्ति ग्रन्थ के अन्तर्गत प्रथम भाग में वृषभराज पूजा क्रम कथन पूर्ण हुआ॥ ८॥

*****

अथ नवम कथनम्

॥ सङ्ग्रहेण गोवृषभलक्षणकथनक्रममाह ॥

तत्रादावेवाशुभलक्षणान्याह काश्यप उपदिशति —

गावश्च वृषभश्चैव शुभलक्षणभासुराः।
शुभदाः स्वामिनां प्रोक्ताः देशक्षेमप्रदाश्च ते॥ २८७॥

अब गाय और वृषभ के शुभ लक्षणों का वर्णन किया जा रहा है। शुभ लक्षण वाले ये चौपाये अपने स्वामी के लिए शुभकारक होते हैं और राष्ट्र के लिए क्षेमप्रद व हितवर्धक होते हैं।

कृषिकर्मणि ते योग्याः वृषभा वृषवर्धकाः।
श्वेताङ्गाः किञ्चिदुत्तुङ्गाः वृषभा मञ्जुनेत्रकाः॥ २८८॥

बैलों की कृषि कार्य के लिए योग्यता पर विचार करना चाहिए। वर्धकवृष कृषि कार्य के लिए सर्वथा योग्य होता है। इस प्रजाति का वृषभ श्वेताङ्ग, किञ्चित ऊँचा और सुंदर नेत्रों वाला होता है।

वृषभस्य वर्णादीनां —

गम्भीरनिनदा ये च ते तु ब्राह्मण जातिकाः।
रक्ताङ्गा नितरां तुङ्गाः गम्भीरनिनदाश्च ये॥ २८९॥

गम्भीर निनाद करने (रम्भाने) वाले बैल ब्राह्मण जाति वाले कहे गए हैं। ये रक्ताङ्ग होते हैं और ऊँचाई सहित गम्भीर ध्वनि करने वाले होते हैं।

तेजोबलसमेताश्च ते वृषाः क्षत्रजातिजाः(?काः)।
श्वेतरक्ताङ्कनैर्युक्ताः तन्मण्डलविभूषिताः॥ २९०॥

तेज और बल से युक्त वृषभ क्षत्रिय प्रजाति वाले होते हैं। वे श्वेत-रक्ताङ्कन या धब्बों से युक्त होते हैं और मण्डल से विभूषित दिखाई होते हैं।

नातितुङ्गा नातिनीचाः ते वृषाः वैश्यजातिजाः।
कृषाङ्गा नातितुङ्गाश्च कोपवेगेन ताडिताः॥ २९१॥
सु(?) वन्तश्च ते वृषा शूद्र जातिजाः।
एते सर्वे प्रशस्ताश्च कृषिकर्मणि योग्यकाः॥ २९२॥

न तो अति ऊँचाई वाले और न ही नीचे दिखने वाले वृषभ वैश्य प्रजाति वाले होते हैं। जो न तो कृशकाय दिखाई देते हैं, अधिक ऊँचे नहीं होते और जिनको क्रोधातुर देखा जाता है, ऐसे बैल शूद्र जात्युत्पन्न कहे जाते हैं। बैलों की ये सभी जातियाँ कृषि कार्य के लिए प्रशस्त कही जाती हैं।

तथान्य शुभलक्षणमाह —

नातिदीर्घं न च कृशं वृषशृङ्गद्वयं शुभम्।
मिथौ वैषम्यहीनं च वृषशृङ्गं प्रशस्यते॥ २९३॥

यह भी ज्ञातव्य है कि वह बैल शुभ होता है जिसके दोनों ही सींग न तो अधिक लम्बे हों न पतले हों। सींगों की जोड़ी में असमानता से रहित बैल ही प्रशस्त कहा जाता है।

खुराश्च वृषभाणां तु न कृशा नातिदीर्घका:।
वैषम्यहीनाश्च तथा दृढा: श्लाघ्याविनिश्चिता:॥ २९४॥
शुभा गतिर्दिर्घवाल: वृषभाणां प्रशस्यते।

जिन बैलों के खुर सुदृढ़ हों, न तो कमजोर हों और न अधिक लम्बे हों। खुर विषमता से रहित और सुदृढ़ हों, उनमें दरारें या खुरदरापन भी नहीं होना चाहिए। आकर्षण और लम्बी पूँछ हों—बैलों के ये लक्षण अच्छे बताए गए हैं।

नातिस्थूला न च कृशा: भारवाहित्वमेव च॥ २९५॥
प्रसन्नत्वं कार्यकाले वृषाणामुत्तमा गुणा:।

बहुत अधिक थुलथुल या बिल्कुल दुबला-पतला बैल भी नहीं होना चाहिए। भार को ग्रहण करने में समर्थ और कार्य के दौरान प्रसन्न रहने वाला हो। ये विशेषताएँ और गुण उत्तम बैल के बताए गए हैं।

खुरे विषाणे श्वेतश्च ललाटे पुच्छकेऽपि च॥ २९६॥
वर्णान्तरविभूतिश्च वृष: शुभविवृद्धिद:।

जिस बैल के खुर सफेद हों, सींग और ललाट भी सफेदी लिए हों और जिस पर नाना रंगों की प्रतिच्छाया हों, वह शुभकारी और वृद्धिकारक होता है।

रम्यात्मानश्च हृष्टाश्च शुभवर्ण समुज्ज्वला:॥ २९७॥
शुभावर्तादिसहिता: धन-धान्यविवृद्धिदा:।
सूक्ष्मरोमावलीव्याप्ता: गम्भीरनिनदाश्च ये॥ २९८॥
मनोज्ञनयनोपेता: वृषभा: शुभदा मता:।

जो बैल रम्य भावपूरित हों, हृष्ट-पुष्ट हों, शुभ वर्ण वाले और उज्ज्वल दिखाई देते हों, जिनकी पीठ पर सुन्दर भँवरियां पड़ती हों, वे धन-धान्य की वृद्धि करने वाले होते हैं। इसी प्रकार बारीक-बारीक रोमावली सारे बदन में व्याप्ति लिए हों, जो गम्भीर रूप से रम्भाने वाले हों, सुन्दर काया के धारक और सुन्दर आँखों वाले हों, वे शुभ बताए गए हैं।

वर्जित वृषभ लक्षणमाह —

रक्तवर्णा महाशृङ्गा: तेजबलविवर्जिता:॥ २९९॥
स्खलद्गतियुताश्चापि क्रोधनिद्रावशंगता:।
कृशाङ्गा धूम्रवर्णाश्च तथा बह्वाशिनश्च ये॥ ३००॥

ये विवर्णाश्च वृषभाः नितरां नीचकाश्च ये।
कर्कशाङ्गाः क्रूरखाः वर्ज्यास्ते वृषभाधमाः॥ ३०१॥

वे बैल जिनका वर्ण रक्तिम हो, सिर पर बड़े-बड़े सींग हों, तेज और बल से रहित हों, बराबर कार्य नहीं करने वाले हों, पांव में खोट वाले, क्रोध करने और नींद लेने के आदी हों, कृशकाय वाले हों, धुएँ जैसे वर्ण वाले हों और जिनका शरीर झुका हुआ हो, जो विवर्ण और नाटे कद वाले हों, जिनकी आवाज कर्कश हों— ऐसे लक्षणों वाले बैलों को अधम कोटि का समझना चाहिए और उन्हें कृषि कार्य में वर्जित जानना चाहिए।

शुभलक्षणानि —

सम्पूर्णश्वेतकायाश्च रक्तकायास्तु वा वृषाः।
शुभदा धनधान्यादिवृद्धिदाः परिकीर्तिताः॥ ३०२॥

वे सभी बैल जो सम्पूर्णतः शुद्ध सफेद काया वाले हों अथवा लाल वर्ण वाले हों, वे शुभ माने गए हैं। वे धन-धान्यादि की अभिवृद्धि में सहायक कहे गए हैं।

दोषहीना गुणोपेता वृषभाः शुद्धजातिजाः।
सङ्ग्राह्याः क्षेमसिद्ध्यर्थं कृषिकारैर्विशेषतः॥ ३०३॥

जो बैल दोष रहित हों, गुणों से युक्त हों और शुद्ध जाति वाले हों (संकर वर्ण के नहीं), उनको किसानों को कल्याण की सिद्धि के उद्देश्य से विशेष रूप से अपने घर में जुटाना चाहिए।

सुलक्षणा धेनवश्च महिषाश्च तथा मताः।
महिष्यश्च बहुक्षीराः रक्षणीयाः कृषीवलैः॥ ३०४॥
मेषाश्छागाश्च बहुधा कृषिकार्यफलप्रदाः।

किसानों को कृषि कार्य में सहयोग के लिए अच्छे लक्षणों वाली गायों, भैंसों को पालना चाहिए। भैंसे अधिक दूध देने वाली हों तो किसानों के लिए रक्षणीय होती हैं। भेड़ और बकरियां भी अच्छी नस्ल की होने पर बहुधा कृषि कार्य के लिए सुफल दायक होती हैं।

परम्परोपदेशेन परीक्षास्वपि पण्डितैः॥ ३०५॥
निश्चितान् दोषहीनांश्च वृषभादीन् शुभार्थिनः।
रक्षेयुश्च प्रयत्नेन कृषिसाफल्य हेतवे॥ ३०६॥

कृषि कार्य के प्रयोजन से उन बैलों और अन्य मवेशियों का परिपालन सुनिश्चित करना चाहिए जिनके बारे में पण्डितों का निर्देश है। परम्परानुसार उनकी परीक्षा भी की जानी चाहिए। कृषि की सफलता के लिए उनकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए।

कालेषु पोषणीयाश्च हिताहार प्रदानतः।
रोगेभ्यो रक्षणीयाश्च लालनादिभिरन्वहम्॥ ३०७॥

ऐसे पाले गए कृषि सहायक पशुओं को सही समय पर पोषण के लिए पौष्टिक आहार देना चाहिए। बीमारियां होने पर सुरक्षा के उपाय करने चाहिए और बराबर वात्सल्य लुटाना चाहिए।

गोष्ठस्थलं निर्दिशेच्च तेषां पुष्टिप्रदं बुधः।
कृषिकर्मणि चाद्यं तु सहाया वृषभोत्तमाः॥ ३०८॥

उचित संरक्षण के लिए बुद्धिमान ऐसे पशुओं को गोठां (बाड़े) में रखते हैं। सर्वश्रेष्ठ प्रजाति के बैलों का खेती के प्रारम्भिक कार्यों में सहयोग लेना चाहिए।

इत्यमनन्तर गोपरीक्षामाह —

अतः सत्कुलसञ्जाता धेनवश्च विशेषतः।
कृषीवलैस्तत्रतत्र ग्रामेषु नगरेष्वपि॥ ३०९॥
शुभलक्षणसम्पन्नाः धेनवस्तु परः शतम्।
पालनीयाः कृषिकैः ग्रामेषु नगरेष्वपि॥ ३१०॥

किसान को अपने ग्राम और नगर में अच्छी प्रजाति में उत्पन्न होने वाली गायें पालनी चाहिए। गाँवों और नगरों में शुभ लक्षणों से सम्पन्न सैकड़ों गायों को भी रखना और उनका विधिपूर्वक पालन करना चाहिए।[१]

पलालतृणनीराद्यैः लालनैर्बहुरक्षणैः।
धर्मकामार्थसिद्धिस्तु धेनूनां पालनात् भवेत्॥ ३११॥
रोगप्रशान्तिश्च तथा बालवृद्धादि रक्षणम्।

---

१. आठ मंगल माने गए हैं— विप्र, गौ, अग्नि, स्वर्ण, घृत, सूर्य, जल और राजा। इनका नित्यदर्शन, नमस्कार और पूजन करना चाहिए, इनको अपने दाहिने करके गमन करना चाहिए— लोकेऽस्मिन् मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशनः। हिरण्यं सर्पिरादित्य आपो राजा तथाष्टमः॥ एतानि सततं पश्येन्नमस्येदर्चयेच्च तान्। प्रदक्षिणं च कुर्वीत तथाह्यायुर्न हीयते॥ (नारदीयमनुस्मृति १८, ५१-५२) गायों का सदैव ही दान, पालन-पोषण, संरक्षण करना चाहिए— गावो देयाः सदा रक्ष्याः पाल्याः पोष्याश्च सर्वदा। (बृहत्पराशरसंहिता ५, २३)

ऐसी गायों को पौष्टिक हरी घास खिलाना, पानी पिलाना और बहुविध प्रकार से लालन-पालन करना चाहिए। इससे किसानों की इच्छाओं की सिद्धि होगी। गायों के पालन से धर्म, काम और अर्थ जैसे पुरुषार्थ साधे जा सकते हैं। उनमें रोग होने पर उसके शान्ति और शमन का उपाय करना चाहिए। नन्हें चौपाये हों या वृद्ध, उनका रक्षण करना चाहिए।

गोपालन लाभादीनां —

गोसहस्रं यत्र देशे पाल्यते प्रीतिपूर्वकम्॥ ३१२॥
तत्र देशेषु पर्जन्यो वर्षत्येव न संशयः।

जिस देश में हजारों गायें प्रीतिपूर्वक पाली जाती हों, उस देश में यथासमय वर्षा होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।[१]

गवां रक्षणतो दानात् देवानां प्रीतिरुत्तमा॥ ३१३॥
अतः प्रजानां क्षेमादिरित्येवं भार्गवोऽब्रवीत्।
अतः सर्वप्रयत्नेन गोगणं तु कृषीवलाः॥ ३१४॥

भार्गव (शुक्राचार्य) का मत है कि गायों की सुरक्षा करने और दान करने से देवताओं की उत्तम प्रीति प्राप्त होती है। अतएव प्रजाजनों को अपने कल्याण-क्षेम के लिए गायों का पालन करना चाहिए। किसानों को हरसम्भव प्रयास करके गायगणों की सुरक्षा करनी चाहिए।

रक्षेयुश्च वनान्तेषु ग्राममध्ये च सर्वतः।
स्वयं भृत्यगणैश्चापि गोपालैश्च विशेषतः॥ ३१५॥

किसानों को गाँव हो अथवा वनखण्ड गायों के समूह की सर्वतः सुरक्षा करनी चाहिए। इसके लिए स्वयं भी पहल कर सकते हैं और सेवकगणों तथा विशेषकर गोपालकों को भी प्रयास करना चाहिए।[२]

---

१. महाभारत के प्रसंग में यह माना जाता है कि पाण्डव जहाँ रहते थे, वहाँ गोधन स्वस्थ होता था। यह उनके निवास का लक्षण भी माना जाता था। विराट की पहचान इस आधार पर की गई थी।

२. बौधायनस्मृति में कहा गया है कि अपनी तथा गाय और विप्रों की रक्षा सहित अन्य वर्णों में आने वाली बुराइयों और वर्णसंकरता पर रोकथाम के लिए, दुर्दान्त दुष्टों का दमन करने के लिए यदि शस्त्र भी उठाना पड़े तो उसे दोष नहीं लगता है— गवार्थे ब्राह्मणार्थे वा वर्णानां वाऽपि संकरे। गृह्णीयातां विप्रविशौ शस्त्रं धर्मव्यपेक्षया॥ (बौधायन. २, २, ८०)

यही मत महाभारत में आया है— गोब्राह्मणहितार्थं च वर्णानां संकरेषु च। वैश्यो गृहीत शस्त्राणि परित्राणार्थमात्मनः॥ (महा. शान्तिपर्व १६५, ३३)

प्रत्यब्दं तु शुभे काले गोपूजा च विशिष्यते।
दिनान्ते प्रत्यहं तासां गन्ध-पुष्पादिपूजनम्॥ ३१६॥
यशस्यं शुभदं प्रोक्तं सर्वशास्त्रेषु कीर्तितम्।
सत् सन्तानप्रदं पुंसां त्रिवर्गफलदं तथा॥ ३१७॥

यह विशेष रूप से ज्ञातव्य है कि प्रत्येक वर्ष शुभ काल देखकर गायों की पूजा करनी चाहिए। उस दिन सायंकाल उनकी गन्ध, पुष्पादि से अर्चना करनी चाहिए। सभी शास्त्रों में यह कहा गया है कि ऐसा करना यशकारी और शुभ होता है। ऐसा करने से अच्छी सन्तान मिलती है और पुरुषों को तीनों ही वर्गों (धर्म, अर्थ और काम) का फल मिलता है।

कालानुसारेण पशुसुरक्षा निर्देशमाह —

छायासु ताश्च ते छागवृषभाद्याः क्रि याकराः।
मध्याह्नकाले ग्रीष्मे तु स्थाप्या रक्ष्याश्च धीमता॥ ३१८॥

किसानों को चाहिए कि वे खेती के कार्य में सहायक बकरियों, बैलों-गायों को सदैव छाया में रखें। बुद्धिमान किसान ग्रीष्म ऋतु की दोपहरी में इसी प्रकार मवेशियों की सुरक्षा निश्चित करते हैं।

शीतकालेषु गोष्ठे तु हिताहारार्पणादिभिः।
संरक्ष्याः क्षेमसिद्ध्यर्थं कुटुम्बस्यापि भूपतेः॥ ३१९॥

सर्दी होने पर पशुओं को गोठा (बाड़ों) में रखकर अच्छा भोजन निवेदित करना चाहिए। राजा भी क्यों न हो, इस विधि से परिपालन करने पर परिजनों के कल्याण की सिद्धि होती है।

इस सम्बन्ध में अन्य उक्तियां हैं— जो मनुष्य गौओं की सेवा करता है, उसे गौएँ अति दुर्लभ वर प्रदान करती हैं। वह गौभक्त मनुष्य पुत्र, धन, विद्या, सुख आदि जिस किसी वस्तु की अपेक्षा करता है, वह सब उसे प्राप्त हो जाती हैं। उसके लिए कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं होती है। गायों का समूह जहाँ बैठकर निर्भयतापूर्वक साँस लेता है, उस स्थान के सारे पापों को खींच लेता है, जिसके घर में बछड़े सहित एक भी गाय नहीं है, उसका मंगल कैसे हो सकता है, उसके पापों का निवारण कैसे हो सकता है–– गाश्च शुश्रूषते यश्च समन्वेति च सर्वशः। तस्मै तुष्टाः प्रयच्छन्ति वरानपि सुदुर्लभान्॥ (महाभारत अनुशासनपर्व ८१, ३३) गोषु भक्तश्च लभते यद् यदिच्छति मानवः। स्त्रियोऽपि भक्ता या गोषु ताश्च काममवाप्नुयुः॥ पुत्रार्थी लभते पुत्रं कन्यार्थी तामवाप्नुयात्। धनार्थी लभते वित्तं धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात्॥ विद्यार्थी चाप्नुयाद् विद्यां सुखार्थी प्राप्नुयात् सुखम्। न किञ्चिद् दुर्लभं चैव गवां भक्तस्य भारत॥ (उपर्युक्त ८३, ५०-५२) निविष्टं गोकुलं यत्र श्वांस मुञ्चति निर्भयम्। विराजयति तं देशं पापं चास्यापकर्षति॥ (उपर्युक्त ५१, ३२) यस्यैकापि गृहे नास्ति धेनुर्वत्सानुचारिणी। मङ्गलानि कुतस्तस्य कुतस्तस्य तमः क्षयः॥ (अत्रिस्मृति २१८-२१९)

गोरक्षणं तु भूपालैः कर्तव्यं धर्ममीरितम्।
चोराच्च दुष्टसत्वाच्च तद्रक्षणमथार्पणम्॥ ३२०॥
महाफलं समुद्दिष्टं कृषिकार्ये विशेषतः।

राजाओं का यह धार्मिक कर्तव्य है कि वे यथाविधि गायों की सुरक्षा करें। चोरों-तस्करों और दुष्टजनों से बचाव का उपाय करें। उन्हें यथेष्ट दान करें। इससे कृषि कार्यों में विशेष सफलता मिलती है, ऐसा देखा गया है।[१]

॥ इति (काश्यपकृषिसूक्तौ प्रथमभागे) शास्त्रोपदेशक्रमः (कथनम्) ॥ ९ ॥

इस प्रकार काश्यपीय कृषि सूक्ति ग्रन्थ के अन्तर्गत शास्त्रोपदेश क्रम कथन पूर्ण हुआ ॥ ९ ॥

*****

अथ दशम कथनम्

॥ धान्यादिकृषिक्रमसस्यार्हकाल-परिक्षाक्रमक्षेत्रविभागश्च ॥

काश्यप उपदिशति —

कृषिकार्यक्रमविदो लोके सर्वत्र धीजुषः।
वृषभान् महिषान् धेनूः भृत्यानपि च सेवकान्॥ ३२१॥
(सर्वकाले सर्वदेशे सर्ववर्णे हितार्थाय च।)

---

१. तथा च पराशरोक्ति—

मृदुसंहतताम्राष्ठास्तनु जिह्वास्तनुस्फिजः। वैदूर्यमधुवर्णैश्च जलबुद्बुद सन्निभैः॥ रक्तस्निग्धैश्च नयनैस्तथा रक्तकनीनिकैः।

सिंहस्कन्धा महोरस्का दृढपुष्टाः ककुद्मिनः॥ भूमौ कर्षति लाङ्गलं प्रलम्बस्थूलवालधिः। पुरस्तादुन्नता नीचाः पृष्ठतः सुसमाहिताः॥ वृताङ्गाः स्थूलगात्राश्च विस्तीर्णजघनाश्चये। स्पष्टताम्रतनुश्लक्ष्णैः शफैरविरलैर्दृढैः॥ समुद्गवरसंस्थानैः समास्फुटितपार्ष्णिभिः। वृत्तस्थूलोद्धतग्रीवाः ककुदैश्च समुच्छ्रितैः॥ एते भारसहा ज्ञेया धुरि याने च पूजिताः। आवर्तैर्दक्षिणावर्तैर्युक्ता दक्षिणतश्च ये॥ वामावर्तैर्वामतश्च संयुक्तास्तेऽपि पूजिताः। प्रलम्बवृषणोऽत्यर्थं संक्षिप्तोदर वंक्षणः॥ विस्तीर्णवक्षोजघनो भारे याने च पूजितः। स्निग्धपिङ्गेक्षणः श्वेतस्ताम्रशृङ्गो महानसः॥ स तु गौः पद्मको नाम गोसहस्रप्रवर्धनः। (सविवृत्तिबृहत्संहितायाम् ६१, १९)

पोषयित्वा नियोगज्ञान् कृषिं क्षेत्रेषु कल्पिताम्॥ ३२२॥

धान्यादि कृषिकर्म, फसल काल की परीक्षा और क्षेत्र विभाग पर प्रकाश डालते हुए काश्यप मुनि कहते हैं कि लोक के उन सभी प्रबुद्ध कृषि कार्यक्रम में दक्ष लोगों को यह जान लेना चाहिए कि बैल, गाय, भैंस और उनकी देखभाल करने वाले नौकरों, सेवकों की उचित देखभाल करनी चाहिए। यह सभी कालों में समस्त देशों और सभी वर्ण वालों के लिए हितावह है। इस नित्य कार्य के उपरान्त उन्हें अपनी योजना के अनुसार कृषि कार्य आरम्भ करना चाहिए।

वर्द्धयेयुः क्र ममुखं विविधं क्षेत्रयोग्यताः।
आदौ कालपरीक्षात्र मुख्यकल्पा विधीयते॥ ३२३॥

समयान्तराल में उन्हें अपनी उपजाऊ भूमि की उर्वरा क्षमता को बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए। इसी सन्दर्भ में उन्हें किसी फसल के लिए सर्वप्रथम उचित काल (ऋतु, मौसम) की परीक्षा करनी चाहिए।

नाना देशस्य कृषिकर्मवर्णनम् —

काश्मीरदेश्यके वङ्गदेश्ये नेपालदेश्यके।
पाञ्चालकोसलकुरुविराटान्वत्य भूमिके॥ ३२४॥
मालवे शकदेश्ये वा सिन्धुसौवीरभूमिषु।
शूरसेनावन्तिचेदिकोङ्कणान्ध्रादि भूमिषु॥ ३२५॥
यदा-यदा वृष्टिपातस्तदा शस्ता कृषिक्रि या।

कश्मीर, बंगाल, नेपाल, पांचाल, कोसल, कुरु, विराट अवन्ति, मालवा, शक, सिन्धु, सौवीर, शूरसेन, अवन्ति, चेदि, कोंकण, आन्ध्रादि प्रदेशों की भूमि होने पर कृषिकार्य वर्षा ऋतु के दौरान ही करना चाहिए। जब-जब वृष्टिपात हो, तब-तब कृषि कार्य करना प्रशस्त होता है।

यत्र ग्रीष्मादिकालेषु नदीकुल्यादि मार्गतः॥ ३२६॥
क्षेत्रेषु सलिलोत्क्षेपः तदा शस्ता कृषिक्रि या।
यत्रागाधजलाधारप्रणालीकुल्यकामुखात्॥ ३२७॥
यत्र-यत्र जलोत्क्षेप तदा तत्र कृषिः शुभा।

ग्रीष्म ऋतु में यदि नदियों, नहरों का बहाव मार्ग हो और खेतों में जल से सिंचाई सम्भव हो तो वहाँ कृषि कर्म प्रशस्त होता है। जहाँ अगाध जलाधार प्रणालियाँ,

वितरिकाएँ नहरों के मुख से जुड़ी हुई हों और जल भली-भाँति पहुँचता हो, वहाँ खेती अच्छी होती है।

कृषिकार्यार्थ मेघजलस्रोतभूम्यादि परीक्षणं निर्देशमाह —

मेघोदयजलस्रावमगाध सलिलाश्रयम्॥ ३२८॥
कुल्याजलसमृद्धिं च वीक्ष्य धीमान् कृषीवलः।
कृषिं प्रकल्पयेत् युक्त्या स्थल सम्पत्क्रमात् भुवि॥ ३२९॥

बुद्धिमान किसान को अपनी खेती की गतिविधियों की पूरी तरह चतुराई से योजना बनानी चाहिए। उसे बादलों के आगमन, जलवर्षण, अगाध जलस्रोतों-जलाशयों और नहरों से पर्याप्त सिंचाई और भूमि के प्रकार (उपजाऊ, अनुपजाऊ, ऊसर, बंजर आदि) को ध्यान में रखकर कार्य करना चाहिए।

क्षेत्ररूपमाह —

द्विधा विभक्तानि लोके क्षेत्राणि स्वीयरूपतः।
तत्र-तत्र नदीतीरे ग्रामेष्वपि वनान्तरे॥ ३३०॥
पर्वतस्य तटे चैवं निम्नोन्नत तलेऽपि च।
शालिभूमिस्तु तत्राद्या मुनिभिः कथितोत्तमा॥ ३३१॥

प्राकृतिक रूप से खेतों के दो प्रकार बांटे जा सकते हैं। इनमें से प्रथम प्रकार के नदी तीर वाले, ग्राम, वनों के अन्तराल वाले खेत, पर्वत-पहाड़ों की तलहटी वाले खेत और ऊँचे-नीचे तल वाले खेत— इनको मुनियों ने शालिभूमि (चावल के खेत) की दृष्टि से उपयुक्त बताया है।

द्वितीयाढकभूमिस्तु मध्यमापि फलप्रदा।
शालिभूमिस्तु सलिलप्रचुरा तु स्वभावतः॥ ३३२॥

दूसरी प्रकार की आढ़क संज्ञक मध्यमा भूमि भी उचित फल देने वाली हो सकती है। चावल के खेत स्वाभाविक रूप से जल से परिपूर्ण होते हैं।

सम्पूर्णकर्दमाख्याता नितरां मृदुमृत्तिका।
कुल्योपकुल्या शाखालिङ्गुभिता तज्जलं स्त्रवा॥ ३३३॥

जो भूमि सम्पूर्ण कर्दम कही जाती है उस भूमि में मिट्टी अत्यधिक नरम होती है। इसे भूमि को नहरों, वितरिकाओं द्वारा निरन्तर सिंचित-पोषित किया जाता है।

समन्ततः क्षुद्ररूपरक्षामृत्तिकभित्तिकाः।

खलस्वरूपतो वापि ग्रामवास्तुस्वरूपतः॥ ३३४॥
क्षेत्रपङ्क्ति(ङ्गि?) स्वरूपाद्वा शालिभूमिस्थितिर्मता।

कृषि भूमि पर चारों ही ओर सुरक्षा के लिए लघु रूप में मिट्टी का घेरा बनाया जाता है। अन्न को निकालने के लिए खला लगाने या फसल के ढेर के लिए ग्राम के वास्तु विन्यास के अनुसार व्यवस्था की जाती है। इस कार्य के लिए चावल के खेतों की पंक्तियों के पास किसी अन्य मैदान का होना भी आवश्यक माना गया है।

जलनिर्गममार्गप्रबन्धमाह —

प्राच्यां क्वचिन्निम्नभागा प्रचीच्यामथ च क्वचित्॥ ३३५॥
याम्ये क्वचिन्निम्नतला कौबेर्यां निम्नभूमिका।
क्वचित्प्रायः समतला कुल्या नीरग्रहोन्मुखी॥ ३३६॥

पानी को लाने वाली नहरों की तलछट (अन्दर का पैंदा) कैसा हो, वह ढालू होना चाहिए। यह ढलाव कदाचित पूर्व की ओर होना चाहिए। कभी-कभी पश्चिम की ओर भी हो सकता है। कदाचित दक्षिण की ओर भी निम्न तल हो सकता है और उत्तर दिशा की ओर भी कल्पित किया जा सकता है। इसी प्रकार कभी-कभी कुल्या या नहर समतल भी बनाई जा सकती है किन्तु वह पानी बहाने वाली होनी चाहिए।

क्षेत्रात् क्वचित् क्षेत्रतलप्रवेशार्ह जलस्त्रवा।
एवं स्वरूपं विविधं शालिभूम्यास्तु निश्चितम्॥ ३३७॥

कुछ खेतों के प्रसंग में इनका जल एक खेत से दूसरे खेत में भी बहता है। चावल के खेतों की स्थिति इस प्रकार अलग-अलग कारणों, प्रभावों, कारकों पर निर्भर करती है।

प्रथमाकर्षणादिह व्रीह्युत्पत्त्यवधि क्षितौ।
शालीभूः पूर्णसलिला ख्याता पूर्णफलप्रदा॥ ३३८॥

वे सभी खेत जो अच्छी उपज देने वाले होते हैं, प्रथमतया हंकाई के साथ चावल की बुवाई से लेकर उत्पादन होने तक जल से भरे रखे जाते हैं। ऐसे जल से भरे हुए खेत ही पूर्ण रूप से फलोत्पादक कहे जाते हैं।

ग्रामादिवास्तुभूम्यां च वनान्ते च तटे क्वचित्।
उन्नता भूर्द्वितीया सा कथिताढकभूमिका॥ ३३९॥

कदाचित ग्रामादि की आवासीय भूमि, वनान्तराल वाले और तटवर्ती क्षेत्रों की ऊंची भूमि आढ़क कही जाती है। यह द्वितीय प्रकार की भूमि है।

अन्यदप्याह —

स्वल्पोदबिन्दुसंसेव्या चणकाढकवर्द्धिनी।
नैतस्या जलकुल्यादि प्रकल्पनमुदीरितम्॥ ३४०॥

चना और अरहर जैसी फसलें पानी के न्यून मात्रा में उपलब्ध होने पर भी तैयार हो सकती हैं। इन फसलों के लिए कम पानी से सिंचित भूमि भी अभिवृद्धिकारक होती है। ऐसी भूमि के लिए नहर आदि से सिंचाई के प्रबन्धन की आवश्यकता नहीं होती है।

प्रायेण स्वल्पसलिल सेकात् कर्षणयोग्यका।
ततो बीजावापकाले किञ्चित् सलिलपानता॥ ३४१॥

इनके बीजों की बुवाई करते समय खेत में थोड़ी-सी सिंचाई करना या नम भूमि का होना उचित माना गया है क्योंकि इनके खेतों को नम रखने से (अंकुरण) अच्छा होता है।

एवं समुचिते काले जीवनं बीजजीवदम्।
एतादृशगुणोपेता कथिता चाढकस्थली॥ ३४२॥

यह ज्ञातव्य है कि सही मौसम में बीज के लिए दिया गया पानी उसके लिए जीवनदायी हो जाता है। आढ़क (दलहन) के खेतों के लिए यही युक्ति उचित है और इस कार्य को गुणयुक्त बताया गया है।

शालिभूम्याश्चाढकादि भूम्याश्चार्हं कृषीवलैः।
बीजसङ्ग्रहणं नानारूपमत्र मुनीरितम्॥ ३४३॥

इस प्रकार शाली (चावल) और आढ़क (अरहर) आदि की भूमि के भेद किसानों को बताए गए हैं। भूमि के अनुसार ही उपज योग्य नाना बीजों के संग्रह के विषय में मुनियों ने कहा है।

॥ इति काश्यपकृषिसूक्तौ प्रथमभागे धान्यादिकृषिक्रमकथनम्
सस्यार्हकालपरिक्रमः क्षेत्रविभागक्रमश्च दशम कथनम्॥ १०॥

इस प्रकार काश्यपीय कृषि सूक्ति ग्रन्थ के अन्तर्गत प्रथम भाग में धान्यादि कृषि क्रम कथन, फसल के लिए काल परिक्रम और क्षेत्र विभाग क्रम नामक दसवां कथन पूर्ण हुआ॥ १०॥

*****

अथैकादश कथनम्

॥ नानाविधबीजसङ्ग्रहणक्रमकथनमाह ॥

काश्यप उपदिशति —

पूर्वं सम्प्रार्थितो धात्र्या धाता लोकपितामहः।
बीजानि विविधानीहासृजत्पुनरचिन्तयत्॥ ३४४॥

किसानों के लिए विभिन्न प्रकार के बीजों की प्राप्ति के संदर्भ में काश्यप एक कहानी कहते हैं— प्राचीन काल में भूमिदेवी के आग्रह पर लोकपितामह ब्रह्माजी ने अनेक प्रकार के अन्न के बीजों की सृष्टि की और फिर स्वयं उन बीजों को देखकर सोच में पड़ गए।

तदाशयं विदित्वा तु भूमिदेवी महोदया।
उवाच हर्षेण विधिं प्राणिनां सुखसिद्धये॥ ३४५॥

उनके मन में इस उहापोह को भूमिदेवी ने जान लिया और उनसे प्रसन्नतापूर्वक संसार के प्राणियों के सुखद जीवन-यापन की विधि पूछी।

पितामहप्रति देवीपृथ्व्यानिवेदनम् —

विधे ननु त्वया सृष्टानीमानि विविधानि तु।
बीजानि मयि निक्षिप्तान्यादरादचिरेण हि॥ ३४६॥
प्राप्ताङ्कुर नियतं भविष्यन्ति न संशयः।
तवानुग्रहभूम्या च वासवस्य विशेषतः॥ ३४७॥

पृथ्वीदेवी कहने लगी— ''हे विधाता! आपने इन नाना प्रकार के बीजों की रचना की है और उनको आपने अतिशय अनुग्रह के साथ मेरी कोख में समाहित भी कर दिया है। निःसन्देह इन सब बीजों का यथावसर अंकुरण होगा क्योंकि इनको आप सबका और विशेष रूप से भगवान् इन्द्रदेव का आशीर्वाद प्राप्त है।

प्रत्यब्दं मेघवृष्टिश्च नियतेन भविष्यति।
यथाकालं प्राप्तवर्षाः प्रजा सर्वत्र-सर्वतः॥ ३४८॥

''निश्चित ही प्रत्येक वर्ष मेघ पानी बरसाएँगे। यथा काल प्रजा को सभी क्षेत्रों में वर्षा का लाभ मिलेगा।

कृत्वा बीजवापनं तु सुक्षेत्रेषु विशेषतः।
सम्पूर्णफलभाजश्च पुष्टा हृष्टाश्च नित्यतः॥ ३४९॥

"प्रजाजन वृष्टि का यह लाभ जानकर विशेष रूप से उपजाऊ खेतों में बीजों की बुवाई करेंगे। बदले में वे इसका पारितोषिक भी प्राप्त करेंगे। वे उत्पादित अन्न स्वरूप फल से नित्य पोषित और प्रसन्न भी होंगे।

भविष्यन्ति कृषिज्ञाश्च नाना देशेषु भूतले।
देवानां प्रीतिरतुला यज्ञादीनां विवर्द्धनम्॥ ३५०॥
प्रजानामतिथीनां च प्रीणनं भोजनादिभिः।
धेन्वादिप्रीणनं काल्यं सफलं भूतयज्ञकम्॥ ३५१॥
इति विज्ञापितो देव्या मेदिन्या कमलासनः।

पृथ्वी ने यह भी कहा— "कृषिज्ञान के जानकार भी नाना देशों की भूमि पर इससे नित्य प्रसन्न रहेंगे। देवतागण भी अति प्रसन्न होंगे और यज्ञ-दानादि सत्कर्मों की वृद्धि होगी। प्रजाजन अतिथियों को भोजनादि सुगमतापूर्वक करवाकर तुष्ट करेंगे। मौसम के अनुसार गाय आदि पशुधन को सन्तुष्टि मिलेगी। इस प्रकार भूतल पर भूतयज्ञ सम्पादित होंगे।" पृथ्वीदेवी ने इस प्रकार कमलासनस्थ पितामह के प्रति आभार ज्ञापित किया।

पितामहस्य प्रत्युत्तरम् —

तथास्त्वित्यब्रवीद्वाक्यं सर्वप्राणिहितप्रदम्॥ ३५२॥

पृथ्वी की बातों को सुनकर सभी सांसारिक प्राणियों के हित की बात कहते हुए विधाता ब्रह्मा बोले—"तथास्तु (ऐसा ही होगा)।"

तदादिलोके सर्वत्र बीजानि विविधानि तु।
रक्ष्यन्ते कृषिकर्मज्ञैः मानवैः सूक्ष्मबुद्धिभिः॥ ३५३॥

उस काल से ही संसारभर में सभी बुद्धिजीवी लोग कृषि गतिविधियों में व्यस्त रहने लगे। तभी से वे सूक्ष्मबुद्धिमान् अनेक प्रकार के बीजों की सार-सम्भाल भी कर रहे हैं।

अथ शाल्यादि चतुर्विधकृषिकर्माह —

शाल्यादिकस्तु प्रथमः निर्दिष्टो हि मुनीश्वरैः।
आढकादिद्वितीयश्च तृतीयः शाकसन्ततिः॥ ३५४॥

लताकुसुमवर्गस्तु चतुर्थः किलकीर्तितः।
एतच्चतुर्विधं लोके कृषिकर्म विनिश्चितम्॥ ३५५॥

मुनीश्वरों ने लोकांचल में चार प्रकार का कृषिकर्म निर्धारित किया है। इनमें से अनाज के रूप में 1. शालि और अन्य फसलें प्रथम वरियता में हैं, 2. आढ़कादि दलहन फसलें द्वितीय, 3. शाक-भाजी जैसी फसलों की श्रृंखला तृतीय और 4. लता-कुसुम वर्ग की फसलें चतुर्थ वरियता प्राप्त हैं।

पुष्टिप्रदं च फलदं मानवानां विशेषतः।
सर्वर्तुष्वपि सन्तोषजनकं देवतुष्टिदम्॥ ३५६॥

ये चारों ही फसलें मानवों के लिए फलदायी और पुष्टि प्रदायक हैं। ये ही सभी के लिए सन्तोषकारी और देवताओं को भी तुष्टिजनक मानी गई हैं।

गोवृषोष्ट्राश्वकुम्भ्यादिजीविनां जीवदायकम्।
नारदाद्यैर्योगिवर्यैरुपदिष्टं हि भूतले॥ ३५७॥

ये फसलें गाय-बैल, ऊंट, घोड़े, हाथी और अन्य जीवधारी पशुओं के लिए जीवनदायी हैं। नारद जैसे कई योगियों ने भी भूतल की इन तुष्टिकारक फसलों के विषय में बतलाया है।

महीपालैरुत्तमैश्च स्वस्वदेशेस्थलीष्वपि।
कृषिकर्म कृतं भक्त्या भृत्यवर्गैश्च रक्षितम्॥ ३५८॥

इनका अनुसरण करते हुए पृथ्वीपति राजाओं और सामन्तगणों ने अपने-अपने देशों की भूमि पर बहुत निष्ठा के साथ कृषिकर्म और उसके सहयोगी सेवकों की सुरक्षा के उपाय किए हैं।

तदादि ब्राह्मणवरैः क्षत्रियैर्वैश्य जातिजैः।
शूद्रैरन्यैश्च बहुधा सुक्षेत्रे कालयोग्यकम्॥ ३५९॥
आरब्धं कृषिकार्यं तु बीजमुख्यं प्रकीर्तितम्।

इस कर्म को किसने नहीं अपनाया? श्रेष्ठ ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्य कुलों में उत्पन्न होने वालों सहित शूद्रों और अन्य जनों ने भी अच्छे खेतों का नियोजन किया और कालक्रम से उत्पन्न होने वाली फसलों का उत्पादन किया है। इसके लिए समय-साध्य मुख्य बीजों को उत्पादित करने के लिए कई तरीकों का प्रयोग किया है।

अतः सुधीभिर्भूलोके कृषिकर्मविदां वरैः॥ ३६०॥
बीजानां सङ्ग्रहो युक्त्या कल्पनीयो विनिश्चितः।

अतएवं बुद्धिमान् लोग जो खेती के कार्यों में विशेष रूप से दक्ष होते हैं, उन्हें चतुराईपूर्वक और योजनाबद्ध रूप से अच्छे बीजों का चयन करना चाहिए और कृषिकर्म को सम्पादित करना चाहिए।

इत्यमन्तर नाना बीज नामानि —

नामानि क्रमशो वक्ष्ये बीजानामिह सिद्धये॥ ३६१॥

मुनि काश्यप कहते हैं कि अब मैं क्रमशः उन बीजों के नामों को बताता हूं जिनको उगाया जा सकता है।

शाल्यादिः कलमादिश्च षष्टिकादिश्च तत्त्रिधा।
रसवर्णक जात्याद्यैः विभक्तं कृषिकोविदैः॥ ३६२॥

शालि या चावल को कृषिकोविदों ने मुख्य रूप से तीन प्रकार का बताया है— 1. शालि धान्यादि, 2. कलम धान्यादि और 3. षष्टिकादि। यह वर्गीकरण इन धान्यों के रस या स्वाद और रंग पर आधारित है।

किञ्चित् घनास्तुकलमाः रसाधिक्याः समुज्ज्वलाः।
षष्टिका रसहीनाश्च कृताः कमलयोनिना॥ ३६३॥

इन फसलों में से कलमा धान्य किंचित घना, सफेद और अधिक रसभरा होता है। षष्टि धान्य को पितामह ब्रह्मा ने स्वादरस से हीन बनाया है।

शालिव्रीहिस्तु षड्विंशद्भेदकः[२६] परिकीर्तितः।
तत्र-तत्र हि देशेषु भूमिभेदेन कोविदैः॥ ३६४॥

कृषिकोविदों ने भूमि और क्षेत्रीय विविधताओं के आधार पर शालि धान्य को छब्बीस प्रकार का बताया है।

बीजावापः प्रकर्तव्यो यथाकालमतन्द्रितैः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तद्रक्षणमुदीरितम्॥ ३६५॥

जागरुक किसान को यथाकाल इन बीजों की बुवाई करनी चाहिए। साथ ही इन बीजों के संरक्षण और सुरक्षा के लिए हर सम्भव उचित उपाय करने चाहिए (ताकि बीज व्यर्थ न चला जाए)।

श्वेतशालिः रक्तशालिः स्थूलशालिस्तथैव च।
दीर्घशालिः स्वादुरसः कलमः श्वेतवर्णकः॥ ३६६॥

धान्यों के उक्त भेद इस प्रकार हैं— 1. श्वेत शालि (सफेद चावल), 2. रक्त

शालि (लाल चावल), 3. स्थूल शालि (कठोर चावल), 4. दीर्घ शालि (मोटे चावल), ये रसदार और स्वादिष्ट होते हैं। कलम श्वेत वर्ण वाला है।

रक्तवर्णश्चकलमः कलमः स्थूलदेहकः।
दीर्घाकृतिश्च कलमः व्रीहिर्हेमाख्य शम्बकः॥ ३६७॥

लाल रंग की कलम, मोटे चावल की कलम, लंबाकार चावल की कलम और शम्बक प्रकार के चावल हेम नाम से कही जाती है।

कपिशः शम्बकोऽन्यश्च रक्तशम्बश्च वर्णतः।
कृष्णशम्बश्चान्यरूपः नितरां रसवन्मतः॥ ३६८॥

कपिश, शम्बक और अन्य लाल रंग वाले शम्ब चावल होते हैं। इनका अन्य रूप काला शम्ब भी होता है जो अत्यधिक स्वादिष्ट होती है।

शुकव्रीहिः स्थूलकायो व्रीहिश्चान्य प्रकीर्तितः।
घनव्रीहिश्च पलशव्रीहिश्च रसमेदुरः॥ ३६९॥

शुकव्रीहि और स्थूलकाय वाले चावल अन्य जाति के कहे गए हैं। घनव्रीहि और पलशव्रीहि चावल चिकने और रस युक्त होते हैं।

स्वादुव्रीहिश्च नितरां फलव्रीहिस्तथा परः।
द्राक्षाव्रीहिश्चापरस्तु नीवारः श्वेतकृष्णकः॥ ३७०॥

स्वादुव्रीहि या मीठे चावल भी इसी प्रकार के हैं। फलव्रीहि और द्राक्षाव्रीहि या मदिरा जैसे स्वाद वाले चावल तथा नीवार या जंगली उपज वाले, सफेद और काले चावल भी होते हैं।

यवौ च श्वेतकृष्णौ च स्थूलाकारस्तथैव च।
समरव्रीहिरपरः नितरां राशिकारकः॥ ३७१॥

इसी प्रकार यवाकार चावल सफेद और काले रंग वाले और स्थूलाकार (मोटे) होते हैं। दूसरे प्रकार में समरव्रीहि चावल होते हैं जिनकी फसल प्रचुर मात्रा में होती है (ये उबालने पर ज्यादा फूलते हैं)।

कलव्रीहिश्च परमः नितरां पुष्टिदायकः।
सितव्रीहिः पीतवर्णः व्रीहिश्चाजीर्णहारकः॥ ३७२॥
इति षड्विंशतिभेदा२६ कल्पिता धान्यराशयः।

इसी प्रकार कलव्रीहि जो मीठे और पोषक होते हैं। सितव्रीहि या सफेद

चावल और पीतवर्णीय व्रीहि या पीले चावल भोजनकर्ता की अपच-अजीर्ण जैसी व्याधि का हरण करते हैं। इस प्रकार ये सब धान्यराशि की छब्बीस किस्में बताई गई हैं।

बीजानां संरक्षणनिर्देशमाह —

सर्वेषामपि चैतेषां बीजानां रक्षणं क्रमात्॥ ३७३॥
अर्कातपे शोषितानां सुपक्वानां खलस्थले।
स्वगृहे वा रक्षणं तु प्रधानं शुभवर्द्धकम्॥ ३७४॥

सभी किसानों को श्रेष्ठ उत्पादन प्राप्त करने के लिए बीजों का सम्यक् रूप से रक्षण करना चाहिए। यह क्रम विचार योग्य है कि बीजों को भली प्रकार से पक जाने पर खल स्थल पर तेज धूप में सूखाएँ। तदोपरान्त अपने घर में सुरक्षित रखना चाहिए। किसानों के लिए यह प्रधान कार्य है जो शुभवर्धनकर्ता माना गया है।

भूपालैरथवा रक्ष्यं काले देयं प्रकीर्तितम्।
बीजराशिः परश्रेयः कृषेस्तु प्रथमं धनम्॥ ३७५॥

यह ज्ञातव्य है कि किसी भी राज्य के शासक को अपने राज्य में नियत समय के अन्तराल पर बीजों का संरक्षण करना चाहिए और यथा-समय बीज राशि के वितरण का कार्य करना चाहिए। बीजों का संरक्षण ही कृषि का पहला धन है।

नराणामपि देवानां प्रीतिदं दानयोग्यकम्।
तस्मात् कृषिवलैर्युक्त्या बीजसंरक्षणं वरम्॥ ३७६॥

यह लोगों ही नहीं, देवताओं को भी सन्तुष्टि-प्रीति देता है। यह सबसे बड़ा उपहार भी है। इसलिए किसान को युक्तिपूर्वक भली प्रकार से बीजों की सार-सम्भाल करनी चाहिए।

बीजोत्पादनावधिमाह —

एतानि तानि बीजानि सम्पूर्णफलदानि च।
मासेषु त्रिषु[३] वा तानि चतुर्मासे[४]ऽथवा स्थले॥ ३७७॥

कृषिकर्ताओं के लिए यह ज्ञातव्य है कि इन बीजों में से कुछ बीज ऐसे होते हैं जो सम्पूर्णतया फल प्रदान करते हैं। कुछ बीज तीन महीने में पकते हैं तो कुछ बीज खेत में चार मास में फल देते हैं।

कानिचित् पञ्च[५] मासेषु षण्मासे[६]ष्विह कानि च।
सप्त[७] मासेष्वष्ट[८] मासेष्वधिकञ्च मतः क्वचित्॥ ३७८॥

फलदानि सुपक्वानि निर्णीतानि मुनीश्वरैः।

इसी प्रकार कुछ बीज ऐसे हैं जो पाँच महीनों में पकते हैं तो कुछ छह मास में फल देने के योग्य हैं। कुछ ऐसे बीज भी हैं जो सात और कुछ अधिकतम आठ मास में फलवान होते हैं। मुनीश्वरों का निर्णय है कि अच्छी प्रकार से पका हुआ बीज अच्छा फल देता है।

तस्मात् स्वदेशे क्षेत्रेषु जलस्त्रावानुकूलतः॥ ३७९॥
शाल्यादिकृषिकार्येषु चारम्भः सुखसिद्धये।

सुख प्राप्त करने के लिए किसानों को अपने देश और अपने खेत में जल के बहाव (उपलब्धता) को देखते हुए शाल्यादि धान्योत्पादन के लिए कृषि कार्य को आरम्भ करना चाहिए।

पूर्वपुरुषकार्यादिक्र मतस्तु क्वचित्स्थले॥ ३८०॥
मेघोदयजलस्त्रावक्र मतश्चान्यतो भुवि।
देशकालानुगुण्येन कृषिकर्म प्रशस्यते॥ ३८१॥

जिस स्थान पर पूर्वजों ने पहले कृषि कार्य किया हो, वहाँ खेती करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, मेघों के आगमन और जल के प्रवाह को देखते हुए अन्यत्र भी कृषि कार्य करना चाहिए। देश और काल को दृष्टिगत रखते हुए कृषि कार्य करना प्रशस्त होता है।

नरेन्द्राणा प्रजानां च फलदं परिकीर्तितम्।
धेन्वादीनामपि तथा पतङ्गानामपि क्रमात्॥ ३८२॥
जीवसौख्यप्रदमिदं कृषिकर्म सुनिश्चितम्।

किसी भी देश के राजाओं और प्रजाजनों के लिए कृषि कार्य फलदायी कहा गया है। यह कीट-पतंगों और गाय-चौपायों सहित जीवमात्र के लिए भी निश्चित रूप से सुखप्रदायक होता है। इसलिए इसे करना चाहिए।

धान्याढकतिलादीनां —

एवमाढकबीजानि माषबीजानि च क्रमात्॥ ३८३॥
मुद्गानां चणकानां च गोधूमानां विशेषतः।
तिलानां कीरकानां च कोद्रवाणां क्वचित्स्थले। ३८४॥

(खेतों में क्या-क्या बोयें, इसके लिए कहा गया है कि) उत्पादन की दृष्टि से

खेतों में आढ़क या तुअर के बीज, उड़द के बीजों को क्रमशः बोना चाहिए। मूँग, चना और गेहूं की भी विशेषकर बुवाई करनी चाहिए। इसी प्रकार खेतों में कुछ स्थान पर तिल, कीरक, कोद्रव (कोदों) की बुवाई कर उत्पादन करना चाहिए।

यवराणां कुलुत्थानां श्यामानां कृष्णसारिणाम्।
इक्षूणामपि पुण्ड्राणां जातिभेदरसक्र मैः॥ ३८५॥

इसी प्रकार यव (जौ), कुलुत्थ (कुलथी), श्यामाक (साँवा), कृष्णसारी (दूधिया) की बुवाई की जानी चाहिए। रसीले खाद्यों में गन्ने और पुण्ड्र (पेंडा, लाल गन्ना) रस के भेद से क्रमशः अलग-अलग प्रकार के होते हैं। (उनको भी देशीय परम्परानुसार बोया जाना चाहिए)।

उष्णबीजानि च तूलादीनां —

विभक्तानां बहुविधं धान्यानामुष्णबीजकम्।
जीरकानां सर्षपानां मरीचीनां तथैव च॥ ३८६॥
विधेयानां च तूलानामेरण्डानां क्वचित्स्थले।
एतेषामपि बीजानां रक्षणं सुखदायकम्॥ ३८७॥

खाद्योपयोगी उष्ण द्रव्यों या मसालों की कई कोटियाँ होती हैं। ऐसों में जीरक (जीरा), सर्षप (सरसों), मरीची (कालीमिर्च) की बुवाई करनी चाहिए। तूल (कपास) और ऐरण्ड (अरण्ड) भी किसी-किसी खेत में बोया जाना चाहिए। इन सभी के बीजों की सुरक्षा करना सुखप्रदायक मानी जाती है।

पटोलिकानां बीजानि वार्ताकानां तथैव च।
जटिका राशिजटिका वल्लिका वनवल्लिका॥ ३८८॥
षवका चापि विविधा रसपूर्णा च कीर्तिता।

पटोलिका (परवल, पाडर) और वार्ताक (बैंगन) के बीजों के साथ ही जटिका (लोमशा, बालछड़), राशिजटिका, वल्लिका (अजमोदा), वनवल्लिका और षवक (सावका, फ्रेंच तमारिस्क) भी विविध रसों से परिपूर्ण कहे गए हैं।

कूष्माण्डादि शाकाश्च —

शाकाश्च विविधा वर्ण रसजातिप्रभेदकाः॥ ३८९॥
कूष्माण्डानां कलाटानां नानारूपं तु बीजकम्।
कुस्तुम्बानां कटानां च धान्यकानामपि क्वचित्॥ ३९०॥

हरिद्राणां च शुण्ठीनां बीजसंरक्षणं शुभम्।

शाक-सब्जियां विविध रंग और रस-स्वाद आदि भेदों वाली कही गई हैं। इनमें कूष्माण्ड (कद्दू, कोला), कलाटा (कमल ककड़ी) के बीज नाना रूपों वाले होते हैं। कुस्तुम्ब (धनिया), कटा जैसे धान्यद्रव्यों को भी खेतों में कहीं-कहीं बोना चाहिए। भैषज्य द्रव्यों में हल्दी और सौंठ (अदरक कन्द) के बीजों का संरक्षण करना शुभकारक है।

सूरणादि कन्दवर्णनम् —

सूरणानां च कन्दानां शाकुटानां तथैव च॥ ३९१॥
रसकानामपि तथा कदलीनां विशेषतः।
बीजसंरक्षणं कार्यं कृषिकर्म विशारदैः॥ ३९२॥

कन्दों में सूरण और शाकुट (कराड़ी) जैसे कन्द, रसों की दृष्टि से कदली (केला) आदि विशेष हैं। इनके बीजों का संरक्षण कार्य कृषिकर्म करने वाले विशेषज्ञ को अवश्य करना चाहिए।

ताम्बूलादीनां खाद्यबीजानि —

एला द्राक्षा च नलदं नागवल्ली रसोज्वली।
पूगानां क्रमुकानां च बीजसंरक्षणं शुभम्॥ ३९३॥

इसी प्रकार इलायची, दाख (अंगूर), नलद (उशीर, जटा), नागवल्ली (पान, ताम्बूल), रसोज्वली, पूग (सुपाड़ी) या क्रमुक के बीजों का संरक्षण अच्छा फलदायी होता है।

पुष्पीय बीजानि —

मल्लिकापीतपुष्पाणां कुन्दानामपि बीजकम्।
रक्षेयु रतिमुक्तानां चाम्पेयानामपि क्वचित्॥ ३९४॥

पुष्पीय पौधों में मल्लिका (मोगरा) और पीले फूलों वालें कुन्द के बीजों सहित रतिमुक्ता चाम्पेय आदि का रक्षण करना चाहिए।

इत्यमन्तर नाना भूरुहानि —

शिग्रूणां भूर्जकानां च करञ्जामपि क्वचित्।
शमीनां नक्तमालानां देवदार्वाख्य भूरुहाम्॥ ३९५॥
विभीतिकप्रियङ्ग्वोश्च तथामलभूरुहाम्।

पिण्डीतकानां निम्बानां लिकुचानामपि क्वचित्॥ ३९६॥

रोपण योग्य पेड़ों में (देशानुसार रोपणीय) शिग्रु (सहजन), भूर्जक (भोजपत्र), करंज (करंजड़ा, रक्तमाल), शमी (सीसम), नक्तमाल (कणज), देवदार नामक पेड़ माने गए हैं। इसी प्रकार बहेड़ा, प्रियंगु (कक्कोल) और आंवला के पेड़, पिण्डीतक (पिण्डार, गांगड़), निम्ब (नीम), लिकुच (लकुच) के पेड़ कहीं-कहीं लगाएँ।

शिरीषाणामशोकानां दाडिया(मा)नां तथैव च।
श्रीपर्णानां तमालां सिन्धुवाराख्य भूरुहाम्॥ ३९७॥
कपित्थानां च जम्बूनां सप्तपर्णाख्य भूरुहाम्।
बीजसंरक्षणं कार्यं सुखाय च कृषीवलैः॥ ३९८॥

ऐसे ही शिरीष (सरस), अशोक (आशापाल), दाड़िम (अनार), श्रीपर्णा (गांभीरी), तमाल (तेजपत्र), सिन्धुवार (निर्गुण्डी) के पेड़ होते हैं। कपित्थ (कोटम्बड़ी), जम्बू (जामुन), सप्तपर्णा नामक पेड़ भी हैं। इनके बीजों के संरक्षण का कार्य कृषकों के लिए सुखप्रद होता है।

उदुम्बरश्चलदलाः तिनिशाः पारिभद्रकाः।
पलाशाश्च मधूकाश्च वटाः प्लक्षा रसालकाः॥ ३९९॥
तिन्दुकास्तिलका नीपाश्चार्जुनाः सर्जकाश्च ये।
बदराः पीलुवृक्षाश्च जम्बीराः पुन्नगाश्च ये॥ ४००॥
वंशाः काशाश्च विविधाः मातुलुङ्गाख्य भूरुहः।
एवं तु विविधा वृक्षाः पत्रैः पुष्पैः फलैरपि॥ ४०१॥
फलप्रदा मानवानां पतङ्गानां विशेषतः।

इसी क्रम में उदुम्बर (गूलर), चलदल (चम्पा या खदिर), तिनिश (तणछ, अतिमुक्तक), पारिभद्र (मन्दार), पलाश (ढाक), मधूक (महुआ), वट (बरगद), प्लक्ष (पाकड़), रसाल (आम), तिन्दुक (तेन्दुपत्ता), तिलक (रातावला), नीप (एक कदम्ब), अर्जुन, सर्ज (डामर का झाड़), बदर (बेर), पीलू (पीलवा), जम्बीर (जमेरी), पुन्नाग (सुल्तान चम्पा, केसर), वंश (बांस), काश (कास, जलीय घास), मातुलुंग (चकोतरा) इत्यादि पेड़-पौधे भी परिगणित हैं। इसी प्रकार के अन्य वृक्ष पत्र, पुष्प और फल प्रदान करने वाले हैं। ये मानव ही नहीं, कीट-पतंगों को भी फलदायक होते हैं।

महावृक्ष वर्णनम् —

वटादयो महावृक्षाः ये चान्ये परिकीर्तिताः ॥ ४०२ ॥

इन्हीं में वट (बरगद और पारस पीपल) आदि के पेड़ महावृक्षों के रूप में माने गए हैं।

पुनश्च बीजसंरक्षणनिर्देशमाह —

सर्वेषामेव तेषां तु बीजसंरक्षण हितम्।
सुपक्वानामातपे तु शोषितानां विशेषतः ॥ ४०३ ॥

सभी प्रकार के बीजों का संरक्षण हितकारी जानना चाहिए। इनके बीज जब अच्छी तरह पक जाए तब धूप में भली प्रकार सूखाए जाने चाहिए।

बीजानां सन्तती रक्ष्या भाण्डेषु विविधेषु च।
पलालराशिषु तथा कुण्डेष्वपि कृषीवलैः ॥ ४०४ ॥

किसानों को चाहिए कि वे तैयार विविध प्रकार के बीजों को मटकों-भाण्डों में भरकर सुरक्षित करें। कुण्डों में भूसा आदि भरकर भी इनको संरक्षित करें।

शशमूषकमार्जारैः न दूष्या बीजसन्ततिः।
जलराशिकणैर्वापि वातवृष्ट्यादिभिस्तथा ॥ ४०५ ॥
यथा न दूषिता दौषेरन्यैश्च विविधैरपि।

धान्य, पेड़-पौधों आदि के बीजों को मृगादि जानवरों, चूहों, बिलाव आदि के खाने और दूषित करने से बचाना चाहिए। इसी प्रकार पानी, नमी या आर्द्रता, हवा-अंधड़, वर्षा आदि से बचाकर रखना चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि किसी भी प्रकार से बीज (कीड़ा, घुन, सिलन आदि कारणों से) खराब नहीं हों।

बीजानां सन्ततिः पाल्या तथा गेहे खलस्थले ॥ ४०६ ॥
बीजानामुत्तमानां तु पालनं धर्मबुद्धितः।
श्रेयसे कृषिकानां तु कथितं मुनिपुङ्गवैः ॥ ४०७ ॥

तैयार बीजों को पाली स्थल, गृह अथवा खल स्थल पर सुरक्षित किया जाना चाहिए। धर्मबुद्धि होकर उत्तम बीजों का चुनाव करना चाहिए। मुनिराजाओं का मत है कि यह कार्य कृषकों को लाभ देने वाला होता है।

शल्यादिबीजानि तथा शाकबीजानि वा पुनः।
वृक्षाणामपि बीजानि कन्दानामपि बीजकम् ॥ ४०८ ॥

क्रीत्वा सङ्गृह्य वा लोके कृषिकर्मविदो नराः।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा सङ्कीर्णजा अपि॥ ४०९॥

शाक-भाजियों के बीज, शाली आदि के बीज, नाना वृक्षों और भूमिकन्दों के बीजों का संग्रह लोक समुदाय और कृषिकर्मविदों को अवश्य करना चाहिए। बीजों का संग्रह ब्राह्मण से लेकर क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और सङ्कीर्ण कोई भी वर्ग का व्यक्ति हो, उसे अवश्य ही करना चाहिए।

स्वक्षेत्रेषु स्वदेशस्थेष्वादरात् युक्तितस्तथा।
नानारूपेषु वृषभे कर्षितेषु विशेषतः॥ ४१०॥

इन बीजों को अलग-अलग क्षेत्रों में स्थित अपने-अपने खेतों की बैलों से जुताई कर, भूमि का कर्षण कर युक्तिपूर्वक बोना चाहिए।

काले समुचिते सिक्तान्यथवा वर्धितानि च।
आवापविधिना युक्त्या विन्यसेयुर्यथाक्रमम्॥ ४११॥

बीजों की बुवाई में समुचित काल या बोवनी-चक्र का पूरा ध्यान रखें, पूरी प्रक्रिया को अपनाएँ और जब वे लगकर अङ्कुरित हो जाए तब निर्धारित क्रम से सिंचाई का भी ध्यान रखा जाना चाहिए।

॥ इति काश्यपकृषिसूक्तौ नानाविधबीजसङ्ग्रहणक्रम एकादश कथनम्॥ ११॥

इस प्रकार काश्यपीय कृषि सूक्ति ग्रन्थ के अन्तर्गत नाना प्रकार के बीजों का संग्रह क्रम नामक ग्यारहवां कथन पूर्ण हुआ॥ ११॥

*****

अथ द्वादश कथनम्

॥ बीजवापनार्थं भूकर्षणक्रमः॥

शालेयार्थभूमिकर्षणं काश्यप उपदिशति —

बीजावापस्तु विविधो निर्दिष्टः शास्त्रकोविदैः।
क्वचित्शालेयभूम्यां तु कर्षणं वृषभैः शुभैः॥ ४१२॥

कृषिशास्त्रियों ने बीजों की बुवाई के कार्य के निमित्त नाना विधियाँ सुझाई हैं। विशेषकर शाली चावल के संदर्भ में ऐसी विधियाँ हैं। वपन से पूर्व शुभ बैलों से कृषि भूमि की जुताई करनी चाहिए।

अतो निर्दिष्टमेतेषां बीजानां व्रीहिसन्ततेः।
कन्दादीनामपि तथा वर्धनं प्रथमं स्थले॥ ४१३॥
कार्यमित्येवमादिष्टं कृषिकर्मविचक्षणैः।

यह स्मरणीय है कि व्रीहि या चावल के बीजों तथा कन्दों को प्रथम, अपने स्थल पर लगाएँ और उन्हें कुछ बड़ा होने दें, इस प्रकार के कार्य के लिए कृषिकर्मविदों ने निर्देश किया है।

जलक्षेत्रे च तद्भिन्ने तलसिक्ते शुभस्थले॥ ४१४॥
भूकर्षणं च वृषभैः कारयित्वा यथाक्रमम्।
बीजावापनयोग्यानि क्षेत्राणि विविधानि तु॥ ४१५॥

बुवाई के लिए उपयुक्त जलक्षेत्र और उससे भिन्न जल से तर तल पर बैलों की सहायता से जुताई-हंकाई करें। इसके बाद बीजों की बुवाई के लिए यथाक्रम उपयुक्त वपनीय स्थल या आरे तैयार करें।

कारयित्वा समीकृत्य चाङ्कुरन्यसनं तु वा।
कल्पयेयुर्यथाशक्ति युक्त्या च स्थलयोग्यकम्॥ ४१६॥

यथासंभव बीजों के अङ्कुरण वाले स्थान को सर्वप्रथम समीकृत अथवा इकसार करें और फिर योग्य स्थलानुसार बारी-बारी युक्ति से बीजों की बुवाई की जानी चाहिए।

योग्यस्थानमाह —

आक्रीडे चापि चारामे नृपोद्याने तथैव च।
ग्रामस्य नगरस्यापि बहिरन्तस्तु वा स्थले॥ ४१७॥
वृषभैर्भूकर्षणं च खनित्राद्यैः समक्रि या।
खेटाद्येश्च समीकारः क्षेत्राणां परिकीर्तितं॥ ४१८॥

ग्राम या नगरों के बाहर या अंदर विद्यमान अनुरंजनकारी बगीचों, आराम या उद्यान, राजाओं की बाड़ियों में जहाँ पर भी बुवाई की जानी हो, सर्वप्रथम बैलों से भूमि की जुताई करें और कुदाल या फावड़े से भूमि को समीकृत करें। इस प्रकार उसे बुवाई के लिए योग्य क्षेत्र के रूप में विकसित किया जा सकता है।

सीताक्रमश्च क्षेत्रेषु बीजावापाय कोविदैः।
क्वचित्कल्पश्च निर्दिष्टः क्वचित्खननमेव च॥ ४१९॥

विशेषज्ञों का परामर्श है कि बीजों की बुवाई के लिए क्षेत्र को हल चलाकर तैयार करें। आवश्यकतानुसार किसी-किसी क्षेत्र को खोदकर भी तैयार करने के बाद बुवाई करें।

कन्दादीनां स्थापनार्थमवटं वा प्रकल्पयेत्।
कदल्याद्या ये च लतातरवः संप्रकीर्तिताः॥ ४२०॥

कन्द या जड़ों से लगने वाले पौधों के लिए खड्डे खोदे जा सकते हैं। इसी प्रकार केला, लतादि के लिए भी तैयारी करनी चाहिए।

तेषा बीजाङ्कुरं युक्त्या कन्दस्थापनमेव च।
लतया वर्द्धनं चापि विविधं कृपिकौविदैः॥ ४२१॥

उक्त कंदादि की उपज के लिए बीजों के रूप में अङ्कुरण, सीधे ही कंद भी लगाए जा सकते हैं किन्तु उन्हें यथेष्ट युक्ति से लगाएँ। कृषिविदों का मत है कि लताओं को अपने अनुसार ही बढ़ने देना चाहिए।

समीकृते हि सुक्षेत्रे यथाकाले सपेष्टके।
न्यसनं फलदं चोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥ ४२२॥

उपज के लिए क्षेत्र को समीकृत किया जाना आवश्यक है, वह सुक्षेत्र भी होना चाहिए। पैदावार अच्छी हो, इसके लिए उपयुक्त समय पर खाद का प्रयोग भी करना चाहिए, जैसा कि कृषितत्त्वविदों का निर्देश है।

तस्मात्भूकर्षणं शस्तं शालिक्षेत्रे लतास्थले।
शाकादिवृद्ध्यर्हभूमौ उद्याने वृक्षकस्थले॥ ४२३॥
कर्षणं चावटं सीता रेखाकल्पनमेव च।
तत्तत्क्षेत्रानुकूल्येन कल्पयेत् कृषिकोविदः॥ ४२४॥

कृषिविदों का मत है कि किसानों को प्रशस्त शालीक्षेत्र या चावल के खेत, लता स्थल, वृक्षक स्थल और शाकादि क्षेत्रों की भूमि के लिए विशेषकर हल से कर्षण, जुताई कर पङ्क्तियाँ या आरे तैयार करने चाहिए। यह कार्य क्षेत्र की अनुकूलता, आकार आदि को ध्यान में रखते हुए करें।

जलसेकात् तेन हीनमर्करोचिच्छटाक्र मात्।
शुष्कितं वा स्थले धीमान् बीजवापाय निर्दिशेत्॥ ४२५॥

जो भूमि सूर्य की किरणों की गर्मी पाकर क्रमशः सूखती जा रही हो, वहाँ पर पौधों के लिए जल से सिंचाई करने का विधान है। सूखी भूमि जहाँ पर पहली बार पानी पिला दिया गया हो, वहाँ पर बीजों को लगाया जा सकता है।

लतादिस्थापने चैवं वृक्षाणां स्थापने तथा।
कदलीकन्दविन्यासे ह्यङ्कुरस्थापनेऽपि च॥ ४२६॥
भूकर्षणादिकं सर्वं कृषिकार्यं तु युक्तितः।
परम्परोपदेशाच्च कारयेत् फलसिद्धये॥ ४२७॥

लताओं के रोपण, वृक्ष लगाने, कदली कन्द के विन्यास और विविध अङ्कुरों को लगाए जाने के लिए भूमि की जुताई जैसे समस्त कार्यों, युक्तियों को संपादित किया जाना चाहिए। इसमें प्रादेशिक परंपराओं को भी ध्यान में रखना चाहिए तभी फल की सिद्धि हो सकेगी।

॥ इति काश्यपकृषिसूक्त्ये बीजवापनार्थं भूकर्षणक्रमः द्वादश कथनम्॥ १२॥

इस प्रकार काश्यपीय कृषि सूक्ति ग्रन्थ के अन्तर्गत बीजों की बुवाई के लिए भूमि की जुताई के क्रम का बारहवां कथन पूर्ण हुआ॥ १२॥

*****

अथ त्रयोदश कथनम्

॥ विविधधान्यप्राप्त्यर्थं कृषिक्रमादिकथनम्॥

तत्रैव कोसलादिदेशोपजं काश्यप उपदिशति —

कोसलादिषुदेशेषु नदीसलितपूरिते।
सस्यक्षेत्रसमूहे तु शाल्यादिः कृषिरुत्तमा॥ ४२८॥

अब अच्छी उपज पाने के लिए विविध कृषि कार्यों का कथन किया जा रहा है। कोसलादि देश, अवध से लगे कृषिक्षेत्र में जो कि नदियों के जल से परिपूर्ण क्षेत्र है, शाल्यादि की दृष्टि से अति उत्तम कहा जाता है।

आद्यकार्यमाह —

निर्दिष्टा मुनिभिस्तस्मात् धीमद्भिस्तु कृषीवलैः।

कलमव्रीहिनिवहान् प्राप्तुं कृतविनिश्चयैः॥ ४२९॥

मुनियों का कथन है कि कृषक को सङ्कल्पित होकर सर्वप्रथम व्रीहि की कलम के संग्रह से निवहान का आरम्भ करना चाहिए ताकि यथेष्ट फल पा सके।

जलाशयानामथवा नदीनां च ह्रदस्थले।
कुल्यामुखात् यथाकालं सस्य क्षेत्रेषु चोदितम्॥ ४३०॥
आदावापूर्य तदनु कर्षणं वृषभैर्मतम्।
ततः सलिलपूर्णानि सस्यक्षेत्राणि मानवाः॥ ४३१॥

सस्य क्षेत्र को उचित काल में जलाशय, नदी, कुण्ड के पानी को नहर से पानी लाकर लबालब कर दिया जाना चाहिए। इसके साथ ही बैलों से जुताई करनी चाहिए अर्थात् व्यक्तियों को अपने खेतों में उचित पिलाई, रेलाई के बाद ही अगला कार्य किया जाना चाहिए।

लाङ्गलोचित दिशाज्ञानमाह —

शाङ्करात् दिक्कोणभागादथवा तु क्वचित्स्थले।
प्राच्यां प्रतीच्यामथवा कर्षणं शुभदायकम्॥ ४३२॥

प्रथमतः हल प्रवण किस दिशा में करें, इसके लिए कहा गया है कि शाङ्कर या पूर्व-दक्षिण दिशा से सर्वप्रथम हल चलाएँ। कुछ मामलों में पूर्व या पश्चिम दिशा से खेतों को हाँकना भी शुभदायक माना गया है।

पूर्वमेव क्वचिद्देशे निबिडं वर्धितानि च।
शाल्यङ्कुराणां जालानि चोत्खातक्रममादिशेत्॥ ४३३॥

जिस क्षेत्र में पहले से ही शाली धान्य का अङ्कुरण हुआ हो, ऐसे प्रदेश में किसी-किसी को (सृष्टिक्रम से?) खुदाई करनी चाहिए।

अथान्येषा बन्धीकार्यादीनां —

बन्धीकृत्य तु तज्जालं कर्षणान्मृदुतां गते।
जलकर्दमभूयिष्ठे शालिक्षेत्रे सुलग्नके॥ ४३४॥

जिन खेतों की पहले ही बाड़बन्धी कर सोहनी या मुलायम मिट्टी वाला कर दिया गया हो, ऐसे जल व कीचड़ से युक्त क्षेत्रों को उचित आरीय या विभाजित करने के बाद ही सुलग्न में बुवाई कार्य किया जाना चाहिए।

अत्रैव शकृत्प्रयोगाः —

अजाशकृत्कणैरेवं गवां चापि शकृत्कणैः।

लताव्रततिभिर्वापि प्राप्तसारे सयत्नके ॥ ४३५ ॥

उक्त क्षेत्र के समसार हो जाने पर बकरी की मेंगनी या अन्य गोबर के खाद का प्रयोग करना चाहिए। विशेषकर लताओं के प्रसंग में गोबर दिया जाए।

पङ्क्तिशः पङ्क्तिशो भृत्यैः विन्यसेत्समभूमिके।
तत्र क्षेत्रे स्वल्पजलं स्थापनीयमनन्तरम् ॥ ४३६ ॥

भूमिपति को चाहिए कि वह रोपण के लिए भृत्यों या सेवकों से खेत में पंक्तियाँ अथवा आरे (क्यारे, क्यारियाँ या धरियाँ) बनवा लें और स्थापना के अनन्तर रेलनी या स्वल्पजल प्रदान करें।

जलाधिक्यस्त्रावमार्गः कल्पनीयो विशेषतः।
यथा सस्याङ्कुराणां तु नाशस्तु न भवेत्तथा(क्तेथा?) ॥ ४३७ ॥

रेलनी के लिए आवश्यक है कि खेतों तक धोरा (नाली) पहुँचाने के लिए वापन क्षेत्र से पृथक् से भूमि छोड़ें अर्थात् खेत में धोरों के लिए भी भूमि छोड़नी चाहिए। इसका पहले ही निर्धारण कर दिए जाने से बोये गए बीजों, अंकुरण को नष्ट होने से बचाया जा सकता है।

तथा तद्रक्षणं कार्यं तत्कर्मफलं विदुः।
एवमङ्कुरजालानां विन्यासश्च क्रमान्मतः ॥ ४३८ ॥

खेत में धोरों और आरों की रचना इस प्रकार से की जानी चाहिए कि बोये गए सभी बीजों (शाली पौधों) के अङ्कुरण का पूरा इच्छित लाभ मिल सके। इसलिए उनकी रक्षा भी की जानी चाहिए।

अधुनाङ्कुरनाशहेतवः —

यत्राङ्कुराणां नाशस्तु वृष्ट्यादिबहुकारणैः।
सम्पादितस्तथा धीमान् तत्र देशे प्रयत्नतः ॥ ४३९ ॥
नवाङ्कुराणा न्यसनं फलदं परिकल्पयेत्।

नवाङ्कुरों, कोंपलों को अतिवृष्टि जैसे कई कारणों से हानि पहुँचती है। इसीलिए ज्ञानी जनों को नवाङ्कुरों से फल मिल सके, इसके लिए उनकी रक्षा के लिए प्रदेश की आवश्यकता और वहाँ पर प्रचलित विधियों का प्रयोग करना उचित है।

अत्रैव संयुक्तकृषिकार्यस्य महत्ता —

ग्राम्येषु क्षेत्रजालेषु वन्ये वाथ स्थलान्तरे ॥ ४४० ॥

एक१ द्वि२ त्रि३ चतुः४ पञ्च५ कुटुम्बिभिरुदस्थले।
दशकैर्विंशतिगुणैः वृषभैर्युगपङ्क्तिभिः॥ ४४१॥
एकदा सस्यभूमीनां कर्षणं सस्यवृद्धिकृत्।
ऐकमत्यात् ग्रामजनैः बहुयुग्यप्रयोगतः॥ ४४२॥
एकदा बीजविन्यासः फलदश्च प्रकीर्तितः।

किसी भी गाँव, कृषिक्षेत्र या वन क्षेत्र में जहाँ कि पानी का उचित सुभीता हो और जहाँ पर किसानों की भागीदारी हो, वहाँ पर एक, दो, तीन, चार और पाँच परिवारों या कुटुम्बजनों को मिलकर उपज-निपज के लिए प्रयास करना चाहिए। ऐसे स्थानों पर दस बैलों की सहायता से जुताई करने से समय व श्रम व्यय बचता है अर्थात् एक ही साथ जुताई-बुवाई हो सकती है और इस प्रकार के सामूहिक सहमति आधारित प्रयास से एक ही समय में अच्छी उपज हो सकती है।

तथा च विशेषमाह —

एवं सकर्दमजले शालिक्षेत्रे विशेषतः॥ ४४३॥
ग्राम्ये वा नगरे वापि वन्य वनतलान्तरे।
सकुल्याजलनिस्त्रावे शाल्यङ्कुरगणेऽर्पिते॥ ४४४॥
जलाधिकक्षये तत्र कल्पिते बहुवक्त्रके।

यह कार्य विशेषकर उस क्षेत्र के लिए विचारणीय है जहाँ पर कि चावल उत्पादन क्षेत्र हो और जो कीचड़ से भरा हुआ हो। गाँव, नगर, अभयारण्य या ईंधन की लकड़ी वाले वन क्षेत्र में जबकि चावल की रोपाई कर दी गई हो, इस प्रकार की सहमति बनाई जानी चाहिए। इसी प्रकार अतिरिक्त पानी के सूख जाने पर कई नालियों के निर्माण कार्य को ध्यान में रखते हुए भी यह कदम उठाना चाहिए, साथ ही तब जबकि एक ही नहर से किसी विस्तृत क्षेत्र में पानी मिलता हो।

सप्तदशदिवान्तराणि प्रदर्शनमाह —

क्षेत्रन्यस्ता शालिबीजाङ्कुरपाली तु भूतले॥ ४४५॥
दिनानि सप्तदश१७ वा तीर्त्वा सा कृष्टभूमिके।
संप्राप्तमूलावृद्ध्यर्थं ब्रह्मणा तु विधीयते॥ ४४६॥
ततो बहिर्नवदलप्राप्तिश्च शुभदर्शनम्।
या कान्तिः शुकपक्षेषु (पत्रेषु?) दृश्यते सुमनोहरा॥ ४४७॥
तया कान्त्याञ्चिता भाति बालेवारूढयौवना।

किसी तैयार क्षेत्र में रोपी जाने के १७ दिनों बाद पूर्वोक्त क्यारों या पङ्क्तियों में शाल्याङ्कुर जड़ें ले लेते हैं। मूल ग्रहण करते ही वे वृद्धि को प्राप्त होने लगते हैं। यह ब्रह्मा की विधि-रचना ही है कि उनकी नवीन पत्तियाँ किसी शुकपत्र या तोते के पंखों के समान आभा वाली दिखाई देती हैं अथवा किसी ऐसी कन्या की देहयष्टि की भांति जो कि युवावस्था में कदम रख रही हो।

मासान्तराणिदर्शनमाह —

एवं तु प्रथमे मासे गते व्रीहिस्थले भुवि॥ ४४८॥
कलमादिदलानां हि वृद्धिः संदृश्यते क्रमात्।
परितोऽङ्कुरवद्धिश्च तत्समा कान्तिभूषिता॥ ४४९॥

एक मास की अवधि के अनन्तर व्रीहि या चावल के खेतों, कलमादि दलों में पत्तियों की धीमी-धीमी बढ़त स्पष्ट दिखाई देने लगती है। इसी प्रकार की अङ्कुर-वृद्धि समूचे परित या सीमा क्षेत्र में कांतिमान दिखाई देने लगती है।

सस्यरिपवः —

प्रत्यहं पीततोया च फलदानाय कल्पते।
सस्यक्षेत्रसमूहेषु तदानीं तृणकोष्ठकाः॥ ४५०॥
सकर्दमजलेष्वत्र वृद्धिभाजश्च निश्चिताः।
त एव सस्यरिपवो निश्चिता मुनिसत्तमैः॥ ४५१॥

प्रतिदिन जल से सींचा गया चावल उत्पादक क्षेत्र इच्छित फल प्रदान करने वाला होता है। उस समय जबकि पौध कीचड़ वाले क्षेत्र में ही खड़ी हो, तब यदि अन्य घास के बीज या खरपतवार पैदा हो जाती है तो उसे सस्यौपज के लिए शत्रु के समान समझना चाहिए, ऐसा मुनिजनों का मत है।

इत्यमनन्तर निरस्याकर्तव्यमाह —

तस्मात् कृषीवलैर्युक्त्या तदा तु तृणकोष्ठकाः।
मुञ्जाद्याश्चान्यदोषा ये निरस्या यत्नतो भुवः॥ ४५२॥

इसलिए कृषकों को धान के बीच में अनपेक्षित रूप से ऊग जाने वाले तृण, खरपतवारों को उन्मोचित कर देना चाहिए। इस प्रकार की खरपतवारों में मुञ्जा या मौंजी संज्ञक घास और अन्यान्य हानिकारक तत्त्वों की प्रयत्नपूर्वक निराई-गुड़ाई की जानी चाहिए।

मुञ्जाकोष्ठतृणादीनां फलहानिप्रदायिनाम्।
सस्यवृद्धिक्षयकृतां मूलतच्छेदनं शुभम्॥ ४५३॥

मुञ्जा घास के समूह, अन्य तृणों की पैदावार हमेशा फसल को हानि पहुँचाते हैं, ये सस्य को वृद्धि से रोकते हैं, क्षयकारक होते हैं, अतः उन्हें जड़ सहित उखाड़ फेंकना शुभ होता है।

शालेयभूमिषु तदा जलमापूर्य कोविदः।
तृणकोष्ठान् निरस्या(निरस्याथ?)पङ्क्तिशःपङ्क्तिशःक्रमात्॥ ४५४॥

ज्ञानी और जागरूक किसान को चाहिए कि वह सस्यक्षेत्र की सभी पङ्क्तियों से हानिकारक घास, खरपतवार को निकाल फेंकें और उचित समय पर सिंचाई करें।

भृत्यवर्गैः प्रत्यहं वा वैरिच्छेदः प्रशस्यते।
सस्यक्षेत्रेषु सर्वत्र चैवं रीत्या तृणादिषु॥ ४५५॥

कृषिकार्य में लगे रहने वाले हालियों, सेवकों को चाहिए कि वे हमेशा फसल पर ध्यान रखें और ज्योंहि हानिकारक तत्त्व दिखाई देने लगें, उनको उचित रीति से हटा दें।

द्विषत्सु संनिरुद्धेषु(?संनिरस्तेषु) यत्नतस्तुकृषीवलैः।
प्राप्तशोभा वृद्धियुता भासते शालिसन्ततिः॥ ४५६॥

किसानों के उचित यत्न से, खरपतवारों पर नियन्त्रण के बाद एक बार फिर से शालीधान्य की कतारें स्पष्ट लहलहाती दिखाई देने लगती हैं। साथ ही उनकी स्वस्थ अभिवृद्धि भी ज्ञात होने लगती है।

मासद्वयविचारमाह —

ततो द्वितीयमासे तु शालिवृद्धिश्च निश्चिता।
तदानीमपि ये केचित् तृणादिरिपवो यदि॥ ४५७॥
भवन्ति सस्यक्षेत्रेषु तन्निरासश्च युक्तितः।
महाफलायकथितः सस्यानां बहुरूपिणाम्॥ ४५८॥

इसके बाद फसल जबकि दो मास की हो जाए, शाली की निरंतर वृद्धि होती रहती है। इस दौरान भी यदि कोई खरपतवार या फसल का शत्रु खड़ा होता, बचता दिखाई देता है तो उसे भी दक्षतापूर्वक हटाना चाहिए ताकि फसल का बहुविध परिणाम मिल सके।

श्वेतशाली रक्तशाली कलमाद्याश्च ये पुरा।
निर्दिष्टा विविधा धान्यराशयो बहुजातिकाः॥ ४५९॥
सर्वेषामपि तेषां तु कृषिकार्यं हि तुल्यकम्।

धान्यराशि की कई जातियाँ हैं जिनका पूर्व में वर्णन किया जा चुका है यथा श्वेतशाली या सफेद चावल, रक्तशाली या लाल चावल, कलम आदि। इन धान्य प्रजातियों की आवश्यकता के अनुसार ही कृषि कार्य किया जाना चाहिए।

कर्षणादिक्रमाह —

भूमीनां कर्षणं चादौ ततो बीजाङ्कुरार्पणम्॥ ४६०॥
तृणकाष्ठोत्क्षेपणं च पुनस्तत्कर्म चादरात्।
जलसंपूरणं चैव शालि संरक्षणं तथा॥ ४६१॥
तुल्यरूपं तुल्यकार्यं निश्चितं कृषिकोविदैः।

कृषि कार्य का क्रम निर्धारित किया गया है जिसके अनुसार प्रारंभ में हलप्रवण करें इसके बाद बीजाङ्कुर लगाएँ, बाद में तृणकाष्ठ आदि का उत्क्षेपण करें और हानिकारक तत्वों को भी दूर करें। यह कार्य सावधानी पूर्वक किया जाना चाहिए। इस प्रकार चावल के लिए खेतों को पानी से भर दें और चावल की फसल का संरक्षण करें। जो फसल हो, ज्ञानी को चाहिए कि वह उसी के अनुसार कार्य करें।

शाल्यादीनां विशेषमाह —

तथापि शालयः शम्बाः कलमाद्याश्च भूमिषु॥ ४६२॥
जातिभेदाद्वर्णभेदात् त्रिमासफलदास्तु ते।
केचिच्चतुर्मासफलाः पञ्चमासफलाः परे॥ ४६३॥
षण्मासफलदाश्चान्ये तदाधिक्यफलप्रदाः।

शाली धान्य की शम्बा, कलम आदि प्रजातियाँ यदि उसी सस्यक्षेत्र में उपजाई जाती है तो वे जाति भेद, वर्णभेदानुसार परिपक्व होने में न्यूनाधिक समय ले सकती है। कोई तीन मास में फल देती है तो कोई चार, पाँच मास में भी फल देती है और कोई कोई छह या उससे अधिक मास भी ले सकती है। (प्रायः कलम चावल की प्रजाति है जो ज्येष्ठ-आषाढ़ में बोई जाती है और मार्गशीर्ष-पौष में तैयार होती है। यह अधिक पानी में होने वाला जड़हनी चावल है)।

तस्मात्तद्धान्यकणिका प्रादुर्भावक्रमं भुवि॥ ४६४॥

ज्ञात्वा कृषीवलैस्तावत् तेषां सलिलपूरणम्।
निर्दिष्टं कृषिकर्मज्ञैः देशे सर्वत्र सर्वतः॥ ४६५॥

इसलिए इन फसलों को लेने वाले किसान को कणिकाओं (बालियों, दानों) के प्रादुर्भाव होने या तैयार होने के समय व अन्य क्रम को जान लेना चाहिए। इसलिए विभिन्न प्रदेशों में इन फसलों को लेने वाले विज्ञजनों का मत है कि इन फसलों के पकने तक क्षेत्र में बराबर जल दिया जाना चाहिए।

रक्षानिर्देशादीनां —

यदा तु धान्यकणिकाराशिः सस्याग्रपङ्क्तिषु।
क्षीरगर्भो घनः किञ्चिदानतः दृश्यते क्रमात्॥ ४६६॥
तदा तत्कणिकाराशिरक्षणं तु शुकादपि।
तुल्यमेव विनिर्दिष्टं नानादेशेष्वपीरितम्॥ ४६७॥

फसल में जब दूधिया धान्य बालियों का आना आरम्भ हो जाए और वे ऊपर से थोड़ी झुकी हुई हो तथा सभी पौध लहलहाने लगे तब उनकी रक्षा का प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि इस दौरान फसलों पर तोता आदि पक्षी, कीट आदि पड़ने लगते हैं और इस प्रकार की परेशानी नाना देशों, प्रदेशों में देखी जा सकती है।

एवमन्तः क्षीरपूर्णा धान्यानां कणिकावलिः।
क्रमादन्तः सारवती तत्सारस्तण्डुलोदयः॥ ४६८॥

उक्त क्षीरपूरित या दूधिया बालियाँ धीरे-धीरे सारवती अथवा कठोर होती हुई चावल के रूप में परिवर्तित होती जाती है।

पुनः सेचननिर्देशः —

तावत्पर्यन्तमेतेषां सलिलस्य प्रपूरणम्।
शस्तं च फलदं प्रोक्तं अन्यथा फलहीनता॥ ४६९॥

पुनः कहा जा रहा है कि जब तक फसल पक कर तैयार नहीं हो जाए, तब तक उक्त क्षेत्र को बराबर जल से पूरित रखना चाहिए। यह फसल को प्रशस्त करता है अन्यथा फलहीन बना देगा।

तस्माद्व्रीह्यन्तरसकृत् क्षीरवृद्धिक्रमादिकम्।
ज्ञात्वा तत्समये मूले सस्यानां क्षीरवृद्धये॥ ४७०॥
क्रमेण सलिलस्रावः कर्तव्यस्तुकृषीवलैः।

यह हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि व्रीहि या चावलों की दूधिया बालियों में रस से दानों के बनने का क्रम निरन्तर रहता है। रस निर्माण की प्रक्रिया को निरंतर रखने के लिए सही समय को जानकर किसान को चाहिए कि वह सस्यक्षेत्र में सिंचाई बराबर बनाए रखें।

नदीजलाशयजलपूरणं वा क्वचित्स्थले॥ ४७१॥
ह्रदकूपादि सलिलपूरणं वा प्रयत्नतः।
तदा फलप्रदं प्रोक्तं प्राणिनां सुखसिद्धये॥ ४७२॥

सिंचाई को फसल के लिए अपरिहार्य जानना चाहिए। जिस किसी स्थान पर जो भी सुविधा हो, उसका उपयोग करें। यह सुविधा चाहे नदी की हो, जलाशय की हो या ह्रद अथवा फिर कूप की हो किन्तु यह प्रयत्न करना चाहिए कि फसल को पानी उचित समय पर बराबर मिलता रहे। इसी से फल मिलेगा और प्राणमात्र के सुख की सिद्धि हो सकेगी।

वसुन्धराया वरतः सङ्कल्पात् ब्रह्मणस्तथा।
उप्तानि सस्यक्षेत्रेषु बीजानि विविधानि तु॥ ४७३॥
फलदानि भवन्तीह वृद्धिं प्राप्य क्रमाद्भुवि।
स्वयमेवविधान्येव भासुराणि महीतले॥ ४७४॥

इस भूमितल में पृथ्वी के वर और ब्रह्मा के संकल्प से भूमि पर रोपे गए विविध बीज धीरे-धीरे उगते, चमकपूर्वक विकसित होते हैं और अपनी प्रकृति के अनुसार विविध प्रकार का फल प्रदान करते हैं।

मूषकात् शलभात्कीरात् शुकादपि च दुष्टतः।
प्राणिवर्गाद्रक्षणं तु विशेषफलदं विदुः॥ ४७५॥

प्रत्येक फसल तब विशेष फल देने वाली होती है जबकि उसकी चूहों, कीट, तोतों, दुष्टजनों और अन्य हानिकारक प्राणियों से रक्षित होती है, ऐसा विज्ञजनों द्वारा कहा गया है।

अन्यदपि —

परस्परं स्नेहवन्तः ग्राम्याः कृषिकरा जनाः।
सस्यानां कलमादीनां वयो निश्चित्य रूपतः॥ ४७६॥

ऐसे ग्रामीण कृषि करने वालों को जो परस्पर स्नेहवन्त हों और एक दूसरे के

हितचिन्तक हों, उन्हें कलम एवं अन्य प्रकार के चावलों के क्षेत्र के किनारों को दृढ़ रखना चाहिए ताकि फसल की पैदावार उचित हो सके।

साक्षादनुभवाद्बीजशक्त्या च स्थलवैभवात्।
शाल्यादीनि सुपक्कानि रक्षितान्यनुजीविभिः॥ ४७७॥

किसान के पूर्ण और प्रत्यक्ष अनुभव, बीज की उपज शक्ति अथवा उन्नत बीज और किसी स्थान की उर्वर शक्ति के आधार पर ही उपज निर्धारित होती है। इसी से शाली आदि धान्य पककर कृषिजीवियों की रक्षा करते हैं।

प्रदक्षिणादिभिर्मान्यानीह प्राणिहितानि च।
यदा तु धान्यकणिकाराशौ पक्के यथाक्रमम्॥ ४७८॥
तत्तद्व्ययः कालयोगात् तदा न जलसेवनम्।
कार्यमित्येवमादिष्टं कृषितत्त्वविदां वरैः॥ ४७९॥

किसी क्षेत्र में फसल को नियमित रूप से बदलना चाहिए, यह प्राणियों की रुचि के हिताधार पर भी बोई जाती है। निर्धारित काल के बाद जब फसल अपेक्षानुरूप पककर तैयार हो जाए तब क्षेत्र में जल की आपूर्ति या सिंचाई रोक देनी चाहिए। कृषि तत्त्वविदों ने इस प्रकार का मत दिया है।

पुनरपि —

शालिक्षेत्रेषु सर्वेषु कथितोऽयं क्रमो बुधैः।
तस्मात्तद्व्रीहिकणिकाः पक्क काले कृषीवलाः॥ ४८०॥
अतन्द्रा रक्षेयुरेताः दोषाद् विविधरूपतः।

कृषिज्ञानियों ने सभी शालीक्षेत्रों के सम्बन्ध में यही अनुकरणीय कर्तव्य बताया है कि जब बालियाँ पकती हों तब कृषकों को धान्य के प्रत्येक दाने की भीग जाने और कीटादि व्याधियों, बीमारियों से सर्वप्रकारेण रक्षा करनी चाहिए।

एवं तद्व्रीहिकणिकागणे पक्के दलाग्रके॥ ४८१॥
व्रीहिकाण्डावलिः साग्रा (भव) पततीह भुवौ तदा।
एवं तां पतितां दृष्ट्वा दिनविंशतिकावधि$_{२०}$॥ ४८२॥
निरीक्ष्य पालयेत्क्षेत्रे भृत्यैर्वा स्वमेव वा।

चावल की साल अथवा बालियों में पड़ा हुआ दाना जब पक जाता है तब दण्डिका आगे की ओर से भूमि पर झुक जाती है। दण्डिका का ऐसा पतन दाना आने

के बीस दिनों की अवधि में होता है और ऐसा दिखाई देने पर कृषक को चाहिए कि उसे सेवकों से या फिर स्वयं उसे उठाकर रक्षित करें।

अत्रैव कर्तनमाह —

अथ सम्प्राप्तकाले तु दण्डानां व्रीहिसन्ततेः॥ ४८३॥
सुपक्वानां स्वर्णवर्णं छुरितानामपि क्वचित्।
तद्दण्डकर्तनं कार्यं शङ्कुलाद्यैः कृषीवलैः॥ ४८४॥

फसल जब पकने लगे तब ध्यान दें कि दाना डण्ठल पर सुनहरे रंग का हो गया है। किसान को चाहिए अच्छी तरह पक जाने पर छुरी (दरांती) अथवा शङ्कुला (सँगिया ?) से दण्डिकाओं की कटाई करें।

अनुजीविकवर्गैश्च भृत्यैरन्यैस्तथा नराः।
कर्त्तयेयुः दण्डकाण्डावलिं कलमसन्ततेः॥ ४८५॥

कृषक के आश्रित, अनुजीविक वर्गीयजनों, सेवकों और अन्य परिजनों को धान की दण्डिकाओं से बालियों को पृथक् करने के कार्य में सहायता करनी चाहिए।

एकदा वा प्रत्यहं वा मिथः साह्यक्रियापरैः।
कर्तनं फलदं प्राहुः यथा शाल्यादिदण्डकाः॥ ४८६॥

डण्ठलों से साल को पृथक् करने का कार्य एक ही दिन में या फिर शीघ्र ही अथवा थोड़ा-थोड़ा कार्य मिल जुलकर कर लिया जाना चाहिए। (मिलकर कार्य करने से कार्य अधिक दक्षता और अपेक्षानुसार पूर्ण होता है)।

अत्रैव विशेषोच्च —

नाशिता वा न नष्टा वा वृष्ट्याद्यैस्तस्करैस्तु वा।
तथा तत्कर्तनं कार्यं सस्यानां विविधात्मनाम्॥ ४८७॥

यह स्मरणीय है कि चोरों की दृष्टि से और वर्षा से बचाकर धान्य की कटाई पहले ही कर लेनी चाहिए। जो फसल जिस प्रकार की हो, उसकी कटाई उसके लिए प्रचलित रीति के अनुसार करें।

कर्तितव्रीहिदण्डानां साग्राणां तु कृषीवलैः।
स्थापनं खलभूमीषु भृत्यैरनुचरादिभिः॥ ४८८॥

किसानों को चाहिए कि काटी गई चावल की दण्डिका-पूलियों को सेवकों, अनुचरों की सहायता से खलिहान में रखवाएँ।

त्रयं वा पञ्चकं तत्र दिनानां खलभूमिषु।
स्थापनं रक्षणं शस्तं महाफलमुदिरितम्॥ ४८९॥

खलिहान में उक्त फसल को तीन या पाँच दिन तक सूखने के लिए रख दिया जाना चाहिए। यहाँ पर डाली गई फसल की सुरक्षा का उपाय भी किया जाना चाहिए तभी वह अपने लिए फलदायी होगी।

अत्रैव मर्दनकार्यमाह —

श्लथाग्राणां सुपक्वानां दण्डानां व्रीहिसन्ततेः।
खलभूम्यां मर्दनेन धान्यानां कणिकावलिः॥ ४९०॥
पतिता राजते रत्नगुंभावलिखि(लि?)मला।

यहाँ पर जब साल के दण्ड भली-भाँति सूखकर पीले पड़ जाएँ, उनके गाहने या मर्दन का कार्य होता है। इससे दाने भूमि पर गिरकर ऐसे दिखाई देते हैं जैसे कि किसी दाग रहित भूमि पर रेखाएँ उभर आई हों।

विशेषप्रयत्नादि निर्देशः —

पुनश्च व्रीहिदण्डाग्रे मर्दिते सति यत्नतः॥ ४९१॥
वृषाणां महिषाणां च पादघट्टनकैस्तु वा।
अवशिष्टो धान्यकणगुंभश्चाधः पतत्यधः॥ ४९२॥

धान के पूर्वोक्त मर्दन के बाद यदि चावल के भूसे को बैलों, भैसों के पैरों तले यदि पुनः रोंदने का प्रयास किया जाए तो उनमें बचे अवशिष्ट धान्य के कण भी सहज रूप से बाहर निकलकर गिरते हैं।

एवं संमर्दनं कृत्वा व्रीहिदण्डावलेः खले।
पुञ्जीकुर्युर्धान्यकणान् घनान् सारान् पृथक्कृतान्॥ ४९३॥

इस प्रकार परिशोधन कार्य विधि से निकाले गए चावल के अच्छे, उज्ज्वल दानों को खली, भूसे से पृथक् करना चाहिए।

घनहीनान् पेशलांश्च शूर्पवातादिवीजनैः।
पृथक्कृत्य प्रयत्नेन पुञ्जीकुर्युः कृषीवलाः॥ ४९४॥
आतपे शोषयित्वाथ निर्मलान् कारयेद्बुधः।

इसी प्रकार जो छोटे या नाजुक दाने हों, उनका भूसी सहित ढेर बना लिया जाना चाहिए और सूप, पंखों से हवा कर उनको भूसी से अलग करना चाहिए। कृषिकर्ताओं को इन दानों को धूप में रखकर निर्मल करने का प्रयास करना चाहिए।

देवादीनां भागमाह —

देवानामथ राज्ञां च भागमेकं यथाक्रमम्॥ ४९५॥
श्रोत्रियायापि विदुषे भागमेकं यथाक्रमम्।
दत्वादानं भृत्यवर्गपोषणं वा क्वचित्स्थले॥ ४९६॥

इस प्रकार कृषि उपज का एक भाग देवता (मन्दिर) और नियमानुसार राजा को देना चाहिए। पुनः एक भाग श्रोत्रिय या वेद पाठी स्नातक को दें और फिर सेवकों तथा दान का अंश निकालकर कहीं रख देना चाहिए (जैसी कि गाँवों में आज भी कबूतर, भिक्षुक आदि के लिए पृथक् भण्डारण की परम्परा चली आ रही है)।

अवशिष्टं धान्यराशिं स्थापयेत्स्वनिकेतने।
रक्षयेच्च प्रयत्नेन काठिन्यादिषु युक्तितः॥ ४९७॥

इस प्रकार के अंश निकालने के बाद शेष धान्यराशि को खलिहान से अपने घर लाना चाहिए। घर पर इस अनाज को परंपरित विधियों से सुरक्षित करना चाहिए।

भाण्डागारादीनां —

मृण्मयेष्वपि भाण्डेषु सुतप्तेष्वथवा क्वचित्।
दृढकांचैनिर्मितेषु पिठरेष्वपि वा क्वचित्॥ ४९८॥

अनाज को मिट्टी से बने विशेष पात्रों में भरा जा सकता है। कठोर कांच के बने मर्तबानों में या फिर भूमितल पर बने अन्नागारों में भी संगृहीत किया जा सकता है।

दृढरज्जुकृतेष्वक्तेष्वपि देशानुसारतः।
क्वचिद्भूम्यां दृढस्थल्यामवटं वा प्रकल्पयेत्॥ ४९९॥

देशज विधियों में रस्सी के बुने और मृणलेपादि किए बड़े पात्रों में भी रखा जा सकता है। कहीं-कहीं परंपरानुसार भूमि के नीचे वायुरोधी भाण्डागार की रचना भी की जा सकती है।

तत्र सोपानसंयुक्ते व्रीहिधान्यादिकं क्वचित्।
स्थापयेद्रक्षयेद्युक्त्या जलतस्करकीरकात्॥ ५००॥

जहाँ पर भूतल में चावल आदि धान्यराशि का संग्रह किया जाता हो, वहाँ तक पहुँचने के लिए सीढ़ियों का प्रबंध हो। इस प्रकार चतुराई से अनाज की जल, चोर और पक्षियों (कीटों) से रक्षा का उपाय किया जाना चाहिए।

मूषकादपि दुष्टाच्च सत्वात् भयविवर्जितम्।

एवं तु कलमव्रीहि धान्यानां रक्षणं परम्॥ ५०१॥

कलम, चावल आदि अनाज की चूहों और अन्य चालाक जानवरों के भय से अच्छी प्रकार से रक्षा की जानी चाहिए। वस्तुतः अन्नागार को भयमुक्त रखना चाहिए।

बीजरक्षानिर्देशः —

बीजानामपि चैतेषामातपे शोषितात्मनाम्।
रक्षणं चैवमादिष्टमुत्तमैस्तु कृषीवलैः॥ ५०२॥

किसानों को चाहिए कि वे अनाज के साथ ही उत्तम प्रकार के बीजों को अच्छी तरह से सूखाकर उन्हें सुरक्षित करें।

सस्यतृणादीनां संरक्षणमाह —

एवं नीते धान्यराशौ स्वगृहाणि कृषीवलैः।
सस्यव्रीह्यादिदण्डानामातपे शोषितात्मनाम्॥ ५०३॥

अपने घर पर अनाज का संग्रह कर लिए जाने के बाद किसान को चाहिए कि वह खलिहान में पड़े भूसा, दण्डिकाओं को एकत्रित कर लें और उसे धूप में सूखने के लिए डाल दें।

गोपादमर्दितानां च राशिं मृदुलतन्तुकाम्।
पुञ्जीकृत्यक्षुद्रमानं स्वगृहे गोष्ठकेऽपि च॥ ५०४॥

इसके बाद गायों के पाँवों तले मर्दित भूसा, चारा के तिनके को अपने घर या पशुधन को बाँधने के स्थान पर एकत्रित कर सुरक्षित कर दिया जाना चाहिए।

स्थापयित्वा विशेषेण पलालानां च रक्षणम्।
धेनूनां वृषभाणां च महिषाणां तथा क्वचित्॥ ५०५॥
महिषीणामजानां च मृगाणामपि वा क्वचित्।
पलालपूलकैरेतैः जीवनं शास्त्रनिश्चितम्॥ ५०६॥

इस भूसे, पलाल की सुरक्षा भी सावधानी से करनी चाहिए क्योंकि यह गाय, बैल, भैंसों, भैंस, बकरी आदि के आहार के रूप में काम आता है। कभी-कभी मृगों के लिए भी उपयोगी होता है। शास्त्रकारों का कथन है कि पुआल एवं घास के पूले ही पशुधन के लिए जीवनाधार है।

धान्यसस्यकाण्डपलालश्च महत्वमाह —

अतः सर्वत्र देशेषु धीमन्तस्तु कृषीवलाः।

धान्यादिभिर्मानवानां प्राणरक्षणकर्मणि॥५०७॥
चतुष्पात्प्राणरक्षासु सस्यकाण्डपलालकैः।
महानंदाय कल्पन्ते कृतयत्ना विधानतः॥५०८॥

सभी देशों में चतुर किसानों को तब प्रसन्नता होती है जबकि पर्याप्त धान्य भण्डार भरे होते हैं क्योंकि ये मानवीय प्राणों की रक्षा करने वाले होते हैं और चारा, भूसा, पुआल के भण्डार से चौपायों के प्राण बचते हैं। इसलिए किसानों को इस प्रसन्नता को अक्षुण्ण रखने के लिए बीजों का भी यथेष्ट भण्डार रखना चाहिए।

संग्रहार्थ मुहूर्तपूजादीनां —

आर्याणामुपदेशाच्च देशाचारक्र मादपि।
तथा स्वानुभवाद्युक्त्या कृषिकर्मरता नराः(रता?)॥५०९॥
ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्याः शूद्राः सङ्कीर्णयोनयः।
ये चान्ये भूसंपदस्तु फलितं धान्यराशिकम्॥५१०॥
सुमुहूर्ते सुलग्ने च विन्यस्य स्वग्रहो(! गृहो)त्तमे।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्य सङ्कीर्ण समुदाय वाले जो भी लोग कृषिकर्म से जुड़े हुए हैं, उन्हें आर्यों के उपदेश, परामर्श और अपने प्रदेश में प्रचलित युक्तियों को ध्यान में रखते हुए कृषि उपज को अच्छे मुहूर्त, सुलग्न, जब सभी ग्रह स्वगृह में हो तब धान्यराशि का संग्रहण करना चाहिए।

पूजयित्वा धान्यलक्ष्मीं धनलक्ष्मीं तथैव च॥५११॥
गन्धै पुष्पैस्तथा शुद्धद्रव्यैः शास्त्रविनिश्चतैः।
ब्राह्मणान् भोजयित्वाथ प्रदत्वा दक्षिणां शुभाम्॥५१२॥

संग्रहावसर पर किसानों को धान्य-लक्ष्मी की धन-लक्ष्मी की भांति ही पूजा करनी चाहिए। लक्ष्मी को गन्ध, पुष्प, शुद्धद्रव्य सहित शास्त्रों में निर्दिष्ट विधि से पूजना चाहिए। इसके बाद ब्राह्मण को भोजन करवाकर शुभ दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए।

यशः सुखञ्च परममैश्वर्यं प्राप्य भूतले।
तथा देवानुग्रहं च सुपुत्राश्च कलत्रकाः(! त्रिणाः)॥५१३॥
पौत्रादिभिः समेताश्च हृष्टा राजन्ति नित्यशः।

इस प्रकार जो कृषिकर्मी शुभ मुहूर्त, पूजादि कृत्यों को सम्पन्न करता है, वह भूतल पर यश, सुख और परम ऐश्वर्य को प्राप्त करता है। देवानुग्रह से वह नित्यप्रति सुपुत्रों, पत्नी, पौत्रादि सहित प्रसन्नतापूर्वक रहता है।

एकाधिकसस्योक्तिश्रेष्ठमाह —

शालिक्षेत्रेषु विविधेष्वतः प्राप्त कृषिक्रियाः॥५१४॥
मानवा युक्तितो देशे स्वकीये च वनान्तरे।
ग्रामेष्वपि च सत्क्षेत्रे स्थल्यामपि तथा क्वचित्॥५१५॥
सारक्षेत्रे नित्यजले द्वितीयं कृषिकर्म च।
कृत्वा तत्फलमप्यत्र प्राप्नुवन्ति महोदयाः॥५१६॥

शालीक्षेत्र अथवा चावल के उत्पादक क्षेत्र में जो मनुष्य कृषिकार्य करते हैं, वे अपने प्रदेश में, चाहे वनान्तर या जंगलों में पड़ी भूमि पर, ग्राम में, अच्छे खेतों या फिर कठिनाई से प्राप्य जल के क्षेत्र में यदि दूसरी फसल उगा लेता है तो वह वास्तव में उस भूमि का उपयोग करता है अर्थात् किसी भी क्षेत्र में एक से अधिक फसल लेने की युक्ति करनी चाहिए।

प्रत्यब्दमेवं सर्वत्र द्विरावृत्तिकृषिक्रिया।
क्षेत्रेषु बहुरूपेण शस्यते फलदायिनी॥५१७॥

प्रत्येक संवत्सर में खेती से दो फसल लेना हमेशा अच्छी मानी गई है। इसीलिए यह प्रत्येक क्षेत्र में अलग-अलग प्रकार से की जाती है।

अधुना द्विरावृत्तिकृषिकार्यमाह —

अजाशकृत गोशकृत् कलतादीनां समर्पणैः।
क्षेत्राणां सारमुत्पाद्य द्वितीयावृत्तिरिष्यते॥५१८॥

खेत में दूसरी फसल लेने के लिए जुताई से पूर्व आवश्यक है कि उसमें बकरी की मेंगनी, गाय का गोबर और हरी खाद डालकर उसकी उर्वरा शक्ति को बढ़ाया जाए।

क्रिया-क्रिया योग्यपदा फलदा च प्रकीर्तिता।
प्रत्यहं वीक्षणात् शालिक्षेत्राणां माननादपि॥५१९॥

कृषि से जुड़ी प्रत्येक क्रिया योग्य और फलदायी सिद्ध हो सकती है जबकि अनाज के क्षेत्र का यथाकाल, भली प्रकार अवलोकन कर कोई निश्चय किया जाए।

कृषेश्च क्रमयोगाच्च शान्तात्मानः कृषीवलाः।
धेन्वादीनां रक्षणाच्च प्राप्नुवन्त्यधिकं फलम्॥५२०॥

अच्छी उपज के लिए सही कृषि तकनीक का प्रयोग करें, शान्त प्रकृति रखें और गाय आदि पशुओं का भली प्रकार रक्षण-पोषण हो।

तस्मात् कृषिश्चक्रमविदोमिथो(धा?) मैत्र्यादिभाषणाः।
द्वितीयावृत्तिककृषिकार्याय कृतमानसाः ॥ ५२१ ॥

खेत से दूसरी फसल लेने से पूर्व कृषितत्त्वविदों या कृषि वैज्ञानिकों से मैत्रीपूर्वक विमर्श करें और उनके उचित परामर्श पर ही मन बनाकर अपना कार्य आरम्भ करें।

कृषीवलाकर्तव्यमाह —

प्रत्यब्दं गोरक्षणं च भृत्यानामपि रक्षणम्।
बीजानां रक्षणं चापि कुल्यादीनां च रक्षणम् ॥ ५२२ ॥

प्रत्येक चतुर किसान का कर्तव्य है कि वह गाय आदि पशुधन, सेवकों, बीजों और नहरों की भली प्रकार रक्षा, देखरेख करें।

जलाशयतटाकादिह्रदानामपि रक्षणम्।
खनित्रशङ्कुलादीनां रक्षणं खलरक्षणम् ॥ ५२३ ॥

चतुर किसान को चाहिए कि वह अपने क्षेत्र के जलस्रोतों- जलाशय, सोतों, गहरे जलस्रोतों, कूपादि की रक्षा करें। कृषि कार्योपयोगी आदानों- कुदाली, फावड़ा, दराँती (सँगिया) की सार-संभाल करें और खलिहान की रक्षा करें।

वृतेस्तु रक्षणं चापि क्षेत्राणामपि रक्षणम्।
मुख्यं धर्ममिति ज्ञात्वा तथा कृत्वा प्रयत्नतः ॥ ५२४ ॥

किसान को वृत्तीय क्षेत्र या अपने निर्धारित सीमा वाले क्षेत्र की बाड़बंदी (सुरक्षा) करें। इस प्रकार किसान के मुख्य धर्म बताए गए हैं जिन्हें जानकर उनका प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिए।

देशाचारवशाच्चापि कृषिकर्म महोदयम्।
महानंदाय कल्पन्ते त्रिवर्ग सुखसम्पदः ॥ ५२५ ॥

इसी प्रकार अपने प्रदेश विशेष की परंपराओं, लोक परिपाटियों का अनुसरण किसान के लिए प्रसन्नतादायक सिद्ध हो सकता है। यह विचार किसान के लिए सुख और तीनों ही वर्ग— अर्थ, धर्म और काम का हेतु है।

॥ इति काश्यपकृषिसूक्तौ विविधधान्यप्राप्त्यर्थं कृषिक्रमादि
त्रयोदशं कथनम् ॥ १३ ॥

इस प्रकार काश्यपीय कृषि सूक्ति ग्रन्थ के अन्तर्गत विविधानेक धान्यों की प्राप्ति के लिए कृषि क्रमादि त्रयोदश कथन पूर्ण हुआ॥ १३॥

*****

अथ चतुर्दश कथनम्

॥ आढकादिविविधद्रव्यप्राप्त्यर्थं कृषिक्रमादिवर्णनमाह॥

काश्यप उपदिशति —

आढकानां च माषाणां चणकानामपि क्वचित्।
मुद्गानां च कुलुत्थानां तिलानां च क्वचित्स्थले॥ ५२६॥

काश्यप द्वारा अब दाल, मसालों और अन्य फसलों की प्राप्ति के लिए कृषि कथन किया जा रहा है। कृषक को कहीं अरहर (आढ़क, तुअर, मसूरक), उड़द, चना, मूँग और कुलुत्थ तो कहीं पर तिल की खेती की जानी चाहिए।

व्यञ्जनार्थमरीचीदीनां —

आवापरथो(चा?)पि बीजानां मरीचीजी(ची?)रकादिनाम्।
कृषिकर्म च कर्तव्यं व्यञ्जनं तैरुदीरितम्॥ ५२७॥

किसान को कालीमिर्च, जीरा भी कुछ क्षेत्र में उगाना चाहिए। ये उत्पादन व्यंजनों की दृष्टि से बहुत उपयोगी है।

वीरसेनोक्त पाकशास्त्रोल्लेखः —

अन्नं तु विविधं लोके धान्योत्थैस्तण्डुलादिभिः।
क्रियते प्राणरक्षार्थं तत्कल्पः पाकशास्त्रकम्॥ ५२८॥

अलग-अलग प्रकार का भोजन जो कि लोकाञ्चल में चावल आदि धान्यों की सहायता से बनता है, वह व्यक्ति के प्राणों की रक्षा के लिए उपयोगी है और जिस शास्त्र में इस प्रकार की विधियों का वर्णन मिलता है, उसे 'पाकशास्त्र' कहा गया है।

वीरसेनेन राज्ञा तु पाकशास्त्रं महत्कृतम्।
तत्पुत्रेण नलेनापि गर्गेण च महर्षिणा॥ ५२९॥

पाकशास्त्र की रचना राजा वीरसेन द्वारा की गई है। तदोपरान्त उसके पुत्र नल ने और फिर महर्षि गर्ग ने इस शास्त्र का विस्तार किया।

तत्रोक्तान्नव्यञ्जनादिक्रमस्तु विविधो मतः।
तदेव व्यञ्जनं लोके चान्नाद्यानां रुचिप्रदम्॥५३०॥

पाकशास्त्र में भोजन और व्यञ्जन निर्माण के लिए जिन विधियों का निर्देश किया गया है, उनमें मसालों की विभिन्नता मुख्य है। यह विभिन्न व्यञ्जनों, आहार आदि को सुरुचिपूर्ण बनाता है।

पुष्ट्यारोग्यप्रदप्रयोगमाह —

माषाढकमरीच्याद्यैः लवणैश्च गुडादिभिः।
सम्पाद्यते हि सर्वत्र पुष्ट्यारोग्यप्रदं नृणाम्॥५३१॥

उड़द, तुअर (आढक की दालों के विशिष्ट पाक) कालीमिर्च, नमक और गुड़ मिलाकर तैयार किए जाते हैं। इनका प्रयोग व्यक्ति के अच्छे स्वास्थ्य, पोषण के लिए किया जाता है।

धान्योत्पादनकाले च चतुरैस्तु कृषीवलैः।
वन्येष्वपि च भागेषु अपि ग्राम्येषु भूतले॥५३२॥
आढकानां च मा(भा?)षाणां मुद्गादीनां च कालतः।
सीरकृष्टेषु भागेषु स्वल्पसिक्तेषु वारिदैः॥५३३॥
कुल्यानीरकणैर्वापि बीजावापश्च निश्चितः।

एक चतुर किसान वह है जो धान्योत्पादन काल में वनभूमि और ग्रामों के जोतक्षेत्र को देखकर इन फसलों की बुवाई पर विचार करता है। तुअर-आढक, उड़द, मूँग आदि दलहनों के लिए उचित काल को देखता है और कृषिक्षेत्र में स्वल्प सिंचाई वर्षा या नहर से करता हुआ वपन अथवा बुवाई का कार्य निश्चित करता है।

आढकादीनां बृहल्लघुप्रकाराः —

आढकेष्वपि माषेषु मुद्गष्वपि तिलेष्वपि॥५३४॥
चणकेष्वपि शास्त्रेषु वृहल्लघु च निश्चितम्।

शास्त्रकारों ने आढक-तुअर, उड़द, मूँग, तिल और चना आदि बड़ी तथा छोटी किस्मों की जानकारी दी है, जिन्हें जानना चाहिए।

केषां क्षेत्रे वपनमाह —

जलसिक्ते भूमिभागे चोत्तुङ्गे तत्र-तत्र तु॥५३५॥

तिलादीनां तु बीजानामावापः कृषिचोदितः।

इसी प्रकार, वह विस्तृत उपजाऊ क्षेत्र जो जलसिक्त हो अथवा जिस पर सिंचाई हो गई हो, वहाँ पर तिल आदि के साथ दालों के बीजों की बुवाई कर देनी चाहिए, ऐसा कश्यप मुनि का निर्देश है।

चतुः४ पञ्च५ सङ्ख्येपु वासरेषु मा(गा?)तेषु हि॥ ५३६॥
आढकाद्यङ्कुरोत्पत्तिः दृश्या सीरस्थले तदा।
सा च भूसारयोगेन निश्चिता शास्त्रकोविदैः॥ ५३७॥
प्रत्यक्षमालोकिता च नानादेशेष्वपि स्थले।

बुवाई के चार, पाँच या छह दिनों बाद उस क्षेत्र में आढ़कादि के बीज अङ्कुरित होते दिखाई देने लगते हैं। शास्त्रियों ने यह अङ्कुरण भूमि की सार-योग्यतावश ही माना है, उपजाने वाले का अनुभव और किसी देश विशेष की भूमि के गुणावगुण पर भी उपज का बैठना निर्भर करता है। इसी आधार पर उपज जोती गई भूमि और अन्य समतल भूमि पर होती है।

सस्यानुसारे संज्ञामाह —

व्रीहि क्षेत्रं तु भूलोके जलभूमिरितीरितम्॥ ५३८॥
माषादिक्षेत्रभूमिस्तु तारभूमिरिति स्मृता।

उपज के अनुसार भूमि के नाम जाने। जिस क्षेत्र पर व्रीहि की उपज होती है उसे 'जलभूमि' कहा जाता है। जहाँ पर उड़द आदि दालों की पैदावार होती है, उसे 'तारभूमि' (पहाड़ी भूमि) नाम से जाने।

भार्गवमतविचारः —

तस्मादाढकमाषादिकृषिकर्म कृषीवलैः॥ ५३९॥
तारक्षेत्रेषु कर्तव्यमिति प्रोवाच भार्गवः।

क्षेत्र के अनुसार ही इन अनाजों की खेती की जानी चाहिए। किसानों को अरहर, उड़द आदि दालों की खेती के लिए तारक्षेत्र का ही चयन करना चाहिए, ऐसा भार्गव मुनि का कथन है।

आह काश्यप —

शिष्टाचारक्रमवशात् सौकर्याद्वा तलस्थितेः॥ ५४०॥
व्रीहिक्षेत्रेषु माषादिबीजावापः क्वचित्स्थले।

फलप्रदश्चनिर्दिष्टः शास्त्रेऽस्मिन्नपि काश्यपे॥ ५४१॥

यहाँ पर काश्यप मुनि का कथन है कि विशेष प्रकार से तलस्थल, चावल के क्षेत्र में भी दालों की बुवाई सफलतापूर्वक की जा सकती है। यह कृषिविदों के अनुभव और उक्त क्षेत्र की अवस्था (गुणवत्ता, उर्वरानुर्वरादि) पर निर्भर करता है।

यथादेशाचारवशात् स्थलकालवशात्तु वा।
जलभूमिक्षेत्रभागे तारभूक्षेत्रकेऽपि वा॥ ५४२॥

इसी प्रकार प्रादेशिक लोकाचारों, उस प्रदेश की भूमि की दशा, समय या जलवायु के साथ ही जलभूमि या तारभूमि की स्थिति पर भी उसकी निर्भरता रहती है।

कृष्टे च वपनकार्यमाह —

सीरकृष्टे यथाकालं प्रायः समतले तथा।
बृहदाढकबीजानि माषबीजानि वा तथा॥ ५४३॥
मुद्गबीजानि चणकतिलगोधूमबीजकम्।
कुलुत्थबीजानि तथा कीरबीजं च कोद्रवम्॥ ५४४॥
बीजानि यवराणां च मरीचीबीजकान्यपि।
तूलैरंढकबीजानि जीरकाणां च बीजकम्॥ ५४५॥
बीजानि सर्षपादीनां तारक्षेत्रस्थलेषु वा।
वापयेयुर्य(र्थ?)थाकालं पङ्क्तिशः पङ्क्तिशः क्रमात्॥ ५४६॥

उक्त सभी स्थितियों पर विचार करें और बुवाई के लिए यथा समय भूमि को जोतें, समतल करें। धोरियाँ या पङ्क्तिवार ही बीजों को डालें। उपयुक्त समय देखकर तार-क्षेत्र में मुख्य रूप से बृहद् आढ़क के बीज, उड़द, मूँग, चना, तिल, गेहूँ, कुलुत्थ, कीर (कौरमाणी या अजवायन), कोद्रव या कोंदो, जौ, कालीमिर्च, तूल या कपास, एरण्ड, जीरा, सरसों के अच्छे गुणवत्ता वाले बीजों की बुवाई एक-एक पंक्तिवार करनी चाहिए।

सीताश्रेणीषु वा नानारेखाश्रेणीषु वा पुनः।
जलसिक्तानिबीजानि कानिचित्कृषिकोविदाः॥ ५४७॥
असिक्तां च जले तद्वत् कांश्च सदबीजकावलिम्।
वापयेयुर्यथाकालं स्वदेशाचारवैभवात्॥ ५४८॥

दक्ष किसानों को चाहिए कि वे कुछ भीगे बीजों को हाँकी गई भूमि पर और

कुछ को धोरियाँ या पङ्क्तिवार की गई भूमि पर बोयें। सूखी और जलीय बीजावली की बुवाई करें। इसी प्रकार अपने क्षेत्र की परंपराओं के अनुसार कुछ जल में भीगोये गए बीजों को भी लगाएँ।

तृणादीनां कर्तनमाह —

उप्त(ा)नामेव भूभागे द्विविधे तत्र-तत्र तु।
बीजानामङ्कुरोत्पत्तिमालोक्य कृषिकारिणः॥ ५४९॥
एकमासेन वा किञ्चिन्न्यूनाधिक्य क्रमान्विते।
काले तले तु सर्वत्र प्रचुराणि तृणानिहि॥ ५५०॥

बुवाई के साथ ही सस्य क्षेत्र पर यह भी ध्यान रखें कि विस्तृत क्षेत्र में बीजों के साथ ही अनबोये अङ्कुरण भी होते दिखाई देते हैं। एक माह या उससे कुछ समय अधिक होते ही उस क्षेत्र में सर्वत्र प्रचुर घास खड़ी दिखाई देने लगती है।

कृपीवलास्तानि वीक्ष्य करशङ्कुलकादिभिः।
छित्वा भित्वा समूलं च बहिरुद्धृत्य तत्स्थलात्॥ ५५१॥
तृणादीनि ततस्तत्र जलसेचनमाचरेत्।

किसान को चाहिए कि ज्योंहि कृषिक्षेत्र फसल के साथ चारा, घास आदि खरपतवार दिखाई दें, उन्हें नष्ट करने का उपक्रम करें। किसान हाथों में दरान्ती, सँगिया लेकर खतपतवारों की निराई, गुड़ाई करें और जड़ों सहित उन्हें दूर ले जाकर डाल दें। इसके बाद उस भूमि पर सिंचाई करनी चाहिए।

वापनान्तरं कर्तव्यमाह —

बीजावापनान्तरं तु चाढकादिस्थले भुवि॥ ५५२॥
वृष्ट्याधिक्यं यदि तदा बीजनाशो भवेद्ध्रुवम्।
अतः स्वल्पं जलकणावलि सेचनमुत्तमम्॥ ५५३॥
कुल्यानीरेण वा चैतत् कल्प्यमाहुर्मुनीश्वराः।

यदि खेत में अरहर आदि के बीजों को डालते ही अतिवृष्टि हो जाए तो निश्चित ही बीजों का विनाश जानना चाहिए। इसलिए खेत में कम ही जल दिया जाना उत्तम माना गया है। मुनीश्वरों का कथन है कि खेतों में नालियों या धोरों से ही सिंचाई अथवा रेलनी करना श्रेयस्कर है।

तिल-गोधूम-चणक-माषा-मुद्गा-ढकावलेः॥ ५५४॥

बीजानां नाशजनके सन्निरस्ते तृणादिके।
तदा शाखोपशाखानां अङ्कुरादङ्कुरान्तरम्॥ ५५५॥

तिल, गेहूँ, चना, उड़द, मूँग, अरहर आदि के बीजारोपण के साथ ही उग आया चारा, खरपतवार बीजवार को नुकसान पहुँचाता है अतः किसानों को चाहिए कि उन्हें भली प्रकार हटा दिया जाना चाहिए। इसी से अङ्कुरण के बाद शाखाओं, उपशाखाओं का पल्लवन आरंभ होता है।

मूले पुष्कलसारं च कलयेत् कलमादिवत्।
अतस्तृणानां कन्दानां शत्रूणां निवहे हते॥ ५५६॥
मापादिदण्डशाखादिवर्द्धनं किल निश्चितम्।
तदानी(नि?)मेव शोभादिः पुष्पादिश्च मनोहरः॥ ५५७॥

कलम की पौधपौषण विधि की भाँति ही पौधों को उनके मूल में खाद दिया जाना चाहिए, खाद मिट्टी में मिलाकर जड़ों के पास ही दें। तृणों, कन्दों के इस प्रकार के शत्रुओं को हटा दिए जाने के बाद उड़द आदि पौधों की शाखाएँ अच्छी प्रकार से बढ़ने लगती है और इसी से उन इच्छित पौधों की सुंदरता और पुष्पों की मनोरमता दिखाई देती है।

पुष्पोद्भवानन्तरं तु कणिशानां च सन्ततिः।
कपिशेष्वाढकादीनामुत्पत्तिश्च विलोकिता॥ ५५८॥

पौधों पर फूलों की उत्पत्ति के बाद ही फलियाँ, बीजकोश दिखाई देने लगते हैं और जब वे भूरे पड़ने लगते हैं तब अरहर आदि की उत्पत्ति या निर्माण आरम्भ होता है।

मासत्रयेण कालेन क्वचित्तदधिकेन वा।
माषाढकादिचणक गोधूमोत्पत्तिरीरिता॥ ५५९॥

उड़द, तुअर, चना, गेहूँ और अन्य दूसरी दालें तीन माह में अथवा उससे कुछ अधिक समय में पकने लग जाती है।

मूलस्थले तु सलिलसेकवैभवतो भुवि।
अन्तःसारो भवेत्येव कपिशानामितीरितः॥ ५६०॥

ऐसा दिखाई देने पर कि जब बीजकोश या फलियों में रस कठोर होने को हो तब किसानों को चाहिए कि एक पान अथवा एक बार पुनः सिंचाई करें। इससे उपज अच्छी होती है।

देवयोगेनस्मरेत —

एवं माषाढकं तिलप्रादुर्भावस्तु भूतले।
सर्वत्र दैवयोगेन निर्मितः शास्त्रदर्शितः॥ ५६१॥

शास्त्र इस बात की पुष्टि करते हैं कि देवयोग से उड़द, तुअर और तिल की पैदावार इस पृथ्वी पर सर्वत्र होती है।

अन्तसारे घनीभूते माषादिश्रेणिका क्रमात्।
फलाय दृष्टः(ष्टा) सर्वत्र पङ्क्तिश कणिशाञ्चले॥ ५६२॥

जब फलियों में रस घनाकार या कठोर होने लगता है तब उड़द आदि पौधों की प्रत्येक कतार फलियों से लकदक दिखाई देने लगती हैं।

तदा पत्रादिपतनं जीर्णता पतनं तथा।
शिरस्तलानां नमनं निर्दिष्टं कृषिकोविदैः॥ ५६३॥

कृषि विशेषज्ञों का मत है कि किसान सदैव फसल का ध्यान रखें। पौधों की पत्तियाँ यदि गिरती हो तो उन्हें देखें कि वे किस कारण से गिर रही है— पुरानी होकर या किसी बीमारी के कारण? पत्तियों का गिरना पौधे के पतन का कारण बन सकता है।

कालानुरूपसेचनमाह —

कालानुगुणमेवं तु जलसेचनमाचरेत्।
तिलानामपि गोधूमराशीनां तारभूमिके॥ ५६४॥

इसी प्रकार तारभूमि पर खड़ी तिलहन, गेहूँ आदि की फसल में उचित विकास के लिए कालक्रमबद्ध सिंचाई की जानी चाहिए।

जात्याधारे सस्यौपजविचारः —

कणिशादिप्रवेशश्च कालभेदेश्च निश्चितः।
जातिभेदोरूपभेदः कृषिभेदस्तथा क्वचित्॥ ५६५॥
विज्ञेयः स्थलभेदेन कृषियोग्या तदर्हका।

बालियों अथवा बीजकोशों में कणों का बनना कालभेदानुसार ही निश्चित किया गया है। यह मुख्यतः किसी बीज की प्रजाति, रूप और कुछ स्थानों पर कृषि करने के तरीकों के भेद के आधार पर निर्भर करता है। किसान को चाहिए कि वह कोई पैदावार किसी भूमि के लिए उपयुक्त है अथवा नहीं, इस पर विचार करें और सस्यभूमि की परिस्थितियों के अनुसार ही उपज के लिए प्रयत्न करें।

कर्तनंरक्षणञ्च —

आढकादिघनीभूते कणिशानां गणे तथा॥ ५६६ ॥
सुपक्के क्षेत्रभागेषु तत्क्रन्तनमुदीरितम्।
भृत्यैर्वीरे रक्षकैश्च फलकाले तु रक्षणम्॥ ५६७ ॥
महाफलाय भवति धान्यादि वदिहोदितम्।

जब किसी खेत में अरहर आदि के दाने कठोर प्रतीत होने लगें, उन्हें पका हुआ जानकर कटाई कार्य आरम्भ किया जाना चाहिए। भृत्यों, सेवकों को नियुक्त कर यह निर्देश देना चाहिए कि वे पकने जा रही फसल की सुरक्षा करें। यह धान्य के क्षेत्र में विशेष ध्यातव्य है ताकि वहाँ से भरपूर पैदावार हो सके।

छिन्नानां त्रुटितानां च कणिशानां खलस्थले॥ ५६८ ॥
दण्डाद्यैर्मदनं प्रोक्तमातपे शोषणं तथा।

जब फसल को काटकर खलिहान में डाल दिया गया हो, बालियों को बराबर धूप देकर सूखाएँ और दण्ड से कूटें (यह भी अर्थ है कि जब फसल काटकर धान्य अलग कर लिया हो तब उसे खलिहान में डालकर धूप में सूखाएँ और फिर दण्डादि से कूटाई करें, जैसा कि परम्परित विधियों से होता आया है)।

तृणादीनां संग्रहणनिर्देशः —

आढकादीदण्डकाण्डादीन् वृषाश्वादिचतुष्पदाम्॥ ५६९ ॥
भक्षणार्थमिहादिष्टान् रक्षयुश्च कृषीवलाः।
पुञ्जीकृत्य खलस्थाने स्वगृ(ग्र?)हेस्वोचितस्थले॥ ५७० ॥

मसूर, अरहर, उड़द आदि दालों के तिनके-पत्ते बैल, घोड़ों आदि चौपायों के आहार के लिए रखना चाहिए। किसानों को चाहिए कि वे इन पौधों से प्राप्त चारा का संग्रहण करें। अपने घर, खलिहानों अथवा अन्य उचित स्थलों पर पशुधन के निमित्त घास-पूस को एकत्रित कर रखें।

गोष्ठचत्वरभागेषु चाथवा स्थलयोग्यकम्।
आढकीदण्डकाण्डादिरक्षणं च सुखप्रदम्॥ ५७१ ॥

गाय आदि पशुओं को बाँधने का स्थान, चबूतरा या अन्य किसी उपयुक्त स्थान पर अरहर के पूस (या खूखला, खास्ये) को सुरक्षित रखना सुखद होता है।

व्रीहिदण्डपलालादीन् आढकीदण्डकाण्डकान्।
माप-गोधूम-चणकपत्र-दण्डादिकानपि ॥ ५७२ ॥

चतुष्पाज्जीवदान् पुष्टिप्रदानपि च सर्वथा।
सर्वर्तुष्वपि पश्वादेरारोग्य सुखप्रदायकः(! दायकान्)॥ ५७३ ॥
पुञ्जीकुर्याच्च रक्षेच्च कार्यज्ञस्तु कृषीवलः।

किसानों को पशुधन के प्रति सदैव चिंतित रहकर चावल की घास के पूलों, अरहर आदि के दण्ठलों का खूखला, उड़द, गेहूँ, चनों के पत्तों और पौधों को बचाकर रखना चाहिए। यह घास-पूस सभी ऋतुओं में चौपायों को आरोग्य, पुष्टि और सुख प्रदान करने वाली कही गई है।

सस्याग्रकणस्यपृथक्कान्[1] तु कृषीवलः॥ ५७४॥
शूर्पादिविन्यासयोगात् वातवीजनतोऽपि वा।
पेचनाच्चामनाद्वापि निर्मलीकृतरूपकान्॥ ५७५ ॥
गोधूमतिलमाषादीन् आढकीसर्षपादिकान्।
कीरान् मुद्रानथान्यांश्च पुञ्जीकुर्यात्खलस्थले॥ ५७६ ॥

किसानों को चाहिए कि खेती से जो धान्यादि प्राप्त हुआ है, उसे सूख-जाने के बाद कूटाई कर तृण और दानों को अलग-अलग करें। इसके लिए उन्हें सूप में भरें और जब हवा चलती हो अथवा वाजिनों या पँखों की सहायता लेते हुए नीचे गिराकर तृणों को उड़ाते हुए अलग करें। इस प्रकार से पृथक्करण उड़द, गेहूँ, तिल, अरहर, सरसों, मूँग सहित अन्य उपज का किया जा सकता है। जो तृणादि पृथक् हुए हैं और जो कण बाहर निकले हों, उनको पृथक्-पृथक जमा कर दें।

तथा चान्य कर्तव्यमाह —

स्वग्रहं चानयेदेतान् आतपे शोषितान् तथा।
निर्मलीकृतदेहांश्च चणकाढकमुद्गकान्॥ ५७७ ॥

इसी प्रकार चना, अरहर, मूँग आदि को धूप में सूखाकर, पूर्णतः साफकर अपने घर लाना चाहिए।

व्यञ्जनाय तथा सज्जान् भाण्डेषु च पृथक्पृथक्।
स्थापयेद्रक्षयेत् काले सुखसिद्ध्यै कृषीवलः॥ ५७८ ॥

किसानों को चाहिए कि अनाज को पृथक-पृथक पात्रों, कोठों में भरकर संगृहीत करें ताकि विभिन्न आहार, व्यंजनों के निर्माण के लिए उनका यथेष्ट उपयोग कर सुख की सिद्धि हो सके।

---

१. 'क्षुद्रग्रामकटुग्रेवविहीनान्' इति प्रकाशित पाठे।

अन्यदपि —

धान्यादीनाढकादींश्च मरीच्यादीन् भुवः स्थले।
देशाचारवशादेवं युक्त्या च कृषिकोविदाः॥ ५७९॥

धान्य, अरहर-तुअर और कालीमिर्च का उत्पादन कोई किसान क्षेत्रीय विशेषताओं और व्यक्तिगत अनुभव व दक्षताओं को ध्यान में रखते हुए ही करता है।

तत्तज्जातिस्वरूपानुगुणं च स्थलयोग्यकम्।
कालानुगुणमन्यांश्च कृषिलभ्यान् विशेषतः॥ ५८०॥

किन्तु कृषकों को यह भी चाहिए कि वे अन्य फसलों को भी उपजाने का प्रयास करें जो कि उक्त सस्य क्षेत्र की गुणधर्मिता, जलवायु और उपज की दृष्टि से उचित बैठती हो।

संपादयेयुः ग्रामेषु पुरेषु नगरेष्वपि।
तदन्तिकस्थले क्षेत्रभागेषु विविधेष्वपि॥ ५८१॥
कृष्यादानं तु नियमात् महाफलमुदीरितम्।

उक्त उपज किसी भी ग्राम, पुर, नगर अथवा उससे जुड़ी अन्य भूमि पर ली जा सकती है किन्तु इस कृषकीय प्रसङ्ग में उचित नियमों को सदैव ध्यान में रखना चाहिए क्योंकि वे यथेष्ठ नियमानुसार होने पर ही महाफलदायी हो सकती हैं।

जलभूमौ तथा तारभूमौ वा कृषियोग्यकाः॥ ५८२॥
प्रतिदेशं प्रतिग्रामं कोद्रवं यवरं तथा।
यवं च वर्द्धयेत्काले तद्धान्यमपि पुष्टिदम्॥ ५८३॥

प्रत्येक ग्राम में जो भी जलभूमि अथवा सेजा, तारभूमि अथवा ऊँचाई वाली भूमि और अन्य जो भी कृषियोग्य भूमि हो, उसका दक्ष किसानों द्वारा मुआयना करना चाहिए। उच्च किन्तु नम भूमि पर उचित समयानुसार ही जौ, बाजरा, यवर (ज्वार) की बुवाई करनी चाहिए। यवादि उपज हर क्षेत्र में और हर ग्राम के लिए पुष्टि प्रदान करने वाले हैं।

तत्काण्डदण्डः पश्वादिजीवानां जीवनप्रदः।
अतः सर्वेषु देशेषु कोद्रवं यवरं वरम्॥ ५८४॥

पूरे प्रदेश में जौ, ज्वार और बाजरा उपजाना चाहिए क्योंकि इनके डण्ठल और तना पशुओं और अन्य जीवों के लिए जीवन प्रदायक माने गए हैं।

अगस्त्यमिक्षुदण्डमाह —

पुष्टिप्रदं महासारं वर्द्धयित्वा विशेषतः।
अगस्त्यमिक्षुदण्डांश्च स्थलयोग्यं च वर्द्धयेत्॥ ५८५॥

उक्त धान्य विशेषतः पुष्टिकारक, महासारवान् हैं, इनकी खेती कर कोई भी अगस्त्य और गन्ना की भूमि की अनकूलता के अनुसार उपज ले सकता है।

महाफलप्रदं चेक्षुकृषिकर्म प्रशस्यते।
गजानां परमाधारं शर्करागुडकारणम्॥ ५८६॥

गन्ने की खेती बहुत प्रशस्त मानी गई है। यह हाथियों के लिए परम आधार है और शक्कर तथा गुण निर्माण की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

इक्षुदण्डं दृढं कालवर्द्धनम् जलभूमिषु।
अथवा तारभूभागे क्वचित्क्षेत्रे विशेषतः॥ ५८७॥
दीर्घावटश्रेणिकं तु कृत्वा तत्र निखातयेत्।

जलीय भूमि और अन्य कुछ समतल स्थानों पर गन्ने का मजबूत डण्ठल ऊगने में काफी समय लेता है तथापि ऐसे स्थानों पर दीर्घ श्रेणियाँ खोदनी चाहिए।

अन्यदपि —

कदलीनां च सर्वत्र पुण्ड्रेक्षूणामिह क्षितौ॥ ५८८॥
न बीजकलनं दृष्टं प्रत्यक्षं वापि शास्त्रतः।

कदली और पुण्ड्रेक्षु या लाल गन्ना जिसके कि बीज को बुवाई के बाद भूमि पर बहुत फैलने वाला कहा गया है, न तो देखा गया है और न ही शास्त्रों में प्रस्तावित किया गया है।

शरत्काले तथान्यत्र समये देशचोदिते॥ ५८९॥
कृषीवलैरिक्षुदण्डस्थापनं चावटस्थले।
स्थापनं सलिलासेकपूरणं च क्रमादितम्॥ ५९०॥

शरद काल तथा अन्य क्षेत्र में उचित समय देखकर किसानों को चाहिए कि वे गन्ने की बीजवार या गण्डेरियों को बोना चाहिए जैसा कि कुछ क्षेत्रों के लिए निर्देशित किया गया है। रोपण के बाद उन्हें भली प्रकार सिंचना चाहिए। उनकी रोपाई का यही एक तरीका बताया गया है।

गते दशदिने १० काले तन्मूलादङ्कुरोद्भवः।
इक्षुदण्डाङ्कुरवशात्दलादीनामथोद्गमः॥ ५९१॥

रोपाई के दस दिनों बाद उनकी जड़ों से अङ्कुरण होना आरम्भ हो जाता है। इसके बाद उनके तनों से पत्तियों का निकलना भी शुरू होता है।

मासद्वयेन[२] वा मासत्रयेण[३] क्वचित्स्थले।
सम्पूर्णदलवृद्धिस्तु निश्चिता फलदायिनी॥ ५९२॥

इसके दो या कहीं-कहीं पर तीन माह बाद सम्पूर्ण दल वृद्धि को प्राप्त हो जाते हैं और निश्चित ही फल देने वाले होते हैं।

पुरुषाकृतिकौन्नत्यमधिकोन्नतिरेव वा।
इक्षुदण्डावलीवृद्धिं ज्ञात्वा कृषिविचक्षणः॥ ५९३॥
तन्मूले चावटे भागे नित्यं सलिल सेचनम्।
कल्पयेद्यत्नतः काले रक्षयेच्च विशेषतः॥ ५९४॥

कृषिकर्ताओं का निर्देश है कि जब गन्ने की फसल पुरुष की ऊँचाई के बराबर हो जाएँ या उससे भी अधिक हो जाए, उनके गड्ढों या पङ्क्तियों में नियमित जल सेचन की व्यवस्था करें और इस समय दक्षतापूर्वक उनकी विशेष रक्षा का प्रयत्न करें।

वातादिभिस्तथा चैषामिक्षूणां रक्षणं परम्।
एवं प्रकारः कथितः कदलीनामिह क्षितौ॥ ५९५॥

गन्ने की फसल की खास तौर पर तेज हवा, अंधड़ आदि से रक्षा करनी चाहिए। इसी प्रकार की रक्षा का निर्देश केले की फसल के लिए भी दिया गया है।

कदली फलदा शश्वत्तज्जातिर्विविधा मता।
देशाचारवशात्कालयोगाच्च कृषिकोविदाः॥ ५९६॥
कदलीमिक्षुकाण्डं च सर्वर्तुष्वपि वर्द्धयेत्।
सततं फलदं प्रोक्तमेतत्सर्वत्र देशके॥ ५९७॥

केले की फसल सदैव लाभकारी मानी गई है। इसकी कई प्रजातियाँ, किस्मे होती हैं। कृषिविशेषज्ञों को चाहिए कि वे देशीय परंपराओं, योगों के अनुसार केले और गन्ने का उत्पादन करें। केले और गन्ने का उत्पादन सदैव सर्वत्र ही लाभदायक होता है।

क्वचित्पर्वतसानौ वा गिरिमूर्धनि वा क्वचित्।
कठिनस्थलके भूमिसारं ज्ञात्वा विचक्षणः॥ ५९८॥
कदलीमिक्षुकाण्डं च वर्द्धयेत्सुखसिद्धये।
सततं फलदं प्रोक्तमेतत्सर्वत्र भू(भु)मिषु॥ ५९९॥

न तूषरस्थले भूमिदोषदुष्टे तु वर्द्धयेत्।

कभी पर्वतों की चोटियों पर, गिरि शृङ्खलाओं और दुर्लभ अवस्थाओं के कारण कठोर भूमि से लेकर समतल भूमि पर भी विचक्षण जनों को केला और गन्ने का उत्पादन करने का प्रयास करना चाहिए। ये हमेशा और हर स्थान पर लाभकारी हैं किन्तु उसर और अन्य दूषित भूमि पर नहीं उगाना चाहिए। इस प्रकार चतुर किसानों को सर्व माङ्गल्य के लिए भूमि पर दुरुस्ती को देखते हुए उसमें गन्ना और केले का उत्पादन करना चाहिए।

अतः सल्लक्षणोपेते भूभागे तु विचक्षणः॥ ६००॥
सूपप्रधानान् चणकाढकमुद्गादिमान्क्वचित्।
वर्द्धयेद्रक्षयेत्तत्र फलितान् स्वगृहं नयेत्॥ ६०१॥

कोरमा या छिलका देने वाली उपज के रूप में चना, अरहर, मूँगादि की पैदावार की जानी चाहिए क्योंकि ये भोजन को पुष्टि देते हैं। इनमें अच्छी गुणवत्ता हो और जहाँ पर इनको उगाया जाए, वहाँ से जो कुछ भी प्राप्त हो, उसे अवश्य संगृहीत कर स्वगृह लाना चाहिए।

अधुना कार्पासादीनां —

पिचुवृक्षं तूलवृक्षं तथा तच्छ्रेणिकामपि।
कार्पासवस्त्रसिद्ध्यर्थं तारभूमौ क्वचित्स्थले॥ ६०२॥
तथोष्णस्थलके चैव वर्द्धयेत्तु(स्तु?) कृषीवलः।

किसानों को यह भी चाहिए कि वे नानणवणी (पिचुवृक्ष) तथा कपास की श्रृङ्खलाओं को भी लगाएँ ताकि उनसे वस्त्र-परिधान का प्रयोजन सिद्ध हो। इन्हें तारभूमि अथवा पहाड़ी और कभी-कभी गर्म प्रदेशों में भी लगाएँ।

पारम्पर्योपदेशापयोगमाह —

यत्सुखप्रदमादिष्टं पारम्पर्योपदेशतः॥ ६०३॥
साक्षाद्वीक्षणतो वापि तत्सर्वं वर्द्धयेत्कृती।
खलभूमितटे वापि ग्रामान्ते ग्रामसीमनि॥ ६०४॥
आक्रीडान्तः स्थले वापि स्थले समुचिते तथा।
जलाशयतटप्रान्ते चोत्तुङ्गे ग्रामवास्तुके॥ ६०५॥

लोक में सुख प्रदान करने वाली विभिन्न कृषि परम्पराएँ प्रचलित हैं। कई

विधियाँ परीक्षण से भी जानी गई है। ये सभी उपज को बढ़ाने वाली होती है। इसलिए एक किसान को खलिहान के निकट, ग्रामान्त या ग्राम की सीमा पर, क्रीड़ा अथवा बाड़ियों, विहार स्थलों के निकट, जलाशय के पास और ग्राम की मगरियों या पहाड़ी स्थल पर (कपास आदि की) कृषि करने का प्रयास अवश्य करना चाहिए।

कार्पासवृक्षवृद्धिश्च तथान्यद्वर्धनं क्रमात्।
शस्तमित्येवमादिष्टं शास्त्रज्ञैर्मुनिपुङ्गवै॥ ६०६॥

इस कृषिविज्ञान के कथनकर्ता मुनिराजों का अनुभवाधारित उपदेश है कि कपास या वैसे ही अन्य पौधों, वणियों को सही क्रम में रोपित किया जाना वृद्धिकारक होता है।

इति काश्यपीयकृषिसूक्तौ आढकादिविविधद्रव्यप्राप्त्यर्थं
कृषिक्रमादिवर्णन नाम चतुर्दश कथनम्॥ १४॥

इस प्रकार काश्यप मुनि विरचित काश्यपीय कृषि सूक्ति ग्रन्थ के अन्तर्गत आढकादि विविध द्रव्यों की प्राप्ति के लिए कृषि क्रमादि वर्णन नामक चौदहवां भाग पूर्ण हुआ॥ १४॥

इति धान्यादिकृपिक्रमकथनं नाम प्रथमो भाग: ॥ १ ॥
धान्यादि कृषि क्रम कथन नामक प्रथम भाग पूर्ण हुआ॥ १ ॥

*****

अथ द्वितीय भागः

॥ शाकादिकृषिक्रमकथनम्॥

काश्यप उपदिशति —

कृषिकार्यक्रमविदो सर्वत्र भूमिषु।
सल्लक्षणैर्भासुरासु नृपाज्ञावर्तिनः सदा॥ १॥

काश्यपमुनि आगे कहते हैं कि वे लोग जो कि भूमि के अनुसार कृषि कार्यक्रम या सस्यक्रियाज्ञान के जानकार हैं, वे राज्याज्ञाओं का पालन करते हैं, हमेशा सुखी, समृद्ध देखे गए हैं।

शालिक्षेत्रे यथाकालं शाल्यादीन् कलयेत् क्रमात्।
तारक्षेत्रेषु तद्वच्च चणकादींश्च वर्धयेत्॥ २॥

कृषिविज्ञानियों को काल-क्रमानुसार शालीक्षेत्र या चावलोत्पादक प्रदेशों में चावल आदि की बुवाई करनी चाहिए। इसी प्रकार तारक्षेत्र या पहाड़ी प्रदेशों में चना आदि दालों की खेती करें।

शाकादीनोपयोग: —

एतेन भोजनोपाय: समग्र: परिकल्पित:।
शालितण्डुलवर्गैश्च संभारद्रव्यकैस्तथा॥ ३॥
आढकाद्यैश्च तत्पूर्ति नैव दृष्टा क्षमातले।
अत: शाकादिकान् स्वादुरसान् तत्र विवर्धयेत्॥ ४॥

भोजनोपाय के रूप में उक्त दालें और चावल की नाना किस्में मानी गई हैं। ये पूरक सामग्री उपलब्ध करवाते हैं और संयुक्त रूप से इच्छित आहार बनते हैं। इसके बावजूद यह देखा गया है कि ये सन्तुष्टिकारक पूर्णाहार की पूर्ति करने में पर्याप्त नहीं है इसलिए किसानों को चाहिएं कि वें स्वाद और रस को बढ़ाने में सहायक सब्जियों का उत्पादन भी करें।

नाना शाकादीनामाह —

जटिकान् राशिजटिकान् वल्लिका वनवल्लिका:।
पटोलिकांश्च वार्ताकान् षवकांश्च तथैव च॥ ५॥
शाकांश्च विविधान् तद्वत् कूष्माण्डांश्च कलाटकान्।
कुस्तुंबुरुन् कलाटांश्च सूरणान् शाकुटांस्तथा॥ ६॥

किसानों को चाहिए कि वे सब्जियों के रूप में जटिका, राशिजटिका, वल्लिका (पानफल या परमल) और उसकी जंगली किस्मों, ककड़ी, बैंगन, षवका और अन्य दूसरी कई प्रकार की तरकारियों जैसे कद्दू, धनिया, सूरण और सिओरा इत्यादि का उत्पादन भी करें।

हरिद्राश्चापि शुण्ठीश्च स्थलवन्यप्रभेदकान्।
स्थली भवांश्च विविधान् रसपूर्णान् कृषीवलान्॥ ७॥

इसी प्रकार हल्दी, सोंठ जिनकी खेती स्थल और वन क्षेत्रों के भेदों के अनुसार पृथक्-पृथक् होती है, के साथ-साथ अन्य बहुत-सी स्वादिष्ट, रसपूर्ण सब्जियाँ भी किसानों को उगानी चाहिए।

कृषिक्र माद्वर्धयेयुः भोज्यकार्यार्थसिद्धये।
एतानि शाकद्रव्याणि मुख्यानीतिमतिर्मम॥ ८॥

सन्तुष्टिकारक भोजन की प्राप्ति के लिए कृषि के जानकार लोगों को चाहिए कि वे उक्त सब्जियाँ अवश्य ही पैदा करें, ऐसा मेरा नीतिगत मत है।

देशानुसारेणसंज्ञाः —

क्वचिद्देशेषु शाकादिः जातिरूपप्रभेदतः।
रसतो वर्णतश्चैव भिन्नः संपरिकीर्तितः॥ ९॥

इन सब्जियों को अलग-अलग देशों में जाति, रूपभेद, रस और वर्ण के आधार पर अलग-अलग नामों से जाना-पहचाना जाता है।

पलाण्डुं वर्धयेत् द्राक्षानलदैलादिवर्धनम्।
कृषीवलैस्तु कर्तव्यं तत्र तत्र स्थलीष्वपि॥ १०॥

किसानों का कर्तव्य है कि वे जहाँ-तहाँ प्याज तथा अङ्गूर की पैदावार भी करें। इनके साथ ही दालचीनी और एला या बड़ी इलायची भी उपयुक्त खेतों में लगाएँ।

तारभूमितले वापि जलभूमितलेऽपि वा।
ऋतुयोग्यं देशयोग्यं पारंपर्यक्र मोद्भवम्॥ ११॥
रीतिं च विज्ञाय बुधः शाकद्रव्यं विवर्धयेत्।

सूखी अथवा नम भूमि पर किसानों को चाहिए कि वे सही ज़लवायु या मौसम और सही क्षेत्र को देखते हुए हरी सब्जियों को उगाएँ। इसके लिए कृषिविज्ञानियों को ऋतु योग्य, देशयोग्य उपज परंपरा को देखना चाहिए और उपजोपयोगी तकनीकों को पहचानना चाहिए।

अत्रैव भोज्यकल्पः —

प्रथमं तण्डुलद्रव्यं सूपद्रव्यं द्वितीयकम्॥ १२॥
शाकद्रव्यं तृतीयं स्यात् कृष्यादान क्रमोद्भवम्।
घृतक्षीरदधिद्रव्यं चतुर्थं च समीरितम्॥ १३॥[१]

भोजन के मुख्य द्रव्यों में चावल की गणना प्रथम स्थान पर होती है, सूप द्रव्य या जिनसे सूपादि बन जाता हों, की गणना द्वितीय स्थान पर की जाती है। शाक-

---

१. 'भक्ष्यभोज्यलेह्यचोष्यमत्र मिति चतुर्विधम्' मिति प्रकारान्तरे विभाजनम्।

तरकारियों की गणना तीसरे स्थान पर होती है जबकि घी, दूध और दही को चौथे स्थान पर माना गया है।

एतच्चतुर्विधं द्रव्यं भोज्यकल्पः प्रकीर्तितः।
सर्वेषामिह देवानामेतत् प्रीतिविवर्धनम्॥ १४॥

इस प्रकार चार प्रकार के भोज्यद्रव्यों की पहचान की गई है। ये सभी देवताओं को प्रिय है और प्रीति को बढ़ाने वाले हैं।

मनुष्याणां तु सर्वेषां जीवनस्थैर्यकारणम्।
पुष्टिदं चारोग्यदं च बुद्ध्यायुर्वर्धनं तथा॥ १५॥

ये सभी मनुष्यों में स्थिर जीवन के कारण बनते हैं और पुष्टि तथा आरोग्य को बढ़ाकर बुद्धि तथा आयु को भी बढ़ाते हैं।

पितामहसृष्टः द्रुमादीनां —

सृष्टिकाले ब्रह्मणा तु सृष्टः सर्वत्र भूमिषु।
अनेन भोजनकल्पेन वसुधा तु सजीवना॥ १६॥

सृष्टि के रचनाकाल में पितामह ब्रह्मा ने पृथ्वीभर के पेड़-पौधों के उत्पादों को विविध प्रकार के भोजन, आहार के रूप में जीवों के लिए कल्पित किया था।

ब्रह्मणः सृष्टिसाफल्यमभवच्च तदादितः।
सर्वेष्वपि देशेषु क्षेत्रेषु विविधेष्विह॥ १७॥
मुनीश्वराणां यमिनां मनुष्याणां च सर्वतः(त्रः?)।
त्रिवर्गफलदश्चायं भोज्यकल्पः प्रकीर्तितः॥ १८॥

ब्रह्मा को सृष्टि की रचना के आदिकाल में ही उनके उद्देश्यों में सफलता प्राप्त हुई थी। सभी प्रजातियों को पितामह ने प्रदेशों, देशों के अनुसार लगाया गया था। इससे प्राप्त भोजन जिसे दैविक इच्छा के अनुरूप बोया गया था, को मुनीश्वरों ने मनुष्यों के लिए धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति का साधन बताया है।

तस्माच्छाकद्रव्यकादि कृषिश्चापि कृषीवलैः।
कल्पनीया विशेषेण ग्रामेषु नगरेष्वपि॥ १९॥

इसी अर्थ से किसानों ने अपना कृषि कर्म किया और शाक-सब्जियों आदि को विशेषकर ग्रामों और नगरों में उगाया था।

वन वनान्तरे वापि सल्लक्षण समन्विते।
जनावासान्तिक स्थाने जलाधारे विशेषतः॥ २०॥

इसी प्रकार वन के साथ ही वनान्तर की उचित लक्षणों वाली भूमि, जनता के रहने के स्थान के पास और विशेषकर जलोपलब्ध भूमि का इस कार्य के लिए चयन किया।

शाकादिकृषिकार्यं च फलदं च विनिश्चितम्।
वसन्तकाले ग्रीष्मे वा हैमन्ते वापि वा क्वचित्॥ २१॥

शाक-सब्जियों की खेती का कार्य निश्चित रूप से फलदायी होता है। ऋतु चाहे वसन्त हो, ग्रीष्म काल हो या फिर हेमन्त ऋतु हो, यह कार्य किया जाना चाहिए।

वार्ताक-वल्ली-जटिक-मरीची-षवकादिभिः।
सीरकृष्टं क्षेत्रतलमञ्चयेदङ्कुरार्थिभिः॥ २२॥

बैंगन, वल्ली, जटिक, मिर्च, षवकादि की खेती के इच्छुक किसानों को चाहिए कि वे जुताई वाले खेतों में उनके बीजों की बुवाई करें।

वार्ताकादीनि बीजानि चातपे शोषितानि तु।
गोशकृत्कादिभिः सारमेदुरे भूतले क्वचित्॥ २३॥

बैंगन इत्यादि के जो बीज धूप में सूखाकर गाय के गोबर इत्यादि में दबाकर संरक्षित किए गए हों, उनका कदाचित उपजाऊ भूमि पर प्रयोग करें।

अङ्कुरार्थं विन्यसेयुः जलसेकं च कोविदाः।
यथाक्रमं कारयेयुः पलालाच्छादनं ततः॥ २४॥

अच्छे अंकुरण के लिए के लिए धान्य के बीजों की बुवाई के समय खेत में कृषिविदों ने सिंचाई आवश्यक बताई है। यथावसर उन पर पूस से आच्छादन करना भी बताया है।

एवं दिनत्रये, काले गलिते त्वङ्कुरस्थले।
अङ्कुराणां दर्शनं तु क्रियते विधिना किल॥ २५॥

इससे तीन दिनों की अवधि में बीज गलकर अंकुरित होते हैं। अंकुरण दिखाई देने पर कृषि की उचित विधियों का प्रयोग करना चाहिए।

दिनविंशतिके२० काले दृढमङ्कुरजालकम्।
सीरकृष्टे स्थले योग्यं चोत्खात्वा स्थापयेत् बुधः॥ २६॥
तदानीमेव मूले तु जलसेकस्तु जीवदः।

बीस दिनों के अन्तराल पर जबकि धान्य के अंकुर पूरी तरह जालीदार हो

जाते हैं, चतुर किसानों को उनको उचित खेत में पुनः रोपण का कार्य करना चाहिए और उनकी जड़ों में पानी देकर जीवनदान का प्रयास करना चाहिए।

आलवालक्रम स्थाने वार्ताकादींस्तु वर्धयेत्॥ २७॥
पटोलिकां वल्लिकां च लतारूपप्रवर्धिनीम्।
वर्धयेद्वल्लिकावृद्ध्यै कायमानस्वरूपके॥ २८॥

जल वाले आलवाल या थालों पर विसर्पणतः क्रमिक रूप से लगाए गए बैंगन वृद्धि को प्राप्त होते हैं। पटोलिका, वल्लिका लता के रूप में अभिवृद्धि करते हैं। बढ़ती हुई वल्लिका कायमान स्वरूप में अभिवृद्धि पाती है।

ग्रीष्मकाले जलक्षेत्रे वर्षाकालं विना बुधः।
कालान्तरेष्वपि तथा शाकद्रव्यकृषिः शुभा॥ २९॥

बुद्धिमानों को चाहिए कि वे उक्त प्रकार की शाक-सब्जियों को जल या आर्द्र क्षेत्र और यहाँ तक कि ग्रीष्मऋतु के दौरान भी वर्षा पर निर्भर रहे बिना उपजाने का प्रयास करें।

कन्दादीनामावाले करोति —

शाकुटानां तु कन्द च सूरणानां च कन्दकम्।
हरिद्राकन्दकं चैवमावाले वा प्रकल्पयेत॥ ३०॥

शाकुटा, सूरन और हल्दी जैसी कन्द वाली शाक-भाजियों को छिछली भूमि पर या आलवाल के चारों ओर लगाया जाना चाहिए।

स्थले वा चोष्णभूम्यास्तु कृषिकर्मफलप्रदम्।
इत्थं लतारूपकाणां कृषिश्च विविधा मता॥ ३१॥

ऊष्ण या सूखी भूमि भी कृषिकर्म में सफलता देने वाली हो सकती है, इस प्रकार की भूमि पर लता, बेलों के विभिन्न वर्गों की खेती की जा सकती है।

कूष्माण्डनागवल्लिकामाह —

कूष्माण्ड वनकूष्माण्डं एलानदलमुख्यकान्।
वर्द्धयेत्तारभूभागे नागवल्लीमपि क्वचित्॥ ३२॥

तारभूमि अथवा उच्चक्षेत्र में कद्दू अथवा कूष्माण्ड, उसकी जङ्गली प्रजाति, इलायची, नदल या जीरा और पान या नागवल्ली की विशेष जातियों की बुवाई की जा सकती है।

कदलीमिक्षुदण्डादीनां —

कदलीमिक्षुदण्डं च नागवल्लीं च पूगिकाम्।
जलक्षेत्रे तथोद्याने चाक्रीडे वर्द्धयेद् बुधः॥ ३३॥

बुद्धिमानों को चाहिए कि वे जलक्षेत्र या आर्द्रभूमि, उद्यान तथा वाटिकाओं-क्रीड़ास्थलों पर केला, गन्ना, नागवल्ली या ताम्बूल और सुपाड़ी को लगाएँ।

रम्भामोचाफलदादीनां —

रम्भां च मोचां फलदां पनसं लिकुचं तथा।
रसालमाम्रञ्च तथा जम्बूमपि च वर्द्धयेत्॥ ३४॥

इसी प्रकार कदली, मोचा (केले का एक प्रकार), पनस, लिकुच, आम, जामुन जैसे फलदायी वृक्षों को भी लगाया जा सकता है।

तारजलभूमिश्च कार्यमाह —

नारिकेल तरुंश्चापि पालयेत्कृषिकर्मवित्।
गृहाणां निष्कुटे वापि चारामे वा क्वचित्स्थले॥ ३५॥
तारभूमिस्थले वापि जलभूमितले क्वचित्।

जो कृषि क्रियाओं को भलीभाँति जानते हों, उन्हें नारियल के पेड़ भी लगाने चाहिए। घरों के समीप, बगीचों और अन्य किसी भी क्षेत्र के साथ ही तार-भूमि अथवा जलीय भूमितल पर भी कदाचित इन्हें लगाया जा सकता है।

द्रुमारोपणकर्तव्यमाह —

यथास्थलप्राप्तिलोके ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा॥ ३६॥
वैश्याश्च शूद्राः सङ्कीर्णजातिजा अपि मानवाः।
व्याधादयश्च वीराश्च यथाशक्ति स्वभूमिके॥ ३७॥

लोक में जहाँ कहीं पर खाली स्थान दिखाई दें, वहाँ पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य सङ्कीर्ण जातियों के लोगों को, शिकारियों, आखेटाश्रित लोगों, वीरवरों को अपनी सामर्थ्य के अनुसार अपनी भूमि पर वृक्षारोपण का कार्य करना अपना कर्तव्य जानें।

शास्त्रनिर्देशध्यातव्यम् —

धान्याकं सूरणं वल्लीं कूष्माण्डं च पटोलिकाम्।
वर्द्धयेत् शास्त्रनिर्दिष्टान् जटिलादीन् यथाक्रमम्॥ ३८॥

धान्याक या धनिया, सूरण, वल्ली, कुम्हड़ा, पटोलिका या ककड़ी (पाढर ?), जटिला जैसी विभिन्न उपज के लिए शास्त्रों में निर्देश किया गया है, उनको ध्यान में रखते हुए किसानों को उपजाने का प्रयास करना चाहिए।

कृष्याद्यकार्यमाह —

प्रथमं भूकर्षणं तु द्वितीयं गोशकृत्कणम्।
तत्र क्षिपेश्च भूसारकलनार्थमिदं विदुः॥ ३९॥

खेती में बुवाई से पूर्व भूमि की सर्वप्रथम जुताई करना चाहिए। दूसरे चरण में गाय के गोबर की खाद को खेतों में बिखेरें। विद्वानों के अनुसार यह भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए आवश्यक कृत्य है।

तत्र क्षेत्रे बहुमुखमालवालप्रकल्पनम्।
आलवालां चलस्थाने वार्ताकादिनिवेशनम्॥ ४०॥

जहाँ उपज ली जानी हो, उस जलीय, छिछली भूमि पर सिंचाई के लिए धोरे या नालियाँ तैयार करें। उनके किनारों पर, आलवाल या खड्डों के पास बैंगन आदि के बीज बोने चाहिए।

मालतीकुन्दचाम्पेयकुटजादिस्थलेष्वपि।
आलवालं बहुमुखं कल्पयेत्स्थल योग्यकम्॥ ४१॥

इसी प्रकार जहाँ पर मालती, कुन्द, चम्पा, कुटज आदि को लगाने का खेत हो, वहाँ पर जल सुविधा के लिए योग्य आलवाल (थाले) और जल नालियाँ बनानी चाहिए।

आलवालाञ्चले बीजस्थापनं वाङ्कुरार्पणम्।
देशाचारवशात्कालयोगादेवं प्रकल्पयेत्॥ ४२॥

आलवाल तैयार करने के बाद उनके किनारों पर बीजों का छिड़काव करना चाहिए अथवा कोमल पौध को रोपें। भूतल पर देशीय परम्पराओं तथा कालक्रम या मौसम को जानकर यह तैयारी करें।

ततो गते मासकाले वार्ताकादेस्तु मूलतः।
तृणादिवैरिसंघस्य निरासश्च प्रकीर्तितः॥ ४३॥

जहाँ पर बैंगन को बोया गया हो, वहाँ पर जड़ों के आसपास खरपतवार पैदा हो जाती है और अन्य जो पौधे के लिए शत्रु के समान होती है, को एक माह बाद उखाड़ने या निराई-गुड़ाई का कार्य करना चाहिए।

अधुना सेचनादि कर्तव्यमाह —

दिनपञ्चक५कालं वा दिनषट्क६मथापि वा।
वार्ताकादेस्तु मूलेषु चालवालमुखात् बुधः॥ ४४॥
जलानां सेचनं कुर्यात् ग्रीष्मकाले विशेषतः।
मुहुर्मुहुस्तोयदानं तृणकोष्ठ निरासकः॥ ४५॥
महाफलाय निर्दिष्टमृषिभिः शास्त्रकोविदैः।

चतुर किसान या बागवान को चाहिए कि वह हर पाँचवें, छठे दिन बैंगन की जड़ों में नालियों की सहायता से सिंचाई करें। विशेषकर यदि सूखा मौसम हो तब सिंचाई करनी चाहिए। इस पौध के आसपास खड़ी खरपतवार को हटाने से उत्तम फल की प्राप्ति होती है, ऐसा शास्त्रज्ञानियों का कथन है।

शाकादीनां निरोगार्थोपायमाह —

शाकादिपत्रजालेषु वार्ताकानां तथा क्वचित्॥ ४६॥
पटोलिकानां वल्लीनां षवकानां तथैव च।
कूष्माण्डानां कलाटानां सूरणानां तथैव च॥ ४७॥
शाकुटानां हरिद्राणामार्द्रकाणामपि क्वचित्।
पत्रजालेषु कीटादिभक्षणं दृश्यते नरैः॥ ४८॥

(सब्जियों में कीटादि लग गए हों तो उपाय के लिए कहा जा रहा है) यदि सब्जियों यथा बैंगन, पटोलिका, वल्ली, षवक, कूष्माण्ड, कलाटा, सूरण, शाकुट, हल्दी, अदरक आदि पर कदाचित् कीटादि भक्षणकर्ता लगे दिखाई देते हों गए हों तो उपाय करना चाहिए।

अतस्तत्कीट दोषादिनिरासार्थं कृषीवलाः।
भस्मधूली क्षेपणं वा सुधासलिलसेचनम्॥ ४९॥
कारयेत् क्रमतः काले देशाचारवशात्तथा।

कीटादि व्याधियों के निवारण के लिए आवश्यक उपायों के तहत किसान को भस्म व धूली को मिलाकर छिड़काव करना चाहिए या फिर अमृतदायी पानी से सिंचाई करनी चाहिए। इसी प्रकार समय पर अपने देश-क्षेत्र में प्रचलित उपयुक्त विधियों का प्रयोग करना चाहिए।

बीजानां स्थापने चापि तृणादिक्षेपणे तथा॥ ५०॥

लतादि पालने चापि पुष्पाविर्भावकालिकम्।
यत्कर्म निश्चितं लोके क्रियते कार्यकोविदैः॥५१॥
स्वयं निरीक्ष्य तत्सर्वं पारम्पर्योपदेशतः।

बीजों की बुवाई के समय घास-खरपतवार की निराई-गुड़ाई करनी चाहिए। लताओं के बढ़ने और पुष्पों के खिलने के काल में उन कार्यों को अवश्य करना चाहिए जिनका लोकांचल में कृषि विशेषज्ञों ने प्रसार किया हो। इन कार्यों को स्वयं अपनी देखरेख में सम्पादित करना चाहिए और वे सभी कार्य करने चाहिए जो परम्परा सम्मत बताए गए हों।

पटोलिकासु वार्ताक कूष्माण्डादिषु भूतले॥५२॥
जम्बीरलिकुचादीनामेलाद्राक्षादिकेष्वपि ।
द्राक्षाखर्जूरिकादीनां कृष्णादिषु सुबुद्धयः॥५३॥
देशाचारं क्रमप्राप्तमृतुयोग्यं कृषिक्रियाम्।
कलयेयुः भोज्यखाद्य स्वाद्यादिसुखहेतवे॥५४॥

खेत में पटोलिका, बैंगन, कूष्माण्डादि की खेती के समय और जम्बीर, लिकुच आदि सहित इलायची, अंगूर, दाख, खर्जूरिका इत्यादि के उत्पादन के समय बुद्धिमान को चाहिए कि वे देशीय विधियों से ऋतु के अनुसार निर्धारित कृषि क्रियाओं का सम्पादन करें। उपचार की विधियों का प्रयोग भोज्य, खाद्य के स्वादादि सुख के लिए किया जाना अपेक्षित है।

तेषु केचित् पत्ररूपाः सुरसाः परिकीर्तिताः।
परे तु पुष्परूपाः स्युरन्ये तु फलरूपिकाः॥५५॥
अन्ये लवकरूपाः स्युरित्तरे कन्दरूपकाः।

इन उत्पादों में कोई पत्र के रूप में स्वादपूर्ण कहे जाते हैं। कोई सब्जी पुष्प रूप में होती है तो कोई फल स्वरूप मिलती है। अन्य लवक या छोटे रूप में चुनी जाती है तो कोई पके हुए कन्द रूप में मिलती है।

पुष्पोदये पुष्पमध्ये पुष्पनाशे तथा क्रमात्॥५६॥
केचित् खाद्याश्च पेयाश्च कदल्यां तु विशेषतः।

इसी प्रकार कोई सब्जी पुष्प के आगमन काल में, कुछ फूल खिलने के बाद तो कुछ फूलों के नष्ट हो जाने पर तैयार होती है। कुछ खाद्य होते है तो कुछ पेय रूप में काम में लिए जाते हैं। केले में विशेष रूप से ये बातें ज्ञातव्य है।

कदलीकन्दकाण्डं च पुष्पं लवकमेव च॥५७॥
फलं च कन्दकं वापि स्वादु रुच्यं च सर्वदा।
भोज्यं निर्दिष्टमेतत्तु मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥५८॥

केले का फल अपने काण्ड और पुष्पीय काल में चुनने योग्य होता है। कई पौधों के फल और कन्द सदा ही रुचिकर और स्वादिष्ट होते हैं, ऐसा मुनियों और तत्वदर्शियों का मत है।

पटोलिकानां लवकं वार्ताकानां तथैव च।
शाकानां षवकानां च बाल्ये स्वादुतरो रसः॥५९॥
अतो लवकमेतेषां प्रशस्तं परिकीर्तितम्।

पटोलिका और बैंगन अपने शैशव काल में ही खाद्य योग्य होते हैं जबकि षवक शाक बाल्यावस्था में ही रसदार होती है और स्वादिष्ट लगती है। अतः इनको लवक स्वरूप में ही खाना प्रशस्त कहा गया है।

पनसानां रसालानां कूष्माण्डानामपि क्वचित्॥६०॥
लवकं मध्यवयसि रसः स्वादुतरा मतः।

पनस, आम और कई बार कूष्माण्ड जैसे फल शैशव काल में अथवा मध्य आयु के दौरान रस और स्वाद वाले होते हैं, ऐसा माना गया है।

इक्षूणां नारिकेलानां लिकुचानां तथैव च॥६१॥
रसालप्रमुखादीनामन्त्ये वयसि भूतले।
तेमनादिक्रि यायोग्यरसस्तत्र निरूपितः॥६२॥

ईख, नारियल और वैसे ही लिकुच और आम जैसे फल पूर्णतः पकने पर या परिपक्व आयु में रसादि की दृष्टि से स्वादिष्ट होते हैं। इन फलों से यथेष्ट विधि से रस ग्रहण किया जाना चाहिए।

एवं स्वदेशाचरणं स्वस्वजातिक्र मादपि।
यदुक्तं पाकशास्त्रेषु कालद्रव्यादियोगतः॥६३॥

इस कार्य के लिए अपने देश में प्रचलित विधियों से इन फलों की अपनी-अपनी जातियों का पाकशास्त्र सम्मत उपयोग समय देखकर विभिन्न द्रव्यों के साथ करना चाहिए।

स्वशरीरस्थपित्तादिगुणदोषवशादपि।
कृषिक्रमविदो लोके पटोलादिकृषिं तथा॥६४॥

अपना शरीर यदि वात-पित्त, कफादि के दोष से ग्रस्त हो तो कृषिकर्म विशारद को लोक में पटोलादि की कृषि को करनी चाहिए।

रक्षयेयुः गृहे क्षेत्रे चाक्रीडे स्वीयभूतले।
केदारेष्वपि वा वापीह्लदादीनां तटेष्वपि॥ ६५॥
जलाशयस्याधस्थात्तु तन्मुखे वा विशेषतः।

इनकी गृह, खेत और अपनी भूमि, सिंचित खेत अथवा बावड़ी, जलस्रोत आदि के तट पर और जलाशय के नीचे या उनके मुख की ओर उपज-निपज लेने का प्रयास करना चाहिए।

अन्यदपि —

कदलीपूगपुंनागनारिकेलाम्रवृक्षकान् ॥ ६६॥
पनसैलाद्राक्षकादीन् मालत्यादीन् विशेषतः।
वर्द्धयेद्वार्ताकवल्लीकूष्माण्डानपि युक्तितः॥ ६७॥

कृषिकर्त्ताओं को सकौशल विशेषतौर पर कदली, पूग या सुपारी, पुन्नाग, नारियल, आम्र, पनस, इलायची, द्राक्षा, मालत्यादि, बैंगन, वल्ली, कुष्माण्ड या कद्दू आदि उगाने का प्रयत्न करना चाहिए।

अन्यदप्याह —

नाना शाकान् तथा पेयान् खाद्यान् चर्व्यानपि क्वचित्।
कृष्यादान क्रमवशात् रक्षयेत् पालयेदपि॥ ६८॥

कृषिकार्यानुसार प्रत्येक को नाना प्रकार की शाक सहित पेय, खाद्य, चव्य सामग्री अर्थात् खाने योग्य शाक, पीने और चूसने की फसलों की सुरक्षा और संधारण करना चाहिए।

कृषिक्रमार्थ नाना कर्तव्यमाह —

देशे-देशे च सर्वत्र वसन्ते ग्रीष्मकेऽपि च।
वर्षाकाले शरत्काले हैमन्ते चापि वा क्वचित्॥ ६९॥
शिशिरेऽपि स्वकीयेषु क्षेत्रेषु विविधेष्वपि।
प्रकृत्वा चालवालादीन् तत्तत्कालानुरूपतः॥ ७०॥

किसानों को अपनी भूमि के सभी खेतों पर प्रत्येक स्थान पर और सभी ऋतुओं जैसे कि वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद और संभवतया सर्दी तथा यहाँ तक कि हेमन्त में भी अपने भूखण्डों पर यथायोग्य तरकारियां उगानी चाहिए। काल की

आवश्यकता को जानकर यथेष्ट रूप से आलवाल, मेड़बंदी के उपाय भी किए जाने चाहिए।

तत्रैव गृह्णीयविचारमाह —

शाकं पत्रं त्वचं पुष्पं कन्दं वा रसमेदुरम्।
आरोग्य पुष्टिजनकं कृष्यादानवशाद्धुवि॥ ७१॥
पालयेयुः कृषिविदः गृह्णीयुः फलमुत्तमम्।

किसानों को यह हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि शाकों में पत्तियाँ, छाल, पुष्प या कंद जो रस से परिपूर्ण हो जाती या पक जाती हैं तब स्वास्थ्य एवं भोजन का पोषण करने वाली समझनी चाहिए। तभी किसानों को कृषि के नियमानुसार उनको गृहण कर लाभ कमाना चाहिए।

एलालवङ्गादिरोपणस्थाननिर्देशमाह —

एलालवङ्गार्द्रकादीन् पूगान् ताम्बूलवल्लिकाः॥ ७२॥
इक्षुकाण्डांश्च कदलीरन्याश्च विविधा लताः।
केदाराञ्चलभागेषु तारभूभागिकेऽपि वा॥ ७३॥

एला या इलायची, लौंग या लवङ्ग, अदरक आदि, पुग या सुपारी, ताम्बूल, गन्ना, केला और अन्य विभिन्न प्रकार की लताओं को अपने खेतों की सीमाओं या पाली पर उगाना चाहिए।

अथौषधादीनां —

जनोपकारकानन्यान् पिप्पलीप्रमुखानपि।
नाना विधाश्चोषधीनां लताश्च प्राणवर्द्धकाः॥ ७४॥
वर्द्धयेयुर्विशेषेण तत्तत्क्षेत्रानुरूपतः।
यथाकालं यथाचारं पूर्वसूर्युपदेशतः॥ ७५॥

पिप्पल आदि ऐसे पौधे जो कि जनोपकार की दृष्टि से लाभकारी होते हैं और औषधीय भी हों तथा जीवनवर्द्धक लताओं को जो कि पूर्वसूरियों अथवा वरिष्ठजनों के परामर्श के अनुसार देश-काल पर विचार करते हुए किसी क्षेत्र की प्रकृति के अनुसार उगाए जाने चाहिए।

अन्यदपि —

कृषिसाध्यं प्राणिवर्गसुखदं यन्निरूपितम्।

शास्त्रेषु मुनिभिः पूर्वैः तत्सर्वं तु कृषीवलाः॥ ७६॥
युक्त्या स्व-स्वक्षेत्रभागे वर्द्धयेयुः प्रयत्नतः।

ऐसी समस्त वैज्ञानिक युक्तियाँ जिनसे कृषि कार्य साधित होता है, को उपयुक्त जानकर प्राणियों के लिए प्रवाहक शक्ति की दृष्टि से कृषकों द्वारा सन्तों की सम्मति से अपने-अपने भूखण्डों में निपुण प्रयासों द्वारा विकसित या प्रायोगीकृत करना चाहिए।

सर्वोपयोगीकृषिकार्यमाह —

स्वीय-स्वीयकुटुम्बानां रक्षार्थं ब्राह्मणैरपि॥ ७७॥
प्रीत्यर्थमपि देवानां क्षत्रियैर्वैश्यकैरपि।
शूद्रैरन्यैश्च भूलोके कल्प्या कृषिरुदीरिता॥ ७८॥
शास्त्रेष्वपि निबद्धा च मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।

ब्राह्मणों को अपने-अपने कुटुम्ब की रक्षा और देवताओं की प्रीति के लिए कृषि कार्य करना चाहिए, यही निर्देश क्षत्रिय, वैश्य व शूद्रादि के लिए भी कहा गया है। इस प्रकार का निर्देश मुनियों और तत्वदर्शियों ने नाना शास्त्रों में निबद्ध किया है।

अधुना पुराख्यानमाह —

सृष्टिकर्त्रा ब्रह्मणा तु कल्पादौ विविधानि तु॥ ७९॥
बीजानि सृष्टानि भुवि धृतान्यथ विशेषतः।
भूमिदेव्या प्रजासृष्टिप्रार्थनापूरणाय हि॥ ८०॥

कल्प के आदि में सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने पृथ्वी पर नाना प्रकार के बीजों को उत्पन्न किया था। पृथ्वी द्वारा प्रजा की सृष्टि, उनके विस्तार की प्रार्थना को पूर्ण करने के लिए इन बीजों को रोक कर रखा गया था।

एकं बीजं तु बहुधा रूपभाक् च भविष्यति।
बहुधा फलदं नृणां भविष्यति न संशयः॥ ८१॥

पृथ्वी की आकांक्षा थी कि एक बीज अनेक रूप ले सकेगा और इस प्रकार निःसंदेह कई प्रकार से मनुष्यों के लिए लाभकारी सिद्ध होगा।

कृषिशास्त्रेतिहासपरम्परा: —

इति भूम्या विष्णुपत्न्या पूर्वमुक्तं च तच्छ्रुतम्।
कृषिशास्त्रं तु भूम्योक्तं नीतं तन्मुनिभिः क्षितिम्॥ ८२॥

उक्त प्रकार का कथन विष्णुपत्नी पृथ्वीदेवी ने कहा था जिसे पूर्व में कथित कृषिविज्ञानविद् मुनियों ने श्रवण किया और उस ज्ञान को लोकोपयोगी बनाया।

तच्च संरक्षितं भूपैः लोकरक्षाधुरंधरैः।
अधीतं तच्च कालेन शूद्रकैस्तु विशेषतः॥ ८३॥

वही कृषि ज्ञान उन राजाओं द्वारा सुरक्षित रखा गया जिन पर लोक की रक्षा करने और जीविका उपलब्ध करवाने का महत् दायित्व था। बाद में शूद्रों द्वारा उचित समय पर इसका विशेष तौर पर अध्ययन किया गया।

तदादि बहुधा शास्त्रं कृष्याख्यं भूमिवासिभिः।
पर्जन्यकालानुगुणं विस्तृतं रक्षितं च तत्॥ ८४॥

तभी से वर्षाकाल व गुणानुसार पृथ्वीवासियों द्वारा कृष्याख्य अथवा कृषि नाम वाला उक्त ज्ञान नाना प्रकार से विस्तीर्ण हुआ और सुरक्षित भी रखा गया।

एवं कालेन महता नानादेशेषु मानवैः।
प्रत्येकं कृषिशास्त्रे तु चाधीतं भक्तिपूर्वकम्॥ ८५॥

इसी प्रकार उक्त कृषिशास्त्र का विभिन्न देशों में दीर्घकाल पर्यंत प्रत्येक व्यक्ति ने श्रद्धापूर्वक अध्ययन किया।

कृषिश्च कलिता स्वीये क्षेत्रे केदारकेऽपि च।
फलं च लब्धं सम्पूर्णं पोषिता जीवराशयः॥ ८६॥
स्वप्रजाश्च विशेषेण देवभूपालसाह्यतः।

कृषिज्ञानाश्रित होकर मनुष्यों ने अपने-अपने देशों में खेतों की भूमि पर कृषि की और देवताओं व राजाओं के सहयोग से प्राणियों के समूह एवं विशेषतया अपने स्वयं के परिजनों को जीवित रखने में पूर्ण सफलता भी प्राप्त की।

अन्यदप्याह —

अतः सर्वत्र देशेषु कृषिकर्मणि भूमियैः॥ ८७॥
उत्तमं साह्यमादिष्टं मुनिभिः कथितं पुरा।
विना राज्ञां तु साह्येन कृषिर्भूमण्डले तथा॥ ८८॥
देशे वा नगरे ग्रामे न सम्पूर्णं फलेरिता।
प्रत्यक्षतश्च दृष्टं च प्रजाभिर्भृत्यकैरपि॥ ८९॥

पूर्वकाल में सन्तों ने भी इसीलिए कहा है कि देश में प्रत्येक स्थान पर

भूमिपालों ने कृषि के विकास में सर्वोत्तम योगदान किया है। राजकीय के सहयोग के अभाव में इस पृथ्वी पर कृषि न तो देश में न नगर में और न ही ग्राम में सम्पूर्ण फल प्रदान करने में समर्थ हो सकती है।

अन्यदपि —

अतः सर्वत्र भूपालैः कृषिसाह्यं महाफलम्।
कर्तव्यं मण्डलानां च राष्ट्राणां क्षेमसिद्धये॥ ९०॥

उक्त मत प्रजा तथा वास्तव में देखभाल करने वालों द्वारा स्पष्ट तौर पर अनुभव किया गया है। इसलिए सर्वत्र शासकों को मण्डल एवं सम्बद्ध प्रदेश की क्षेमसिद्धि के निमित्त कृषि के लिए उदारता पूर्वक सहयोग प्रदान करना चाहिए।

अत्रैव कृषिमाहात्म्यं —

स्वात्मक्षेमादिवृद्ध्यर्थं यशसे च पराय च।
देवानां प्रीतये चापि स्वधर्मस्थैर्य हेतवे॥ ९१॥

कृषि अपने क्षेत्र के क्षेमादि की वृद्धि करती है, उत्तम यश और प्रगति का मार्ग प्रशस्त करती है। यह ईश्वरीय अनुग्रह और स्वधर्म के हेतु स्थायित्व प्रदान करती है।

अन्यदप्याह —

विप्रेभ्य श्रोत्रियेभ्यश्च नानागोत्रेभ्य एव च।
भूदानं गोप्रदानं च कुल्याखननमेव च॥ ९२॥
कृषिकर्मण्यशक्तानां विप्राणां च विशामपि।
शूद्राणामपि चान्येषां हितायानेकरूपकम्॥ ९३॥
कृषिसाह्यं तु कर्तव्यं राजधर्मानुसारतः।

नाना गोत्र के ब्राह्मणों, श्रोत्रियादि को भूमिदान एवं पशु का दान, नहरों की खुदाई के लिए अनुदान दिया जाना चाहिए। ब्राह्मणों, व्यापारियों, शूद्र और अन्य जो भी कृषिकर्म की दृष्टि से कमजोर हों, उनके लिए मदद का प्रावधान किया जाना श्रेयस्कर होता है। इनका राजकीय दायित्वों के अनुसार अनुकरण होना चाहिए।

अन्येषां कार्यमाह —

वापीकूपतटाकानां ह्रदानां खननं तथा॥ ९४॥
जलाशयानां च तथा घटीयन्त्रप्रकल्पनम्।

कृषि के लिए वापी, कूप, तटाक, ह्रद या सोतों के खनन, जलाशय तथा रहट आदि के प्रकल्पन पर विचार किया जाना चाहिए।

सस्यविध्वंसकानां तु तस्कराणामनेकधा॥ ९५॥
दण्डश्च शुद्धसत्त्वानां यशसे धर्मसिद्धये।

इसी प्रकार फसलों का विध्वंस करने वाले, नुकसान पहुँचाने वाले अनेक प्रकार के चोर-तस्करों के लिए उचित दण्ड का प्रावधान हो। शुद्ध सत्वों या श्रेष्ठजनों के यश व धर्म की सिद्धि पर विचार करना चाहिए।

एवं बहुविधं साह्यं कृषिकर्मणि निश्चितम्॥ ९६॥
तत्सर्वं भूमिपालैस्तु कर्तव्यं मुनिभाषितम्।

इसी प्रकार बहुविध मदद होने पर ही कृषिकर्म का उन्नयन होता है। भूमिपालों को कृषिकार्य की दिशा में अपना कर्तव्य निर्धारित करना चाहिए, ऐसा पूर्वकाल में मुनिवरों ने कहा है।

तत्रैव भूपालकर्तव्यमाह —

यस्मिन् ग्रामे नगर्यां वा देशे वाथ क्वचित्स्थले॥ ९७॥
कृषिकर्मण्यशक्तानां प्रजानां रक्षणाय च।
जनबाहुल्यनगरराजधान्यादि वास्तुके॥ ९८॥

कुछ स्थानों पर जैसे कि गाँव, नगरी, प्रदेश और जनबहुल क्षेत्र, नगर, राजधानी आदि में कृषि कार्य करने में मनुष्य असक्षम होते हैं या खेती की सुरक्षा की दृष्टि से असहाय होते हैं तो वहाँ पर राजा को प्रजा के हितों की रक्षा के प्रबन्ध करने चाहिए।

अन्यदप्याह —

उपकाराय वा भूपाः सारक्षेत्राण्यनेकधा।
क्षेत्राणां मण्डलं वापि द्विविधानां महीतले॥ ९९॥
स्वीकृत्य कृषिकार्यार्थं यथाकालं यथाक्रमम्।
नियोजयेयुः स्वान् भृत्यान् प्रजाश्चापि विशेषतः॥ १००॥

जहाँ पर ऐसे कमजोर वर्गों की स्थिति हों, वहाँ पर राजा को चाहिए कि वहाँ के खेतों व खेतमण्डलों के दोनों प्रकार की भूमि के पर्यवेक्षण के लिए अपने स्तर पर यथाकाल, यथाक्रम कृषिकार्य के लिए उचित स्वीकृति देनी चाहिए और वहाँ पर अपने

भृत्यों या कर्मचारियों को या प्रजा के परामर्श पर रक्षकों-विशेषज्ञों को विशेष रूप से नियोजित किया जाना चाहिए।

अन्यदपि —

सङ्कीर्णजातिजान् रिक्तान् शूद्रांश्चापि कृषिस्थले।
योजयित्वा तत्र-तत्र धान्यादीन् विविधानपि॥ १०१॥

विभिन्न किस्मों के खाद्यान्नों आदि की पैदावार के लिए सम्बन्धित स्थलों पर खेती की रक्षा के लिए सङ्कीर्ण जातियों और शूद्र जातियों से विशेषकर रिक्तजनों या बेरोजगारों को नियुक्ति दी जानी चाहिए।

स्थानानुकूले सस्यमाह —

आढकादीनपि तथा शाकादींश्च क्वचित्स्थले।
मल्लीचम्पकमुख्यानि कुसुमान्यपि युक्तितः॥ १०२॥
अमितं वर्द्धयेयुः स्वप्रजाक्षेमाभिवृद्धये।

अपने क्षेत्र में उपयुक्त स्थानों पर अरहर-तुअर आदि सब्जियाँ, पुष्पीय पौधे विशेषकर मल्ली, चम्पकादि को प्रजा के कल्याण एवं समृद्धि के लिए कुशलतापूर्वक लगाया जाना चाहिए।

तत्रैव सज्जीकृत्यादीनां —

शाकादिद्रव्यराशिं च धान्यादीनां च राशिकम्॥ १०३॥
आढकीचणकादीनां राशिं च तिलराशिकम्।
माषसर्षपराशिं च तथा द्राक्षादिपुञ्जकम्॥ १०४॥
विविधानां फलानां च पुञ्जं च समयोद्भवम्।
सज्जीकृत्यं नराणां हि सुखाय स्थापेन्नृपः॥ १०५॥

शाकादि द्रव्य राशि, धान्यादि राशि के लिए कहा गया है कि अरहर, चना, तिलराशि, माष, सरसों, दाक्षापुञ्ज आदि विविध प्रकार के फलों को जो कि समय विशेष पर ही पैदा होते हैं, उनके एकत्रीकरण व संग्रह के लिए नागरिकों को यथेष्ट साधन दिए जाने चाहिए, यह शासक का कर्तव्य है।

भाण्डागारार्थनिर्देशमाह —

आपणस्थानके वापि तदर्थं निर्मिते स्थले।
सचत्वरे साङ्गणे वा निरावरणकेऽपि वा॥ १०६॥

निषद्यासु तथा शालानिर्माणेष्वपि वा क्वचित्।

उक्त उपज, बीजादि के लिए शासक को चाहिए कि वह विपणन वीथी या विक्रय प्रयोजन के निमित्त स्थलों को निर्धारित करें। ऐसे स्थानों में चबूतरे या चत्वर, खुले आङ्गन (मण्डी-मण्डपिका) अथवा व्यापारियों की दुकानें हो सकती हैं। कुछ प्रकरणों में इसके लिए निर्माणाधीन शालाओं पर भी विचार किया जा सकता है किन्तु उनका सुविधानुकूल होना आवश्यक है।

अन्यदपि —

सर्वं द्रव्यं च पूर्वोक्तं यच्चान्यत्सुखदायकम्॥ १०७॥
कम्बलं वस्त्रजालं च दधिक्षीरादिकं तथा।
भोज्यद्रव्यं च विविधं चर्व्यं खाद्यं च यद्भुवि॥ १०८॥
कृष्यादानवशात्प्राप्यं गुडं तैलं हितप्रदम्।
यच्चान्यत् द्रव्यमत्रोक्तं तत्सर्वं भूमिवल्लभः॥ १०९॥

सर्व प्रकार के द्रव्यों को जो कि पूर्व में बताए गए हैं और प्रजा के लिए सुखदायक होते हैं, उनका राजा को विपणन प्रबंध करना चाहिए। इन सामग्री में कम्बल, नाना प्रकार के वस्त्र, दही, दूध आदि खाद्यों के साथ ही भोज्यसामग्री, चव्य सामग्री, कृषि से प्राप्त सामग्री जैसे कि गुड़, तेल आदि जो भी हित प्रदायक वस्तुएँ बताई गई हैं, की बिक्री का प्रबंधन मुख्य है।

ग्रामे पुरे च नगरे राजधान्यां विशेषतः।
निषद्यादि स्थानकेषु चानीयात्तु क्रियार्हकम्॥ ११०॥

शासक को चाहिए कि प्रजाहित में बिक्री के योग्य अन्य जो भी वस्तुएँ हों, उनको ग्राम, पुर, नगर व राजधानी में दुकानों व अन्य विपणन योग्य स्थलों पर अवश्य ही लाना चाहिए।

क्रय-विक्रयार्थ धनिकानिर्देशमाह —

स्थापयित्वा विशेषेण वैश्यान वणिज्यकाविदान्।
क्रयार्थं विक्रयार्थं च योजयेत् धनिकान् नृपः॥ १११॥

शासक को क्रय-विक्रय के लिए, विशेष तौर पर विपणन में दक्ष वैश्यों, वाणिज्य विशारद धनिकों को नियुक्त किया जाना चाहिए।

अन्यदप्याह —

वसन्तादिषु मासेषु यद्यत् प्राप्यं कृषिक्रमात्।

यन्त्रादिभिश्च यत्प्राप्यं यत्प्राप्यं तन्तुवायकान्॥ ११२॥
तैलकाराच्च यत्प्राप्यं तत्सर्वं पृथिवीपतिः।
मालाकाराच्च यत् प्राप्यं गन्धद्रव्यादिकं भुवि॥ ११३॥

वसन्त और अन्य महीनों में कृषि से जो भी कुछ प्राप्त होता है या यंत्रों से उत्पादित होने वाली वस्तुएँ हैं, उनको राज्य के लिए जुटानी चाहिए। इनमें बुनकरों, तेलियों, मालाकार या मालियों से प्राप्त गन्ध द्रव्यादि मुख्य बताई गई हैं।

अन्यदप्याह —

सम्पादयित्वा सत्सर्वं प्रजानां सुखसिद्धये।
ग्रामे पुरे च नगरे राजधान्यां विशेषतः॥ ११४॥
आपणादिषु शालासु चाङ्गणे विविधेऽपि च।
स्थापयेत् रक्षयेत् राजा वैश्यान् तत्र नियोजितान्॥ ११५॥

इस प्रकार की द्रव्यों-वस्तुओं को समस्त प्रजा की सुख सिद्धि के लिए विशेष रूप से ग्राम, पुर, नगर, राजधानी में वणिक् वीथियों, बिक्रीशालाओं या दुकानों, बिक्री स्थलोचित आङ्गन पर रखवाने का प्रबन्ध करना चाहिए। इसके साथ ही वहाँ पर वैश्यों-व्यापारियों को नियोजित किया जाना चाहिए।

प्रस्थादीनां भेदमाह —

प्रस्थं च कुञ्जं(? ञ्चं) द्रोणं च नाडिकं क्षुद्रमेव च।
धान्याढकादिद्रव्याणां कलनार्थं प्रकल्पयेत्॥ ११६॥

दलहन आदि धान्यों, द्रव्यों के संग्रहण के साथ ही वहाँ पर प्रस्थ, कुञ्च (कुञ्चि[१]), द्रोण और लघु नाडिक आदि माप-तौल के साधनों का प्रबन्ध करना चाहिए।

मापनोपस्करमाह —

अयः पट्टैः सारदारुफलकाभिर्महीपतिः।
प्रस्थादिकं कारयेच्च देशे सर्वत्र योजयेत्॥ ११७॥

राजा को चाहिए कि वह लौहपट्ट, सारदारु या लकड़ी के फलकों के हस्त,

---

१. कुञ्च या कुञ्चि स्मृति में आया परिमाण है। यह आठ मुट्ठी धान्य के बराबर माना जाता है— अष्टमुष्टिर्भवेत् कुञ्चिः कुञ्चयोऽष्टौ च पुष्कलम्॥ अर्थात् आठ मुट्ठी प्रमाण को कुञ्चि और आठ कुञ्चि प्रमाण को पुष्कल कहा जाता है। (शब्दकल्पद्रुम द्वितीय भाग, पृष्ठ १३५)

गज, प्रस्थादि मापक उपकरणों का निर्धारण करें और देश में सर्वत्र ही उसी अनुरूप नियम-प्रावधान लागू करें।

पलाङ्कारायः खण्डादीनां —

तैलादितोलनार्थं च पलङ्कारं तथैव च।
अयः खण्डेन क्लृप्तं च सर्वत्र सममानकम्॥ ११८॥
तुल्यरूपं तुल्यदरं देशे तत्र नियोजयेत्।

शासक को चाहिए कि वह तैल के तोलने के लिए पलाङ्कार (या पली), मापन के लिए लोहपट्ट या गज को मानक रूप से लागू करें। एक ही मूल्य और मापन प्रमाण पूरे देश में समान ही लागू किया जाना चाहिए।[1]

तत्प्रमाणं च वैश्येषु ग्राम्येष्वपि जनेषु च॥ ११९॥
निवेदयेत् भृत्यवर्गैः ब्राह्मणाद्यैर्विशेषतः।

उसे अपने कर्मचारियों मुख्यतः ब्राह्मणों के माध्यम से व्यापारियों और ग्रामीणों के बीच किसी भी द्रव्य का मान-मूल्य का निर्धारण करना चाहिए।

तुलादण्डादीनां प्रयोगमाह —

तुलादण्डं च कांस्यं वा पित्तलं वा विशेषतः॥ १२०॥
शाकादितोलनार्थं च राजा सर्वत्र योजयेत्।

शाक आदि पदार्थों को तौलने के लिए राज्य को सर्वत्र तुला का प्रयोग

---

१. विशेष : भास्कराचार्य ने लीलावती ग्रन्थ में जो गणित दी है, उसके अनुसार प्राचीन माप-तौल के प्रमाण निम्नानुसार होते थे— २० वराटका : = १ काकिणी, ४ काकिणी = १ पण, १६ पण = १ द्रम्म, १६ द्रम्म = १ निष्क, ५ गुंजा = १ माष, १६ माष = १ कर्ष, ४ कर्ष = १ पल, अन्य प्रमाण से १ कर्ष = १ सुवर्ण। वर्तमान में इनको परिवर्तित करें तो १ माशा = लगभग १ ग्राम, १६ ग्राम = १ सुवर्ण, ४ पल = १२ ग्राम = १ तोला, ६४ ग्राम = १ निष्क या पल, १०० पल ६४०० ग्राम या ६ किलो ४०० ग्राम। यह एक तुला के बराबर हुआ। इसी प्रकार ६४ × ४ = २५६ ग्राम = १ कुडव, ४ कुडव १ प्रस्थ, २५६ × ४ = १०२४ ग्राम = १ प्रस्थ, ४ प्रस्थ = १ आढक, १ आढक = ४ किलो ९६ ग्राम, ४ आढक = १ द्रोण = १६ किलो ४०० ग्राम लगभग। प्राचीन तौल में २ यव = १ गुंजा, ३ गुंजा = १ वल्ल, ८ वल्ल = २ धरण, २ धरण = १ गद्याणक, १४ वल्ला = १ घटक।

इसके अतिरिक्त माप के प्रमाण इस प्रकार बताए गए हैं— ८ यवोदर = १ अंगुल, २४ अंगुल = १ हाथ, ४ हाथ = १ दण्ड, २००० = दण्ड = १ क्रोश, ४ क्रोश = १ योजन, १० हाथ = १ बांस, २० वंश × २० वंश = १ निर्वतन।

इसी प्रकार तौलादि के ये मान भी थे— १ घनहाथ = १ खारी, ४ कुडव = १ प्रस्थ, ४ प्रस्थ = १ आढक, ४ आढक = १ द्रोण, १६ द्रोण = १ खारी। (लीलावती परिभाषा २-११)

करवाना चाहिए और इन तुलाओं का दण्ड विशेष रूप से काँस्य अथवा पीतल धातु का प्रयोग अपेक्षित है।

अत्र विशेषोच्च —

अमात्यप्रमुखै राजा पलं प्रस्थादिकं क्रमात्॥ १२१॥
अङ्कयित्वा विशेषेण देशे सर्वत्र योजयेत्।

शासक को चाहिए कि वह अपने आमात्य या मन्त्रियों, अधिकारियों द्वारा अपने देश में प्रत्येक आवश्यक स्थान पर पल, प्रस्थादि मापकों को राजकीय मानक अङ्क-चिह्नों से अधिकृत कर लगवाएँ।

धान्यादीनां क्र(क्रि?)यज्ञानं पणज्ञानं तथा नृपः॥ १२२॥
उद्घोषयेच्च सर्वत्र देशे-देशे विशेषतः।

शासक को खाद्यान्नों आदि के क्रयमूल्य की जानकारी, भाव-ताव आदि वाणिज्य विषयक सूचनाओं का देश के समस्त क्षेत्र में विशेष रूप से उद्घोष करवाना चाहिए।

प्रतिग्रामं प्रतिगृहं प्रजासौख्याय युक्तितः॥ १२३॥
धान्यादि द्रव्यराशीनां तैलादीनां तथैव च।
वस्त्रादीनां च शाकादि द्रव्याणां च कृषिक्रमे॥ १२४॥
यत्साह्यं विविधं शास्त्रनिर्दिष्टं मुनिभिः पुरा।
तत्सर्वं पृथिवीपालः कल्पयेत् क्षेमसिद्धये॥ १२५॥

प्रत्येक ग्राम और प्रत्येक गृह के लिए प्रजा के सुखोद्देश्य के हेतु से राजाओं के लिए पुराकाल में महर्षियों ने कई कर्तव्य निश्चित किए हैं। ये कर्तव्य धान्यराशि, तेल, वस्त्र, शाक द्रव्यादि के लिए बताए गए हैं— इनसे सम्बन्धित समस्त नियमों, प्रावधानों या निर्देशों को राजा को लागू करना चाहिए।

तत्रैव कृषिमाहात्म्यम् —

कृषिं विना न भूलोके द्विपदां च चतुष्पदाम्।
सुखदिर्न भवेदेव निश्चितं शास्त्रपारगैः॥ १२६॥

बिना कृषि के इस भूलोक में दो पैरों वाले अर्थात मनुष्यों और चौपायों अर्थात् पशुधन को निश्चय ही सुख नहीं मिल सकता है, ऐसा शास्त्रधुरन्धर जनों का मत है।

कृष्यावश्यककर्तव्यमाह —

तस्मात् देवप्रीणनार्थं प्रजानां रक्षणाय च।

कृषिकर्मण्युपरतिः नृपाधीना च निश्चिता॥ १२७॥

इसलिए देवताओं की प्रसन्नता एवं प्रजा की सुरक्षा के लिए राजा को इस दिशा में निश्चित ही ध्यान रखना चाहिए कि राज्य में कभी कृषिकर्म अवरुद्ध न हो सके।

अन्यदपि —

पुरोहितैः ब्राह्मणैश्च सचिवैर्वा विशेषतः।
महीपतिः क्षत्रियो वा प्रजारक्षा धुरन्धरः॥ १२८॥

इसी अर्थ में पुरोहितों, ब्राह्मणों और सचिवों को चाहिए कि वे प्रजारक्षार्थ तत्पर रहने वाले राजा को सदा ही कृषि कार्यार्थ प्रेरित करें।

सर्वकार्येषूत्तमं तु कृषिकर्म प्रशस्यते।
तत्पालयेत् स्वदेशेषु यत्नतो युक्तितः क्रमात्॥ १२९॥

जीवन व राज्य के अन्य सभी उत्तम समझे गए कार्यों में कृषि कर्म को प्रशस्त कहा गया है। इसके महत्व को जानकर राजा को चाहिए कि वह अपने देश में तत्परता पूर्वक, उचित रूप एवं ढंग से कृषि गतिविधियों का संचालन करें।

तत्रारामनिर्देशमाह —

एवं महीपतिर्युक्त्या ग्रामे वा नगरेऽपि वा।
राजधान्यां विशेषेण निष्कुटं वनमेव वा॥ १३०॥
पुरस्य च बहिर्देशे मध्ये वा वृक्षवाटिकाम्।
अन्तः पुरस्थप्रम(प?)दालीलार्थं वा विशेषतः॥ १३१॥
आरामं स्थापयेत्धीमा(ना?)म् वनान्ते वृक्षवाटिकाम्।

इसी प्रकार बुद्धिमान शासकों को गाँव, नगर और विशेषरूप से राजधानी में उचित रूपरेखा से आनंदकारी वाटिकाओं, पेड़दार वनों व फलोद्यानों को शहर के सीमा क्षेत्रों में विकसित करना चाहिए। विशेषतौर पर राजकीय अन्तःपुर में आमोद-प्रमोद के लिए उपवन बनाने चाहिए। इसी प्रकार विश्रामगृहों एवं वाटिकाओं को जङ्गलों की सीमा पर स्थापित करनी की योजनाएँ बनानी चाहिए।

साराणां चन्दनादीनां वृक्षाणां वर्द्धनादपिः॥ १३२॥
गृहनिर्माणसाह्यं च प्रजानां परिकल्पयेत्।

शासक को, प्रजा को भवन के निर्माणार्थ सार या साल, चन्दन के वृक्षों को उगाकर प्रजा को काष्ठादि से उचित सहायता दी जाना चाहिए।

प्रासादोद्यानभागेषु मनोज्ञानं फलमेदुरान्॥ १३३॥
वृक्षांस्तु विविधान् भूपो वर्द्धयेत्(यु?) च यथाक्रमम्।

शासक को महल के अहाते में बगीचों के लिए आरक्षित भाग में विभिन्न सुन्दर वृक्ष जो कि फलों से लदे हुए होते हों, उगाने का उपाय करना चाहिए।

आरामाऽरोपणीयद्रुमाह —

रम्भां च मोचां जम्बीरं मातुलुङ्गं च पिप्पलीम्॥ १३४॥
अन्याश्चोपधिवल्लीश्च नलदानपि वर्द्धयेत्।
कुशान् काश्यांश्च विविधान् तुलसीर्बिल्वकानपि॥ १३५॥
कुसुमानि च पूजार्हान्यनेकानि च भूमिपः।
काललभ्यानि गन्धाढयानपि सर्वत्र वर्द्धयेत्॥ १३६॥
कुटुम्बारोग्यदायीनि युक्त्यान्यानि च वर्द्धयेत्।

महल के उद्यान में लगाए जाने वाले वृक्षों के चयन के लिए निम्न मुख्य हैं- केला, मोचा (एक अन्य प्रजाति), जम्बीर, बीजोरा, पिप्पली या पीपल, औषधीय लताएँ, नलदा या दालचीनी, कुशा[१], काश्या अथवा छप्परघास, तुलसी, बिल्व, नाना सुगन्धकारी और देवपूजा में अर्पित करने योग्य फूलों वाले वृक्ष आदि। इसी प्रकार सम्बन्धित ऋतुओं में उपलब्ध होने वाले पौधे और अन्य ऐसे पौधे जो कि परिवार की स्वास्थ्य की दृष्टि से आरोग्यकारी और शक्तिदायक हो, लगाए जा सकते हैं।

तत्रैव देवोद्यानमाह —

देवोद्यानं देवभूमावुत्सवाय प्रकल्पयेत्॥ १३७॥
ग्रामस्यान्तःस्थले वापि बहिर्वा तत्प्राकल्पयेत्।
यथा स्थलं वशाद्भूपो देशाचारवशादपि॥ १३८॥

महल में उद्यान के साथ ही राजा को देवोद्यान का निर्माण करना चाहिए। देवताओं से जुड़े पर्वोत्सवों को मनाने के लिए गाँव के भीतर अथवा बाहर क्षेत्रीय परिपाटियों को ध्यान में रखते हुए उचित स्थल का निर्धारण कर राजा को देवोद्यान की योजना भी बनानी चाहिए।

---

१. कुश, काश, दूर्वा, जौ का पत्ता, धान का पत्ता, बल्वज और कमल ये सात प्रकार के कुश स्वीकारे गए हैं : कुशाः काशास्तथा दूर्वा यवपत्राणि व्रीहयः। बल्वजा पुण्डरीकाश्च कुशाः सप्त प्रकीर्तिताः॥ (पद्मपुराण सृष्टिखण्ड ४५, ३४-३५)

तत्रैव प्रमदावनमाह —

एवं प्रासादभूम्यां तु प्रमदावनमुत्तमम्।
मनोज्ञवृक्षषण्डाढ्यं मालत्यादि विराजितम्॥ १३९॥

इस प्रकार राजप्रासाद की भूमियों पर नाना मनोहारी वृक्षों से उत्पन्न होने से सुषमा में अभिवृद्धि करने वाले महिलाओं के उद्यानों की योजना बनानी चाहिए।

स्थापयेदेवमन्यत्र राजधान्या बहिःस्थले।
तच्च भूपः स्थापयेच्च प्रजानन्दविवर्द्धनम्॥ १४०॥

शासक को चाहिए कि वह राजधानी के बाह्य भागों में प्रजारञ्जन और आनन्द के अभिवर्द्धन के लिए उपर्युक्त प्रकार के उद्यानों का विकास करें।[१]

एवं वने वनान्ते वा गिरिसानुतटेऽथवा।
महावनं स्थापयेच्च नानावृक्षसमुज्ज्वलम्॥ १४१॥

इसी प्रकार वनखण्ड, वनान्त अथवा अपने क्षेत्र की सीमा में विद्यमान, पर्वतों की तलहटी पर नाना प्रकार के उज्ज्वल वृक्षों से परिपूर्ण महावनों को विकसित करना चाहिए।

नानाबीजरक्षणादीनां निर्देशमाह —

नानावृक्षावलीबीजरक्षणं तत्र निर्दिशेत्।
फलैः पुष्पैश्च फलकादारुखण्डादिभिर्नृपः॥ १४२॥
प्रजानां गृहनिर्माणसाह्यं तेन विनिश्चितम्।

राजा को चाहिए कि वह नाना वृक्षों के बीजों को सुरक्षित रखने के लिए

---

१. वृक्षायुर्वेद में यह निर्देश मिलता है कि वही पृथ्वी का स्वामी कहलाने योग्य है कि जिसके राजगृह में विस्तृत, सुन्दर वाटिकाएँ विद्यमान हों जहाँ पर जन सामान्य को सभी प्रकार से प्रसन्नता की प्राप्ति होती हो और जहाँ पर अपरिमित आनन्द व उल्लास-विलास की अनुभूति व अनुरञ्जन सुलभ होता हो। यही नहीं, वहाँ सुन्दर जलराशि वाली दीर्घिकाएँ-पुष्करणियाँ भी हों जिनकी जलराशि पर विकसित कमलपुष्पों पर भ्रमर गुञ्जार करते हों—पुंसांसर्व्वसुखैक साधनकन्थाः सौन्दर्यगर्वोद्धुर क्रीडालोल विलासिनी जनमनः स्फीतप्रमोदवहाः। गुञ्जद्भृङ्गविनिद्र पङ्कजभरस्फारोल्लसद्दीर्घिकायुक्ताः सन्ति गृहेषु यस्य विपुलारामाः स पृथ्वीपतिः॥
यह भी कहा गया है कि कोई भी पृथ्वीपति अपनी युवावय, सुन्दरयष्टि, सौन्दर्य की खान रमणियाँ, कुशल मित्र, राग-रंगादि से कितना ही समृद्ध हो किन्तु ये सब सुख विफल हैं यदि उसके पास कोई योग्य उद्यान-विहार (जैसी सम्पदा) नहीं हो। इसीलिए उद्यान का जीवन में महत्व समझना चाहिए— नवं वयो हारि वपुर्व्वराङ्गनाः सखा कलावित्कलवल्लकीस्वनः। धनं हि सर्व्वं विफलं सुखैषिणो विना विहारोपवनानि भूपतेः॥ (वृक्षायुर्वेद : सुरपाल, सम्पादक-अनुवादक : श्रीकृष्ण 'जुगनू', वाराणसी, २००४ ई., १-२)

यथेष्ट निर्देश प्रदान करे। इसी वनीय सम्पदा के आधार पर राजा प्रजा को गृह निर्माण में काष्ठ के उपयोग, पुष्पों व फलों की उपलब्धि से आश्वस्त करें।

तत्रैव सीमाभित्तियुतेषु रोपणनिर्देशमाह —

तस्मात् सर्वत्र देशेषु भूमिरक्षाधुरन्धरः॥ १४३॥
विशालभूमिभागेषु सीमाभित्तियुतेषु वा।

निखिल देशभूमि की रक्षा के दायित्व का निर्वाह करने वाले नरपति को अपने देश की सीमा-भित्ति या सीमावर्ती क्षेत्रों में विस्तृत भूमि पर वृक्षारोपण का आदेश दिया जाना चाहिए।

विविधवृक्षावल्यामाह —

करञ्जकान् नक्तमालारेण्डान् भूर्जकानपि॥ १४४॥
अर्जुनान् सर्जकान् नीपान् कदम्बानपि भूरुहान्।

सीमा-भित्ति पर लगाए जाने वाले वृक्षों में मुख्यतः निम्न वृक्षों का चयन किया जाना चाहिए- करञ्ज या करंजक, नक्तमाल, अरण्डी, भूर्जपत्र, अर्जुन, सर्जक, नीप या पीत सागौन तथा कदम्ब जैसे वृक्ष।

अन्यदपि —

शिग्रून् शमान् मरुवकान् देवदारुद्रुमानपि॥ १४५॥
श्रीपर्णकान् तिन्दुकांश्च वटान् प्लक्षान् तथा क्वचित्।

इसी प्रकार कहीं-कहीं शिग्रु, शमी या खेजड़ी, मरुवाक, देवदारु या कोविदार, श्रीपर्णी, तिन्दुक या टीमरु (तेन्दुपत्ता), बरगद और प्लक्ष या पाकड़ का रोपण भी करें।

भद्रदारुनपि तथा प्रियङ्गूंश्च क्वचित्स्थले॥ १४६॥

भद्रादारु या दीर्घ पत्तियों वाला चीड़ तथा प्रियङ्गु का भी किसी-किसी स्थान पर रोपण करें।

अन्यदप्याह —

विभीतकानामलकीस्तथा हैमवतीरपि।
कर्णिकारांश्च लिकुचान् निम्बवृक्षानपि क्वचित्॥ १४७॥

इसी तरह विभीतक या बहेड़ा, आमलकी, हेमावती या पीला आँवला, कर्णिकार या कनेर, लकुच और नीम के पेड़ भी उक्त भूमि पर लगाए जाने चाहिए।

अन्यदप्याह —

अशोकांश्च शिरीषांश्च दाडिमानपि भूमिपः।
जम्बूवृक्षान् कपित्थांश्च सर्वतोभद्रकानपि॥ १४८॥
चाम्पेयकान् कुरबकान् वर्णजानपि कर्णिकान्।
तापिच्छांश्च तमालांश्च सिन्दुवारद्रुमानपि॥ १४९॥

अन्य वृक्षों में अशोक, शिरीष या सरस, दाड़िम या अनार, जामुन, कपित्थ या कैथ जैसे वृक्षों को सर्वतोभद्र(?) या चारों ओर ही लगाएँ। चाम्पेय, कुरबक, वर्णजा या श्वेत कर्णिकार, तपिच्छा, तमाल, सिंधुवार जैसे पेड़ भी रोपणीय हैं।

तिन्त्रिण्याख्यान् महावृक्षान् तथा वंशनपि क्वचित्।
चूतानां रसालानाम्रांश्च बदरीन् वा विशेषतः॥ १५०॥

इसी तरह कहीं पर इमली जैसे महावृक्ष और बाँस को और कहीं पर आम, रसाल, बेर को भी विशेष रूप से लगाए जाने चाहिए।

रन्ना(ण्या?)द्रुमान् मधूकांश्च पीलूवृक्षान् तथैव च।
पुंनगान् पारिभद्रांश्च कोविदारद्रुमानपि॥ १५१॥

इसी प्रकार सीमा-भित्ति क्षेत्र में रन्नाद्रुम (अरण्य द्रुम, जङ्गली पेड़?) महुआ, पीलू, पुन्नाग, पारिभद्र तथा कोविदार का रोपण भी किया जाना चाहिए।

अन्यदप्याह —

एवं नानाजातिरूपान् वृक्षान् सारान् यथाक्रमम्।
स्थापयेत् पृथिवीपालः रक्षयेत् जलसैचनैः॥ १५२॥

शासक को उपर्युक्त नाना जातियों और रूप वाले पेड़ों को यथाक्रम से लगाने और उनकी रक्षा सहित सिंचाई का उचित प्रबन्ध करवाना चाहिए।[१]

---

१. ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में कौनसा वृक्ष किस तरह से मङ्गलमय होता है और कैसे उपयोगी वृक्ष भी सर्वथा वर्जनीय हो जाता है, इसका वर्णन मिलता है। विश्वकर्मा के प्रति श्रीकृष्ण कहते हैं कि गृहस्थों के आश्रम में नारियल का वृक्ष धन प्रदान करने वाला होता है, वह यदि शिविर के ईशानकोण या पूर्व दिशा में हो तो पुत्रप्रद होता है। यदि पूर्व दिशा में आम का वृक्ष हो तो वह सम्पत्ति देने वाला होता है। वेल, कटहल, जम्बीर, नीम्बू तथा बेर के वृक्ष पूर्व दिशा में सन्तानदायक, दक्षिण में धन प्रदाता तथा सर्वत्र सम्पत्ति प्रदायक होते हैं। इनसे गृहस्थ की उन्नति होती है। जामुन, केला और आँवला के वृक्ष पूर्व में बन्धुप्रद एवं दक्षिण में मैत्री के अभिवर्द्धक होते हैं और सर्वत्र शुभप्रद माने जाते हैं। नगर में वन्यवृक्ष को निषिद्ध किया गया हैं, वट वृक्ष रहना अनुचित है क्योंकि उससे चोरी का भय रहता है। इसी प्रकार सेमल का वृक्ष भी नगर में अनुचित है किन्तु जंगल में उचित है, इमली का वृक्ष भी नगरोचित नहीं है। वह बुद्धि व विद्या का विनाशक है, खर्जूर व अन्य काँटेदार वृक्ष

महावनरक्षार्थनिर्देशः —

दवाग्निबीजनात् दुष्टसत्वाच्चोरात् यथाक्रमम्।

महावनों को दावानल या वन की आग, हानिकारक जीव-प्राणियों और चोरों से सुरक्षित रखा जाना चाहिए।

कुत्र स्थाप्यमहावनामाह —

एवं महावनं रक्ष्यं नदीतीरेषु वा क्वचित्॥ १५३॥
गान्धार-कुन्ति-पाञ्चाल-काश्मीरावन्ति भूमिषु।
सिन्धु-नेपाल-निषध-कोसलाङ्गादिभूमिषु ॥ १५४॥
गुर्जरार्बुद(-वन्ति?)सौराष्ट्रप्रमुखादिस्थलेषु च।
देशेषु विविधेष्वेवं सारभूमिस्थले नृपः॥ १५५॥

महावनों को नदी के किनारों से भी रक्षित किया जाना चाहिए अथवा नदी के तीरों पर पेड़-पौधों का रोपण किया जाए। महावन लगाने की दृष्टि से राजाओं को गान्धार, कुन्ती, पाञ्चाल, काश्मीर, अवन्ति अथवा उज्जैन (मालवा), सिन्धु, नेपाल, निषध, कौशल, अङ्ग देश की भूमि, गुर्जर (गुजरात-राजस्थान), अर्बुद (गोडवाड़-मेवाड़), सौराष्ट्र (सोरठ) जैसे कई देशों के प्रमुख उपजाऊ स्थलों का चयन किया जाना चाहिए।[1]

अन्यदप्याह —

महावनं सर्ववृक्षषण्डोज्वलित दिङ्मुखम्।
तटाककुल्यावाप्यादिसंयुतं च समन्ततः॥ १५६॥
कृषीवलैः स्वप्रजाभिः स्थापयित्वा यथाक्रमम्।
वीरैर्भटैर्योधवर्गैः रक्षयेत् सुखसिद्धये॥ १५७॥

जैसा कि कहा गया है कि महावनों को चयनित खण्डों पर ही उचित दिशा

अनुचित है। अन्नों में चना, शाकों में लौकी, कुम्हड़ा, आयाम्बु, पलाश, कर्कटी, हल्दी, अदरक, हरितकी, आमलकी और ईख तथा वृक्षों में अशोक, सिरिस या सरस, कदम्ब सदैव ही शुभदायक माने गए हैं। (ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्णजन्मखण्ड, अध्याय १०३)

१. गजशास्त्रम् में आठ ऐसे महावनों का उल्लेख आता है जिनमें गजों का विहार होता था— १. प्राच्यवन, २. चेदिकरूषक ३. दाशार्णक, ४. मांगरेयिक, ५. कलिंग, ६. अपराजित, ७. सौराष्ट्र और ८. पांचनद वन : पूर्वं नागवनं प्राच्यं ततश्चेदिकरूषकम्। दशार्णकं ततो विद्यात् ततः स्यादाङ्गरेयिकम्॥ कालिङ्गकं पञ्चमं स्यात् षष्ठं स्यादपराजितम्। सौराष्ट्रकं सप्तमं स्यात् ततः पाञ्चनदं पुनः॥ (गजशास्त्रम् ४, १-२)

जानकर लगाया जाना चाहिए। नाना देशों में सभी प्रकार के पेड़ों से सभी भाग प्रकाशवान होने चाहिए। किसानों, नागरिकों, सैनिक, योद्धाओं और वीरों द्वारा झीलों, नहरों, बावड़ियों आदि द्वारा सभी मोर्चों पर सुख सिद्धि के लिए उन्हें संधारित, रक्षित किया जाना चाहिए।

तत्रैव खनिं कार्यमाह —

पर्वतस्यान्तिकस्थाने वनमध्येऽथवा क्वचित्।
खनिं च नानालोहानां जनयित्रीं महीपतिः॥ १५८॥
परीक्ष्य भूगर्भनाडी रक्षयेत्तत्र तत्र हि।

शासक को चाहिए कि वह भूमिगत सङ्केतों के परीक्षण के आधार पर अपने देश में धातुओं की खोज करें। धातु खदानों को पहाड़ों, तलहटी में, वनप्रदेश के मध्य में खोजा जाना चाहिए।

अयः खण्डं पित्तलांश्च सुवर्णं रजतं तथा॥ १५९॥
गैरिकानपि यत्नेन सम्पाद्यक्षेमसिद्धये।

राज्य की खुशहाली के लिए प्रयास करके खदानों से अयस्क खण्ड, पीतल, सोना, चाँदी सहित लाल गैरिक अथवा गेरु मिट्टी को प्राप्त करना चाहिए।[१]

लोहकारतक्षकसुवर्णकारस्य कर्तव्यमाह —

लोहकार्यप्रवीणैश्च लोहकारैश्च तक्षकैः॥ १६०॥
सुवर्णकारैरपि च ग्रामेषु नगरेष्वपि।
नानायुधानां जालानि कल्पयित्वा विशेषतः॥ १६१॥

खनन और कृषि कार्यों के लिए ग्राम और नगरादि में बसे लोहकार्य में प्रवीण लोहारों, तक्षकों (खुदाई-जड़ाई करने वाले, जड़ियों) और सुनारों के सहयोग से नाना प्रकार के आयुध, जाल आदि बनवाए जाने चाहिए।

अन्यदप्याह —

कृषियोग्यान्यायुधानि दत्वा ग्राम्यजनाय च।

कृषियोग्य औजारों को ग्रहणकर ग्राम्य जनों को प्रदान करने की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए।

---

१. चाणक्य कृत अर्थशास्त्र में खदानों को खोजने की विधि दी गई है। वह भी पर्वतों, भूमि और पूर्व में प्रचलित रही खानों के आधार पर धातुस्थलों का पता लगाने की सलाह देता है।

योद्धार्थप्रहरणजाल निर्देश —

पुर-प्रासाद-दुर्गादि रक्षार्थं च महीपतिः॥ १६२॥
नानाविधप्रहरणजालं योधयेष्वपि क्वचित्।
सेनास्थानेषु च तथा स्थापयेत् पालयेदपि॥ १६३॥

पुर, प्रासाद, दुर्ग-किला आदि की रक्षा के लिए राजाओं को चाहिए कि वे नाना प्रकार के आयुधों को तैयार करवाएँ। सेना के स्थान, संख्या-बलादि को देखते हुए उनके लिए कवच, प्रहरणजाल (बख्तर) आदि तैयार कर उनसे सैनिकों को सन्नद्ध करना चाहिए।

नानाऽलङ्कारादीनां —

जाम्बूनदैश्च रजतैः खनिजैः भूपतिः क्रमात्।
समुद्रवीचीजजनितप्रवालैश्चापि मौक्तिकैः॥ १६४॥
नानाभरणजालानि कल्पयित्वा विशेषतः।
देवेभ्यः प्रथमं दत्वा ब्राह्मणेभ्यस्ततः क्रमात्॥ १६५॥

राजा को स्वर्ण, रजत और अन्य खनिज धातुओं तथा समुद्री लहरों से समुत्थित प्रवाल, मोती से हारादि विभिन्न प्रकार के आभरण बनाने का प्रबन्ध करना चाहिए। इन आभरणों को सर्वप्रथम देवताओं को तत्पश्चात् ब्राह्मणों को प्रदान करना चाहिए।

स्वयं धृत्वा च महिषीं प्रासादप्रमदा अपि।
तैस्तैराभरणैः काममलङ्कृत्य यथाक्रमम्॥ १६६॥
परमानन्दसम्पन्नो रक्षयेच्च महीमिमाम्।

उसे स्वयं भी इन बहुमूल्य आभरणों को धारण करना चाहिए, राजमहिषी या महारानी और राजहर्म्य की अन्य महिलाओं को भी उपयुक्त गहनों से उनके हृदय की सन्तुष्टि के लिए अलंकृत करना चाहिए। इस प्रकार अत्यधिक आनन्द से परिपूर्ण होकर पृथ्वी की रक्षा करने के लिए उद्यत होना चाहिए।

अन्यदप्याह —

एवं भूपस्तत्र तत्र देशे सर्वसुखावहम्॥ १६७॥
संपादयेत्तु विविधद्रव्यजालं तु सर्वतः।

शासक को पूर्वोक्त देशों के सभी स्रोतों से कई प्रकार के ऐसे गहने प्राप्त करने चाहिए क्योंकि ये सभी प्रकारेण प्रसन्नता को देने वाले होते हैं।

कालभेदेन परिवर्तनग्राह्यमाह —

कल्पभेदेन वा कालक्रमेण च महीपतिः॥ १६८॥
कृषिकर्मविकल्पं च बीजावापविकल्पम्।
शीतोष्णस्थानभेदेन विभक्तां च कृषिक्रियाम्॥ १६९॥

समय के परिवर्तन के अनुसार राजा को बीजारोपण के लिए कृषिकर्म के विकल्प और बीजवपन की तकनीक में आए बदलाव को अपनाना चाहिए अर्थात् नई कृषि नीतियों, तरीकों को महत्व दिया जाना चाहिए। ठण्डे एवं गर्म जलवायु के लिए पृथक-पृथक कृषिक्रिया को लागू किया जाना चाहिए।

कृषिकार्यपरिवर्तनहेतवः —

गोप्रचारवशाद् वापि वृष्टिपातक्रमादपि।
जलाधारवशाच्चैवं ज्ञात्वा बहुविधोदयम्॥ १७०॥
कृषिकर्म प्रयुञ्जीत सारक्षेत्रानुसारतः।

गोप्रचारवश या पशुओं के कारण, वर्षा, जलप्रवाह आदि कारणों से कृषि कार्य में परिवर्तन आता है। तद्नुसार राजाओं को मिट्टी की किस्म पर मुख्यतः आधारित करते हुए कृषि के क्रियाकलापों का प्रबंध करना चाहिए।

महीपाले प्रसन्नफलमाह —

महीपाले प्रसन्ने तु सर्वं सिध्यति भूतले॥ १७१॥
महीपालेऽप्रसन्ने तु सर्वं नश्यति निश्चितम्।
तस्मात् राष्ट्रसुभिक्षार्थी प्रसन्नः पृथिवीपतिः॥ १७२॥

यदि शासक प्रसन्न रहता है तो संसार में प्रत्येक वस्तु सिद्ध होती है। यदि राजा अप्रसन्न रहता है तो प्रत्येक वस्तु का विनाश निश्चित जानना चाहिए। अतः देश की समृद्धि के लिए राजा को सदैव प्रसन्न रहना चाहिए।

करादीनामाह —

कृषीवलात् करद्रव्यं पणं वा धान्यमेव वा।
यथाक्रमं च स्वीकृतय भूतलं सचराचरम्॥ १७३॥

राजा के लिए कहा गया है कि वह किसानों से जैसा क्रम निर्धारित किया गया हो, उसके अनुसार निश्चित भोग— करद्रव्य, अन्न, धान्यादि को ग्रहण करे।

स्वकुटुम्बसमं न्याय्यमार्गेण परिरक्षयेत्।

पूर्वोक्त निर्धारित विधि, मानादि से संगृहीत भोग से अपने स्वयं के कुटुम्ब की भाँति पृथ्वी पर निवासरत सभी प्राणियों की सम्पत्ति और जीवन की न्यायमार्ग से रक्षा करनी चाहिए।

तत्रैव चतुवर्णाकर्तव्यमाह —

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्येऽपि मानवाः।
कृषिक्रियासाह्यमारात् नृपात्स्वीकृत्य भक्तितः॥ १७४॥

ब्राह्मणों, क्षत्रियों, धनिकों या वैश्यों, शूद्रों और अन्य सभी प्रजाजनों को चाहिए कि वे राजा से विनम्रता पूर्वक कृषिकार्य के निमित्त सहायता स्वीकार करे।

यथाकालं यथाचारं सम्पाद्य च कृषिं भुवि।
करद्रव्यं च दत्वा ते राष्ट्रक्षेमाभिवृद्धये॥ १७५॥

उक्त सहायता के साथ ही यथाकाल मौसम और प्रथा के अनुसार बदले में कृषि कार्य का श्रेष्ठ संपादन करना चाहिए और प्राप्त उपज से देश की भलाई के लिए राजा को नकद या वस्तु के रूप में निश्चित करों को अदा करना चाहिए।

देवानागन्तुकान स्वीयकुटुम्बं च यथाक्र मम्।
पोषयित्वा विशेषेण धर्मो मार्गो यथोदितः(नः?)॥ १७६॥
तथा शक्त्या रक्षयेयुः यशोमण्डित दिङ्मुखाः।

इसी प्रकार उन्हें यथाक्रम से देवताओं, अतिथियों और उनके स्वयं के परिजनों के प्रति कर्तव्य को पूरा करना चाहिए और अपनी सर्वोत्तम योग्यतापूर्वक सन्तों द्वारा निर्धारित धर्म के मार्ग को ग्रहण करना चाहिए।

एवं ग्रामे-जनपदे-नगरे वा विशेषतः॥ १७७॥
परस्परस्नेहभाजः प्राप्तभूपालसाह्यकाः।
वर्णाश्रमक्रियाशक्ताः लसन्तु क्ष्मातले भृशम्॥ १७८॥

इस प्रकार ग्राम, जनपद एवं विशेषकर नगर के निवासियों, जो राजकीय सहायता प्राप्त कर रहे हैं, को पारस्परिक सद्भाव का पोषण करना चाहिए। उन्हें अपने-अपने वर्ग के कर्त्तव्यों को पूरा करने में सक्षम होना चाहिए तथा अपनी सफलता से इस पृथ्वी पर दैदिप्यमान होकर सभी भागों को महिमामय करना चाहिए।

इति काश्यपीयकृपिसूक्तौ शाकादि कृषिक्रमकथनं नाम द्वितीयो भागः॥ २॥

इस प्रकार काश्यप मुनि विरचित काश्यपीय कृषि सूक्ति ग्रन्थ के अन्तर्गत शाक-सब्जी इत्यादि कृषि क्रम कथन नामक द्वितीय भाग पूर्ण हुआ॥ २॥

*****

अथ तृतीयो भागः

॥ भोज्याभोज्यक्रमकथनम्॥

तत्राद्भोज्याभोज्यक्रमाह काश्यप उपदिशति —

नृपाज्ञया चोदितास्तु ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः।
अन्ये चापि यथाकालं सारक्षेत्रे विशेषतः॥ १॥
कृत्वा कृषिं बहुविधामेवं निर्दिष्टरीतितः।

यहाँ खाद्य एवं अखाद्यों का क्रमानुसार स्पष्टीकरण दिया जा रहा है। काश्यप कहते हैं कि शासक के आदेशानुसार कार्य करने वाले सभी वर्ग के व्यक्तियों- ब्राह्मणों, क्षत्रियों, शूद्रों और अन्य को भिन्न-भिन्न फसलें, उपजाऊ भूमि में, दर्शायी गई रीति से उत्पन्न करनी चाहिए।

धान्यानां विविधानां च राशिमाढकराशिकम्॥ २॥
मरीची-सर्षपादीनां राशिं स्वगृहमानयेत्।

निर्धारित रीति के अनुसार खेती किए जाने पर ही किसान, कृषिकर्मकर्ता विभिन्न प्रकार के चावल और अन्य धान्यराशि जैसे अरहर, मिर्ची, सरसों इत्यादि की भरपूर उपज लेकर अपने गृह को भर सकते हैं।

पाककार्यं कर्तव्यमाह —

आतपे शोषयित्वा तान् यथाकालं यथाक्रमम्॥ ३॥
सज्जीकुर्युस्तु पाकायप्रत्यहं देवतुष्टये।
साध्वीभिः पाककार्यं तु कर्तव्यं देवशासनात्॥ ४॥

उक्त फसलों को धूप में सुखाना चाहिए और मौसम के अनुसार व उचित क्रम से पकाने के लिए तैयार करनी चाहिए। यहाँ ईश्वर की प्रसन्नता स्मरणीय है, इसके लिए पवित्र, साध्वी नारियों को ईश्वर द्वारा निर्दिष्ट तरीके से खाने के भाग को निष्पादित करना चाहिए या उनके लिए नैवेद्य भी निकालना चाहिए।

देवानातिथीनांसत्कारफलम् —

देवानामतिथीनां च सत्कारः सफलो भवेत्।
ततः प्रजारक्षणं च निश्चितं तु मुनीश्वरैः॥ ५॥

यदि देवताओं और अतिथियों का सम्मान सफलता पूर्वक किया जाता है तो इससे निश्चय ही प्रजा की रक्षा होगी, ऐसा मुनीश्वरों का मत है।

अन्यदप्याह —

धर्मविद्ब्राह्मणस्तस्मात् द्रव्याणां बहुरूपिणाम्।
भोज्याभोज्यक्रमं ज्ञात्वा पाके साध्वीं नियोजयेत्॥ ६॥

इसलिए धर्मज्ञ ब्राह्मणों को चाहिए कि वे विभिन्न तत्त्वों के भोज्याभोज्यक्रम के नियमों को जानकर साध्वी महिलाओं को पाककार्य या रसोई के कार्य में नियुक्त करें।

तत्रैव न देवब्राह्मणार्हकमाह —

पील्वन्नं कोद्रवान्नं च न देवब्राह्मणार्हकम्।
शुभं च श्वेतवातार्कं लशुनं ग्रञ्जनं तथा॥ ७॥

पील्वन्न और कोद्रव जैसे अन्न देवताओं और ब्राह्मणों को अर्पित करने के लिए उपयुक्त नहीं माने गए हैं। इसी प्रकार शुभ, श्वेत बैंगन, लहसुन और गाजर को भी अर्पण नहीं किया जाना चाहिए।

अन्यदपि —

पलाण्डुं कवकं चैव निर्यासं च तथा क्रमम्।
अभक्ष्यं च ब्राह्मणानां कुस्थलाप्रभवानि च॥ ८॥

प्याज, कवक या कुकुरमुत्ता, गोंद सहित और भी कोई गन्दे स्थान पर उत्पन्न वस्तुओं को ब्राह्मणों को टाल दिया जाना चाहिए।

अन्यदपि —

बृहत्कूष्माण्डकं वापि पन्नां शिग्रुं च पीलुकम्।
वर्जयेत् ब्राह्मणस्तत्र चास्थलप्रभवं तथा॥ ९॥

इसी प्रकार अनुचित स्थलों पर उत्पन्न बृहत्कुष्माण्ड या मोटा कद्दू, पन्ना, शिग्रु, पीलुक आदि को भी ब्राह्मणों को त्याग देना चाहिए।

अन्यदपि —

पिपीलिकामक्षिकाद्यैः कृमिभिश्चापि यत् गृहे।
दूषितं तच्चान्नमुख्यं वर्जयेत् यत्नतो द्विजः॥ १०॥

घर में चींटियों, मक्खियों, कृमियों आदि द्वारा दूषित कर दिए गए भोजन के मुख्य पदार्थों को भी प्रयत्नपूर्वक त्याग दिया जाना चाहिए।

अन्यदपि —

सारमेयैः कुक्कुटाद्यैः दुष्टमन्नं तथैव च।
विश्वासहीनं दत्तं च दूषितं तु नखादिभिः॥ ११॥

कुत्तों, कौओं आदि द्वारा झूठे किए गए अन्न सहित अविश्वसनीय, दुष्टों द्वारा दिए गए, परोसे गए और नाखूनों द्वारा कुतरे गए खाद्यपदार्थों व वस्तुओं को भी अस्वीकार करें।

अन्याऽवगुणामाह —

तुषतन्त्वादिदुष्टं च द्विजोऽन्नं परिवर्जयेत्।
मार्जारैर्दूषितं यच्च यदघ्रातं च वेश्मनि॥ १२॥
चुचुन्दरीमूषकाद्यैः यच्चान्नाद्यं हि दूषितम्।
तत्सर्वं वर्जयेद्यत्नात् ब्राह्मणस्तु विशेषतः॥ १३॥

विशेष रूप से ब्राह्मणों को भूसी अथवा चोकर के तन्तुओं द्वारा दूषित अथवा चारे-भूसेदार, बिलाव द्वारा खराब, चूहों और छुच्छुन्दर द्वारा खराब किए गए खाद्य को सावधानी पूर्वक त्यागने का उपक्रम करना चाहिए।

अन्नाद्यं नीचदुष्टं तु घ्रातं तु वा क्वचित्।
स्पष्टं वा न तु भुञ्जीत श्रेयोऽर्थी सर्वतः क्षितौ॥ १४॥

इसी प्रकार सभी प्रकार से विचार करते हुए यह जाने कि आनन्दाभिलाषी व्यक्तियों को दुष्टों द्वारा दूषित, सूंघे गए और यहाँ तक कि छुए गए भोजन को भी नहीं करना चाहिए।

अन्यदप्याह —

अशुद्धस्थलदत्तं(त्तां?) च सर्वं तच्च विवर्जयेत्।
कवलादवशिष्टं च चास्यात् पतितमेव च॥ १५॥

अशुद्धस्थलों पर मिला या परोसा गया, मुँह से गिरा हुआ एवं जुठा बचा हुआ खाद्य सभी को त्याग देना चाहिए।

अभक्ष्यमाहुर्मुनयः यशसे क्षेमसिद्धये।
अदत्तमतिथिभ्यश्च देवताभ्यो विशेषतः॥ १६॥

जो भी भोजन अतिथियों और विशेष रूप से देवताओं को प्रथमतः अर्पण नहीं किया गया हो, यश देने वाला नहीं हो या क्षेम की सिद्धि करने वाला नहीं हो, तो सन्तों का कथन है कि वह खाने की दृष्टि से अनुपयुक्त होता है।

अन्यदपि —

अकालदत्तं च तथा यदन्नाद्यं गृहादिषु।
अस्थले च तथा पक्वं जलेनाक्षालितं तथा॥ १७॥
अन्नं वा शाकराशिं वा भक्ष्यं वा खाद्यमेव च।
अभक्ष्यमेव निर्दिष्टं ब्राह्मणानां विशेषतः॥ १८॥

अकाल समय या गलत समय पर दिया गया भोजन, अनुचित स्थान पर पकाया गया भोजन, पानी से नहीं धोये गए खाद्य पदार्थ चाहे वे तरकारी ही हो या भोजन के कोई भाग हो, विशेष तौर पर ब्राह्मणों को खाने के लिए मनाही की गई है।

अन्यदप्याह —

अकुलीनेन पक्वं च मलमूत्रादिदूषितम्।
रोमादिदूषितं यच्च स्वेनादौ भक्षितं तथा॥ १९॥
अस्नातपक्वं च तथा वर्जयेत् भोजनादिकम्।

अकुलीन या निम्न कुल में उत्पन्न व्यक्तियों द्वारा पकाया गया आहार, मल से दूषित आहार, मूत्र आदि या रोग-केशादि से दूषित आहार, ऐसा आहार जो स्वयं रसोइये द्वारा खाया गया हो और ऐसा आहार जो बिना नहाने रसोइये द्वारा पकाया गया हो, नहीं खाना चाहिए।

अन्यदप्याह —

हस्तदत्तं चापसव्यकरदत्तं च यत् तथा॥ २०॥
अयः खण्डेन दत्तं वा दारुखण्डकरण्डकैः।
तथा पर्युषितं चान्नं वर्जयेत् द्विजसत्तमः॥ २१॥

अच्छे ब्राह्मण को ऐसा भोजन नहीं करना चाहिए जो हाथ से परोसा गया हो।

दाहिने कंधे के ऊपर और बाँये हिस्से की ओर पवित्र धागा या जनेऊ लटका हुआ हो, लोहे के पात्र के साथ दिया गया हो या लकड़ी के टुकड़ों से निर्मित संदूक से दिया गया हो व इसी प्रकार बासी हो।

गृहान्तरे तु यत् पक्कमानीतं स्वगृहं ततः।
तच्चा भोज्यमिहादिष्टं मुनिभिः शास्त्रपारगैः॥ २२॥

शास्त्रों में निपुण सन्तों के लिए ऐसे भोजन की मनाही की गई है जो स्थानान्तरित हो अर्थात किसी दूसरे मकान में पकाया गया हो और बाद में किसी अन्य के मकान पर लाया गया हो।

निशाकाले दधिवर्जयेत् —

दध्यन्नं च तिलान्नं च रात्रौ भुञ्जीत नो द्विजः।
चन्द्रिकाभोजनं चैव प्रदीपेन विवर्जिते॥ २३॥

किसी को भी रात्रि में दही मिश्रित आहार नहीं करना चाहिए और तिल मिश्रित भोजन भी नहीं करें। चांदनी रात्रि में दीपक के बिना भोजन की मनाही है।

स्थले च भोजनं तद्वत् भोजनं तमसि क्रमात्।
निन्द्यन्मेतच्च निर्दिष्टं मुनीन्द्रैश्च सुरैरपि॥ २४॥

इसी प्रकार स्थल या फर्श पर, अंधेरे में भोजन करना निन्दनीय है जैसा कि महान् सन्तों और देवताओं का कथन है।

जलविचारमाह —

सफेनं च जलं तद्वत नद्यादेः प्रथमोदकम्।
आकाशात् पतितं तोयं धारासलिलमेव च॥ २५॥
अस्पृश्यैः स्पृष्टतोयं च यत्नतो वर्जयेत् बुधः।

इसी प्रकार ज्ञानी जनों को झाग वाला या फेनिल पानी, नदियों में आया पहला पानी, नभ से तत्काल गिरा हुआ पानी, किसी धार का पानी और किसी अस्पृश्य के सम्पर्क में आये पानी को सावधानी पूर्वक टाल दिया जाना चाहिए।

उष्ट्रक्षीरं चैकशफक्षीरं द्विखुरजं तथा॥ २६॥
क्षीरं सलवणं तद्वत युवतिक्षीरमेव च।
वत्सप्रहीनगोक्षीरं वत्सान्तरविनिस्त्रु(! स्त्र)तम्॥ २७॥
गोक्षीरं च तथा लोके ह्यजाक्षीरं च दूषितम्।

दुग्धं च ताम्रविन्यस्तं वर्ज्यं निन्द्यं च तद्विदुः॥ २८॥

ऊँटनी का दूध, पूरे खुर या फटे खुर वाले जानवरों का दूध, नमक मिश्रित दूध, युवती का दूध, ऐसी गाय जिसके बछड़ा नहीं हो या बछड़े के बाद बाखड़ी हो, बकरी का अशुद्ध दूध और ताम्रपात्र में रखे गए दूध को नहीं पीना चाहिए, यह निन्दनीय है।

अन्यदप्याह —

अतस्तु श्रोत्रियो विप्रः धर्मवित् ब्राह्मसिद्धये।
भोज्याभोज्यक्रमं ज्ञात्वा पाकं कुर्याद्यथाविधि॥ २९॥

इसलिए एक विद्वान ब्राह्मण को खाद्य व अखाद्य के बारे में पवित्र नियमों की जानकारी करके ही नियमानुसार ही आहार पकाना चाहिए क्योंकि इससे उसको श्रोत्रिय कर्म में मदद मिलती है।

अन्यदपि —

क्षत्रियाणां च वैश्यानां शूद्राणामपि भूतले।
नोक्तः स एष नियमो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥ ३०॥
मांसभोजनमप्येषां न दोषायेति निश्चितम्।

वस्तु की आवश्यक प्रकृति को दृष्टिगत रखते हुए, सन्तों ने यह नियम क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों के लिए, इस संसार में निर्धारित नहीं किया है, उनके निर्णयानुसार मांस भक्षण भी उनके लिए अनुचित नहीं है।

ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्याः शूद्राश्चान्येऽपि भूतले॥ ३१॥
भोज्याभोज्यक्र मं ज्ञात्वा देशाचारप्रमाणतः।

वास्तव में इस पृथ्वी पर निवास करने वाले ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों और अन्य सभी को योग्य और अयोग्य भोजन के सम्बन्ध में बनाए गए नियमों को जानना चाहिए और इस विषय में सम्बद्ध क्षेत्र के आचार-अनुमोदित नियमों की जानकारी भी होनी चाहिए।

देवतायार्पितं पूर्वं भुञ्जन्तस्तदनन्तरम्॥ ३२॥
धूतपापाश्च काशन्ते श्रद्धाभक्तिगुणोज्ज्वलाः।

यदि वे ईश्वर को अर्पण करने के बाद भोजन करते हैं तो उनके पाप निवृत्त हो जाएँगे और विश्वास और भक्ति के गुणों से प्रकाशित जीवन बिताएँगे।

अन्यदपि —

तस्मात्सर्वत्र देशेषु ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा॥ ३३ ॥
वैश्याश्च शुद्धद्रव्याणि तण्डुलादीनि नित्यशः।
शाकद्रव्याण्यपि तथा पावनानि नवानि च॥ ३४॥
जलं दुग्धं दधि घृतं नवनीतमथापि वा।
तैलं च पत्रवर्गं च पात्राणि च यथाक्र मम्॥ ३५॥
स्वयं वा स्वीयपत्नीभिः साध्वीभिः स्वस्ववेश्मनि।
गोमयालिप्तभूभागे शुद्धां शुक्लीं च सेन्धनाम्॥ ३६॥

इसलिए सभी देशों में ब्राह्मणों, क्षत्रियों एवं वैश्यों को अपने-अपने गृहों में शुद्ध वस्तुएँ जैसे तंदूल या चावल, तरकारियाँ, पानी, दूध, दधि, घी, शुद्ध मक्खन, तेल जो सभी शुद्ध व साफ हो, लानी चाहिए। तत्पश्चात् उन्हें स्वयं या उनकी पत्नियों को बर्तनों को साफ करना चाहिए। खाने के फर्श को गाय के गोबर से लीपना-पोतना चाहिए और चूल्हे को ईंधन से पवित्र करना चाहिए।

इत्यमनन्तर पूजाकर्तव्यमाह —

पूजयित्वा विशेषेण भूमिं वासवमेव च।
यमं चाग्निं च वरुणं ब्रह्माणं च विशेषतः॥ ३७॥

तब उन्हें विशेष रूप से पृथ्वी, इन्द्रदेव, यम, अग्नि, वरुण तथा ब्रह्मा की पूजा करनी चाहिए।

अन्यदपि —

पाकं कृत्वा यथाकालं भाण्डैश्चापि घटादिकैः।
ततः शुद्धस्थले स्थाप्यं षड्रसादि समुज्ज्वलम्॥ ३८॥

समय में पकाने के कार्य को पूर्ण करके षट्रस स्वाद से युक्त खाद्य पदार्थ आदि को शुद्ध किए गए स्थान पर रखना चाहिए।

भक्ष्यं भोज्यं च विविधं वटकादिकमेव च।
पाकशास्त्रोक्तमार्गेण पक्कं तैलघृतादिभिः॥ ३९॥
शर्कराद्यैगुडैना(र्गुर्ना?)ना व्यञ्जनादिभिरन्वितम्।
तेमनाश्चैश्च विविधैः सोपस्कारैविशेषतः॥ ४०॥

विभिन्न खाद्य पदार्थ, भोजन जिसके साथ प्रशंसनीय व्यञ्जन एवं सहायक

विशेष खाने हों जैसे वटाका (बड़े) आदि को चीनी, गुड़ आदि के साथ भिन्न-भिन्न तरीकों जैसे स्वादिष्ट बनाने, भिगाने, मसलने आदि पाक विज्ञान के निर्देशों के अनुसार तेल, घी आदि में पकाना चाहिए।

अन्यदप्याह —

पक्वं श्रद्धाप्रीतिपूर्वं यथाकालं यथाक्रमम्।
स्थापयेयुर्देवतार्चास्थले वेश्मनि वा पुनः॥ ४१॥
पिटकादिषु भाण्डेषु पूरयेयुर्यथोचितम्।
निवेदनाय देवानां तदेतच्छास्त्रचोदितम्॥ ४२॥

इस प्रकार भक्ति व प्रेम से समय पर पकाये गए भोजन को मन्दिर में देवता की प्रतिमा के समक्ष में रखना चाहिए या डबूसों-मञ्जूषाओं, छबरियों में देवताओं को अर्पण करने के लिए ढँग से भरकर रखना चाहिए। ऐसा संहिताओं में निर्देशित किया गया है। यह अवश्य ही पालनीय है।

इति काश्यपीयकृषिसूक्तौ भोज्याभोज्य क्रमकथनं नाम तृतीयो भागः॥ ३॥

इस प्रकार काश्यप मुनि विरचित काश्यपीय कृषि सूक्ति ग्रन्थ के अन्तर्गत भोज्य-अभोज्य क्रम कथन संज्ञक तृतीय भाग पूर्ण हुआ॥ ३॥

*****

अथ चतुर्थो भागः

॥ विविधहव्यनिवेदनक्रमकथनम्॥

काश्यप उपदिशति —

पाकक्रिया तु द्विविधा नित्य-नैमित्तिक क्रमात्।
नित्यं तु नित्यं देवेशदृष्टिपातादि योग्यकम्॥ १॥
नैमित्तिकं च तद्वत्स्यात् पात्रभेदस्तु तत्र हि।

अब काश्यप मुनि नाना प्रकार के हव्यों के विषय में क्रमानुसार कथन करते हैं। पाकक्रिया दो प्रकार की हैं : नित्य नियमित और नैमित्तिक अथवा आवसरिक।

नित्य अथवा नियमित क्रिया वह है जो देवताओं के दृष्टिपात के योग्य होती है और नैमित्तिक भी इसके समान ही है किन्तु वह पात्र या विशिष्ट-व्यञ्जन भेद के साथ होती है।

हव्यकव्यञ्च —

देवार्हं भोज्यजालं तु हव्यमित्यभिधीयते॥ २॥
इदमेवातिथीनां च प्रजानां शास्त्रचोदितम्।

हव्य उन सभी खाद्य पदार्थों को कहा जाता है जो कि ईश्वर को अर्पण करने के निमित्त उपयुक्त होते हैं। यही नियमों द्वारा अतिथियों और अन्य प्रजाजनों के लिए शास्त्रों द्वारा निर्दिष्ट है।

भोज्यमित्येवमादिष्टं कव्यं पितृनिवेदितम्॥ ३॥
तत्तु स्वबन्धुभिर्भोज्यं शास्त्रज्ञैः समुदीरितम्।

अतिथियों व प्रजा के लिए उपयुक्त खाद्य को भोज्य नाम से जाना जाता है जबकि जो खाद्य सामग्री पितरों को निवेदित की जाती है वह भोजन सामग्री कव्य नाम से जानी जाती है और इसको किसी व्यक्ति के स्वबन्धुओं के साथ सेवन किया जाता है, जैसा कि शास्त्रज्ञों का कथन है।

नानादेवेशरूपमाह —

देवेशरूपं विविधमादिष्टं पूजनार्हकम्॥ ४॥
शिवलिङ्गस्वरूपं च शालग्रामशिलात्मकम्।

पूजान्तर्गत आराधना के लिए देवेश या भगवान् की मूर्तियाँ अनेक प्रकार की होती है। ये शिवलिङ्ग के स्वरूप में (शिव[1]) और शालग्राम के स्वरूप में (विष्णु की[2]) हो सकती है।

---

१. प्रतिष्ठालक्षणसारसमुच्चय में (स्थापना के आधार पर) लिंग दो प्रकार के बताए गए हैं— १. चल और २. अचल। चललिंग रत्नों के होते हैं और धातु से बने लिंग चल और अचल दोनों हो सकते हैं। सुवर्ण के बने लिंग स्थिर लक्ष्मीप्रद होते हैं और चाँदी के बने लिंग राज्य का लाभ देने वाले होते हैं। ताँबे के बने लिंग प्रजा की वृद्धि करते हैं। वँग के बने लिंग आयु की अभिवृद्धि करते हैं। काँसे के बने लिंग विद्वेषकारक होते है तथा रीतिज या पीतल के बने लिंग शत्रुनाशक माने गए हैं। लिङ्गं च द्विविधं ज्ञेयं चलं चैवाचलं तथा॥ चलं वैरत्नजं प्रोक्तं धातुजं च चलाचलम्। स्थिरलक्ष्मीप्रदं हैमं राजतं चैव राज्यदम्(भृत्!)॥ प्रजावृद्धिकरं ताम्रं वाङ्गमायुः प्रवर्धनम्। विद्वेषकारकं कांस्यं रीतिजं शत्रुवालनम्॥ (प्रतिष्ठालक्षणसारसमुच्चय १, २८-३०)

२. अग्निपुराण, नृसिंहपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, स्कन्दपुराण एवं पद्मपुराण में शालग्राम-शिला या विष्णुशिला का वर्णन मिलता है। इनको हरिभक्तिविलासकार ने भी उद्धृत किया है। देवतामूर्तिप्रकरण के अनुसार शालग्राम,

तत्रैव देवपूजनमाह —

धातृ(तु?)र्विष्णोश्चावतारभेदं ज्ञात्वा द्विजोत्तमः ॥ ५ ॥
क्षत्रियो वा वैश्यकश्च यथाशक्ति विधानतः ।
सान्ध्यकर्म तु निर्वर्त्य देवपूजां प्रकल्पयेत् ॥ ६ ॥

विधाता और विष्णु के नाना अवतारों को जानने के बाद, विद्वान ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों को यथाशक्ति विधान पूर्वक सन्ध्याकर्मादि से निवृत्त होकर शास्त्रीय विधि से ईश्वर की पूजा करनी चाहिए।

राजोपचारवत्तत्तुसकलं शास्त्रचोदितम् ।
गण्डूषाचमनाद्यं तत् स्नानवस्त्रादिधारणम् ॥ ७ ॥

ईश्वरार्चना में अर्पित की गई प्रस्तुत सकल वस्तुएँ राजा के लिए किए जाने वाले उपचारों के समान ही हैं। जैसे कि कुल्ले करना, आचमन करना, स्नान, वस्त्र निवेदन आदि धार्मिक कृत्य होते हैं।

देवार्थ नानान्नकथनमाह —

भोज्यासनं प्रकल्प्याथ श्रद्धाभक्तिसमन्वितम् ।
साध्वीभिः पक्वमन्नादिविविधं भोज्यमुत्तमम् ॥ ८ ॥
समर्पयेत् देवतृप्त्यै नाना व्यञ्जनशोभितम् ।
गुडान्नं पायसान्नं च तिलान्नं च तथैव च ॥ ९ ॥

श्रद्धा और भक्ति से युक्त होकर उचित स्थान पर खाद्य पदार्थों को रखकर प्रत्येक व्यक्ति को साध्वी स्त्रियों द्वारा तैयार की गई विविध उत्तमोत्तम खाद्य सामग्री को समर्पित करना चाहिए। देवताओं की तृप्ति के लिए गुड़-मिश्री, दुग्ध तथा तिलादि से बने नैवेद्य को अर्पित करना चाहिए।

वासुदेव, संकर्षण, पद्मुग्र, अनिरुद्ध, लक्ष्मीनारायण, मधुसूदन, दामोदर, लक्ष्मीनरसिंह, हरि, नरसिंही, कपिल नरसिंह, सुदर्शन, हयग्रीव, मत्स्य, जनार्दन, कूर्म, वराह, नरसिंह; वामन, जामदग्न्य या परशुराम, कौशल्यानन्दन, बुद्ध और कल्कि या खड्गासन नाम से परीक्षेय बताए है। पद्मांकिता शिला पर एक चक्र व दक्षिणावर्त संस्थित होता है तथा वह चतुर्लाञ्छन से युक्त होती है। यह भोग मोक्ष प्रदायिका होती है। (देवतामूर्तिप्रकरणम् ५, ४१-४२)

'ब्रह्मवैवर्त्तपुराण' में छत्राकार, वर्तुलाकार, शकटाकार, शूलाकार, विकृतमुखा, पिंगलवर्णा, भग्नचक्र, विकीर्ण शालिग्राम का नामोल्लेख है जो क्रमशः राज्य, प्रचुरधन, दुःख, मृत्यु, दरिद्रता, हानि, व्याधि, मरणप्रद माने गए हैं। शालग्राम में विश्वकर्मा सहित सभी देवता नित्य स्थित बताए गए हैं, इसलिए उसका प्रतिष्ठाकार्य नहीं होता, किन्तु शालिग्राम की सन्निधि में व्रत, दान, श्राद्ध व प्रतिष्ठाकर्म करने से सर्वोत्तम हो सकते हैं। (उपर्युक्त ५, ६१)

दध्यन्नमथ मुद्गान्नं अपूपं वटकं तथा।
गोधूमवटकं तद्वत् पोलिकां माजकामपि॥ १०॥
मोदकं शर्कराबन्दिद्राक्षैलादि समन्वितम्।
कुङ्कुमद्रव्यसंयुक्तं घनशर्करकान्वितम्॥ ११॥

इसी प्रकार दधि-चावल, मूँग मिश्रित चावल, अपूप (मालपुए), वटक (दहीबड़े), गेहूँ के वटक (गेहूँबड़े), पोलिका (पोलीपूरी, फुलके), माजक, मोदक (लड्डू), शर्कराबंदी (शकरपारा), द्राक्षा के साथ इलायची, कुङ्कुम या केसरादि द्रव्य और मिश्री सहित ईश्वर को अर्पित करनी चाहिए।

पयोगलकबन्दी वा विचित्रान्नमथापि च।
युक्त्या पाकक्रमप्राप्तं मधुरं कालयोग्यकम्॥ १२॥

पयोगलबन्दी (विशेष युक्तियों से तैयार किए गए), विचित्र प्रकार के अन्नों और ऋतु के क्रमानुसार तैयार मिठाइयों को भी ईश्वर को अर्पित करनी चाहिए।[१]

डलनिर्माणक्रमाह —

मांपतण्डुलसम्मिश्रं लवणादिरसोज्ज्वलम्।

---

१. मध्यकालीन ग्रन्थों में व्यंजनों के नाम प्रमुखता से मिलते हैं। एकलिंगपुराण में ये नाम आए हैं— नैवेद्य सामग्री में पायस (खीर), संयाव (गेहूँ के दलिए की खीर), लड्डू, पूड़ी, बड़ा, खाँड के मण्डक (माँडा), क्षीर के मोदक (फीके मांडे), अपूप (काली रोटी, मालपूए), पोलिका (फुलके), खाद्य (खाजे), सोहाली (सुंहालियाँ, पापड़ी), घृतपूरक (घेवर), सूखापूपक संज्ञक मण्डक (सुखापूए के मांडे), घारिका, खण्डवर्तिक (खाँड के डंकेल्या), इन्दुरसा, टूटिरी (ठोठड़ी), करंचका (गुँजा), कर्पूरनाल (कमल नाल), ललतप्राशक, सम्यक् निष्पन्न रोटी, फेन (फीणी) और मुर्मुर (मुर्मरी)— पायसं चाथ संयावं लड्डुकाः पूरिका वटाः॥ खण्डमण्डकनामानि क्षीरमोदकमेव च। अपूपं पोलिका खाद्यं सोहाली घृतपूरकम्॥ सुखापूपकसञ्ज्ञं च मण्डकानि च घारिका। खण्डवर्त्तिकमिन्दूरं टूटिरी च करञ्चकाः॥ कर्पूरनलिका चैव ललतप्रासिकसञ्ज्ञकम्। सम्यङ्निष्पन्नरोटी च फेनसञ्ज्ञं च मुर्मुरम्॥ (एकलिंगपुराण १९-७३-७६)
भगवान् विष्णु और वैष्णवों को प्रिय मिष्ठान्न, व्यंजनों की सूची गर्गसंहिता में आई है। शष्कुली (झकोलमा पूड़ी), घृतपूर (घेवर), फेणिका (तारफीणी), सुशक्तिका (विशिष्ट सब्जियां), सुपटिका (चटनी, मुरब्बा), दधिपूप (दहीबड़े) और सोहारी या सिवइयां। इनमें से कई वे हैं जिनका नाम नए हैं। इनमें से कोई भात मालती के फूल जैसा बनता था तो बूंदी के लड्डू भी गूलर के फल के समान बनते। खीर और फेणियां चंद्रमा का बिंब दिखाई देती थी। पापड़-फेणिका (खाजे) पलाश के पत्ते जैसे दिखाई देते और मधुशीर्षक (बालूशाही) नामक मिष्ठान्न आम का फल जैसा बनता। मीठा चूरन व शक्कर बालू के रूप में लगती— सच्छष्कुली पायस तण्डुलाभैःसंयावकापूप सुसूपकाद्यैः। सत्फेणिकाद्यैस्तु निमन्त्र्यविप्रान्सम्भोजयामास-विशेषमन्नम्॥ शिखरणी घृतपूर सुशक्तिकाः सुपटिनी दधिपूपक लप्सिकाः। सुवृतसुन्दर चन्द्रसुहालिका बटुक मोदक पर्पटकैरदात्॥ मोदकाँश्चद्विजाः केचिदुदुम्बर फलानि च॥ पायसं फेणिकां दृष्ट्वा चन्द्रबिम्बं च मेनिरे। पर्पटान्फेणिकादृष्ट्वा पत्राणि किंशुकस्यवै। मेनिरेऽर्क फलानीति दृष्ट्वा च मधुशीर्षकान्। प्रलेहिलां लप्सिकां च ऋषयश्चन्दनद्रवम्। दृष्ट्वा ते मिष्टचूर्णं वै वालुकां मुनिसत्तमाः॥ (गर्गसंहिता अश्वमेधखंड, 57, 1-3 एवं 6-9)

डलं महाडलमपि पाकप्राप्तं घृतान्वितम्॥ १३॥
तदेव दध्यन्वितं वा सघृतं च सशर्करम्।
सुधारससमं पक्वं डलं च विविधाकृति॥ १४॥

दाल आदि को नमक आदि से स्वादिष्ट बनाया जाता है और चावल और उड़द के मिश्रण से तैयार किया जाता है। घी के साथ तैयार महादाल बनानी चाहिए। इसको दधि और चीनी के साथ अर्पित की जा सकती है। सुधा रस की भाँति दाल को नाना प्रकार से तैयार किया जा सकता है।

जालेपिकनिर्माणमाह —

शार्करं जालेपिकं वा मुद्गगोधमसंयुतम्।
सघृतं माषसम्पन्नं अथवा तत्प्रकल्पयेत्॥ १५॥

जलेबी या जालेपिक को मूँग, गेहूँ या उड़द (के आटे को खटाकर) से घी में तलकर तैयार किया जाता है और फिर शक्कर की चाशनी पिलाई जाती है।

षड्रसस्वादमाह —

मधुरं लवणं तद्वत् कटु तिक्तं तथाम्लकम्।
क्वचित् तुवरकं वापि षड्रसं द्रव्यमीरितम्॥ १६॥

खाद्य पदार्थों के छह स्वाद होते हैं- १. मीठा, २. नमकीन या खारा, ३. कटु, ४. तिक्त या चरका, ५. खट्टा और ६. तुवरक या तूरा। (इसीलिए भोजन को षट्रस कहा जाता है)।[१]

अन्यदप्याह —

गोधूममाषमुद्गानां चणकानां च पिष्टकैः।
डलादिभक्ष्यं विविधं खाद्यं पेयं तथा क्वचित्॥ १७॥

दाल की भाँति ही खाद्य सामग्री गेहूँ, उड़द, मूँग, चना आदि के आटे से तैयार की जाती है। इनमें से कुछ सामग्री खाने वाली होती है, कुछ पीने वाली होती है।

---

१. तुलनीय : मधुरो लवणस्तिक्तः कषायोऽम्लः कटुस्तथा। सन्तीति रसनीयत्वादत्राद्ये षडमी रसाः॥ इन रसों के नामानुसार लक्षणों के लिए निघण्टु में कहा गया है कि मीठा स्वाद गुड़ या ईखादि से जाना जा सकता है। नमकीन सैन्धव इत्यादि नमक से परखा जा सकता है। तिक्त रस पिचुमर्द्दादि से व्यक्त होता है। कषाय व तुवर का रस पूगीफल आदि से जाना जा सकता है। कटु व क्षार संज्ञक रस मरीच इत्यादि से ज्ञेय होता है— मधुरं गौल्यमित्याहुरिक्ष्वादौ स लक्ष्यते। लवणस्तु पटुः प्रोक्तः सैन्धवादौ स दृश्यते॥ तिक्तस्तु पिचुमर्द्दादौ व्यक्तमासाद्यते रसः। कषायस्तुवरस्तूक्तः स च पूगीफलादिषु। कटुस्तु क्षारसंज्ञः स्यान्मरीचादौ स चेष्यते॥ (राजनिर्घण्टु, शब्दकल्पद्रुम, भाग ५, पृष्ठ १८९)

चर्व्यं च क्र मतः पक्वं रसनारुचिदायकम्।
युक्त्या पक्वं यथाकालं तैले वाथ घृतेऽपि वा॥ १८॥

इसी प्रकार कुछ सामग्री चूसने योग्य होती है। घी या तेल में निपुणता पूर्वक तैयार की गई उक्त समस्त सामग्री रसनेन्द्रिय को उत्कृष्ट स्वाद प्रदान करती है।

अन्नाद्यं तेमनाद्यं च तथातिरसमुख्यकम्।
भक्ष्यं च विविधं पक्वं श्रद्धाभक्तिपुरःसरम्॥ १९॥
शुद्धद्रव्यैश्च सम्यक्वं नियमेन महानसे।
एतत्सर्वं भक्ष्यजालं भोज्यादि च यथाक्रमम्॥ २०॥

श्रद्धा और भक्ति से युक्त होकर रसोईघर में शुद्धभाव से नियमानुसार तैयार किए गए चावलादि या तेमनादि और मुख्यतः अतिरस तथा अन्य खाद्य पदार्थ सन्तुष्टि के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। ये सभी खाद्य पदार्थ परोसने के लिए महत्व के माने गए हैं।[१]

देवार्पणविधिः —

भोज्यासननिविष्टाय विष्णवेऽमित तेजसे।
देवार्चनक्र माद्भक्त्या चार्पयित्वा द्विजोत्तमः॥ २१॥

उक्त सभी प्रकार की सामग्री विद्वान ब्राह्मण को शास्त्रोक्त विधि से देवार्चना के अवसर पर समर्पणभाव से भगवान् विष्णु को अर्पित की जानी चाहिए।

---

१. अमरसार नामक ग्रंथ (१५९७-१६२० ई.) में भी व्यंजनों का वर्णन अलंकारिक रूप से हुआ है और कहा गया है कि पाँचों इन्द्रियाँ और सारा शरीर सुन्दर ताजे गन्धयुक्त, रसपूर्ण, मन को हरण करने वाले ताजे बनाए हुए भोजन से पवित्र हो जाता है। फेणिका (तारफीणी), मण्डिका, दहीबड़ा, घेवर, दाड़िम, द्राक्षा, खर्जूर का साग जो आम, नींबू की खटाई से संस्कारित कद्दू से युक्त हो, ऐसा भोजन सुखों का विस्तार करने वाला होता है। कर्णकुण्डल के आकारवाली पूड़ियाँ, मक्खन, खाजे, लड्डू, मालपुए, गोरस दूध से बनी मिठाइयों से थाल सजे हो तो क्या बात हैं! चन्द्रमा की कान्ति के समान धवल श्रेष्ठ चावलों में जब केसर युक्त गाय के घी की धारा बहती तो ऐसे लगता जैसे एक सुन्दर तालाब में अति सुगन्धित चन्द्रपुञ्ज मिलने आ रहा हो। चावलों से उत्पन्न रस की शक्ति से सभी दोषों को समाप्त कर दाल का एक सब्जी से दूसरी सब्जी में संस्कार देने पर ऐसा प्रतीत होता है जैसे व अपने पति से मिलने आई हो— वरवर्णगन्धसुरसैः मनोहरैः सद्यजैः समुत्पन्नः। पञ्चेन्द्रिय तुष्टिहेतुः पूतपाकोमरेशस्य॥ फेणिका मण्डिकावटक सद्घेवरा दाडिमद्राक्षखर्जूरशाकैर्वरा। आम्र-सन्निम्बु कुष्माण्ड संस्कारिणी भुक्तिरस्यास्ति सौख्यौध विस्तारिणी॥ कर्णशब्दकरशष्कुलिकाभि खज्जकैश्चवर-मोदकापूपैः। गोरसैरनुपमैरधिपस्य, पूरयन्त्यशनपात्रमनुज्ञाः॥ चन्द्रकान्तिशितशालिवरान्ने काञ्चनाभंवरगोधृत-धारा। रम्यकेसरततीव सुगन्धा चन्द्रपुञ्जमिलनार्थामिहैताः॥ तण्डुलोत्थमकरन्द सुशक्त्या सर्वदोषमपहाय च दाली। शाकमेववर संस्कृते शाकैः आगतास्वपतिसम्मिलनाय॥ (तत्रैव १, ३५९-३६१, ३६४-३६५)

वरी(वीर?)वस्यां समाप्याथ पुष्पगन्धानुलेपनैः।
चामरव्यजनादीनां वीजनैः स्तुतिभिस्तथा॥ २२॥

उक्त सामग्री भगवान् को पुष्पाञ्जलि, गन्ध व धूप तथा अनुलेपन सहित चामर, पँखे आदि दुलाने व स्तुतिगान के बाद अर्पित की जाती है।[1]

राजोपचारवत्सर्वं देवार्चनमुदीरितम्।
कल्पयित्वा विशेषेण नित्यं नैमित्तिके तथा॥ २३॥

ईश्वरीय पूजा-निवेदन की भाँति ही राजोपचार की विधि कही गई है। दोनों ही स्वामियों को नित्य-नैमित्तिक रूप से उक्त सामग्री-भेंट निवेदित करनी चाहिए।

समये भक्तिवाक्याद्यैः प्रणामादिभिरन्वहम्।
तोषयित्व जगन्नाथं प्रणीताभीष्टदायकम्॥ २४॥

इस प्रकार भक्तों की अभिलाषाओं की पूर्ति करने वाले भगवान जगन्नाथ को प्रसन्न करना चाहिए। प्रतिदिन व नियमित रूप से प्रार्थनाओं, प्रणाम और अन्यान्य क्रियाओं से ईश्वर की प्रसन्नता का प्रयास करना चाहिए।

शुद्धद्रव्यैः कृषिप्राप्तैः पक्वं प्रत्यहमादरात्।
वासुदेवाय कृष्णाय विष्णवे परमात्मने
ततस्त्वतिथिवर्गाय स्वकुटुम्बकाय च क्रमात्॥ २५॥

कृषि से प्राप्त शुद्धद्रव्यों से निर्मित खाद्य सामग्री को प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक वासुदेव, कृष्ण, विष्णु तथा परमात्मा के बाद ही अतिथियों व स्वयं के कुटुम्ब को भेंट करना चाहिए।

भोज्यमन्नं खाद्यवर्गमन्यत्पक्वं महानसे।
विविधं षड्रसोपेतमात्मरक्षणहेतवे॥ २६॥

प्रत्येक को रसोईघर में बनाए गए षट्रस स्वादों वाले भोजन व सभी प्रकार के भागों को सुरक्षा के लिए अर्पित किया जाना चाहिए।

अर्पयेत् भोज्यपात्रेषु कदलीप्रमुखेषु च।
भोजयित्वा विशेषेण प्रीतिपूर्वं द्विजोत्तमः॥ २७॥
सचूर्णं ताम्बूलं च दत्वा तेभ्यो यथाक्रमम्।

---

१. यह पंचोपचार है। एकलिंगपुराण में आया है— धूपदीपैश्च नैवेद्यैः सुमनोभिः सुगन्धिभिः॥ पञ्चोपचारमार्गेण वित्तशाठ्यविवर्जितः। (एकलिंगपुराण १९, ६४-६५)

चर्व्यं च क्र मतः पक्तं रसनारुचिदायकम्।
युक्त्या पक्तं यथाकालं तैले वाथ घृतेऽपि वा॥ १८॥

इसी प्रकार कुछ सामग्री चूसने योग्य होती है। घी या तेल में निपुणता पूर्वक तैयार की गई उक्त समस्त सामग्री रसनेन्द्रिय को उत्कृष्ट स्वाद प्रदान करती है।

अन्नाद्यं तेमनाद्यं च तथातिरसमुख्यकम्।
भक्ष्यं च विविधं पक्तं श्रद्धाभक्तिपुरःसरम्॥ १९॥
शुद्धद्रव्यैश्च सम्पक्तं नियमेन महानसे।
एतत्सर्वं भक्ष्यजालं भोज्यादि च यथाक्रमम्॥ २०॥

श्रद्धा और भक्ति से युक्त होकर रसोईघर में शुद्धभाव से नियमानुसार तैयार किए गए चावलादि या तेमनादि और मुख्यतः अतिरस तथा अन्य खाद्य पदार्थ सन्तुष्टि के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। ये सभी खाद्य पदार्थ परोसने के लिए महत्व के माने गए हैं।[१]

देवार्पणविधिः —

भोज्यासननिविष्टाय विष्णवेऽमित तेजसे।
देवार्चनक्र माद्भक्त्या चार्पयित्वा द्विजोत्तमः॥ २१॥

उक्त सभी प्रकार की सामग्री विद्वान ब्राह्मण को शास्त्रोक्त विधि से देवार्चना के अवसर पर समर्पणभाव से भगवान् विष्णु को अर्पित की जानी चाहिए।

---

१. अमरसार नामक ग्रंथ (१५९७-१६२० ई.) में भी व्यंजनों का वर्णन अलंकारिक रूप से हुआ है और कहा गया है कि पाँचों इन्द्रियाँ और सारा शरीर सुन्दर ताजे गन्धयुक्त, रसपूर्ण, मन को हरण करने वाले ताजे बनाए हुए भोजन से पवित्र हो जाता है। फेणिका (तारफीणी), मण्डिका, दहीबड़ा, घेवर, दाड़िम, द्राक्षा, खर्जूर का साग जो आम, नींबू की खटाई से संस्कारित कद्दू से युक्त हो, ऐसा भोजन सुखों का विस्तार करने वाला होता है। कर्णकुण्डल के आकारवाली पूड़ियाँ, मक्खन, खाजे, लड्डू, मालपुए, गोरस दूध से बनी मिठाइयों से थाल सजे हो तो क्या बात हैं! चन्द्रमा की कान्ति के समान धवल श्रेष्ठ चावलों में जब केसर युक्त गाय के घी की धारा बहती तो ऐसे लगता जैसे एक सुन्दर तालाब में अति सुगन्धित चन्द्रपुञ्ज मिलने आ रहा हो। चावलों से उत्पन्न रस की शक्ति से सभी दोषों को समाप्त कर दाल का एक सब्जी से दूसरी सब्जी में संस्कार देने पर ऐसा प्रतीत होता है जैसे व अपने पति से मिलने आई हो— वरवर्णगन्धसुरसैः मनोहरैः सद्यजैः समुत्पन्नः। पञ्चेन्द्रिय तुष्टिहेतुः पूतपाकोमरेशस्य॥ फेणिका मण्डिकावटक सद्घेवरा दाडिमद्राक्षखर्जूरशाकैर्वरा। आम्र-सन्निम्बु कुष्माण्ड संस्कारिणी भुक्तिरस्यास्ति सौख्यौध विस्तारिणी॥ कर्णशब्दकरशष्कुलिकाभि खज्जकैश्चवर-मोदकापूपैः। गोरसैरनुपमैरधिपस्य, पूरयन्त्यशनपात्रमनुज्ञाः॥ चन्द्रकान्तिशितशालिवरान्ने काञ्चनाभंवरगोधृत-धारा। रम्यकेसरततीव सुगन्धा चन्द्रपुञ्जमिलनार्थामिहैताः॥ तण्डुलोत्थमकरन्द सुशक्त्या सर्वदोषमपहाय च दाली। शाकमेववर संस्कृते शाकैः आगतास्वपतिसम्मिलनाय॥ (तत्रैव १, ३५९-३६१, ३६४-३६५)

वरी(वीर?)वस्यां समाप्याथ पुष्पगन्धानुलेपनैः।
चामरव्यजनादीनां वीजनैः स्तुतिभिस्तथा॥ २२॥

उक्त सामग्री भगवान् को पुष्पाञ्जलि, गन्ध व धूप तथा अनुलेपन सहित चामर, पँखे आदि ढुलाने व स्तुतिगान के बाद अर्पित की जाती है।[1]

राजोपचारवत्सर्वं देवार्चनमुदीरितम्।
कल्पयित्वा विशेषेण नित्यं नैमित्तिके तथा॥ २३॥

ईश्वरीय पूजा-निवेदन की भाँति ही राजोपचार की विधि कही गई है। दोनों ही स्वामियों को नित्य-नैमित्तिक रूप से उक्त सामग्री-भेंट निवेदित करनी चाहिए।

समये भक्तिवाक्याद्यैः प्रणामादिभिरन्वहम्।
तोषयित्व जगन्नाथं प्रणीताभीष्टदायकम्॥ २४॥

इस प्रकार भक्तों की अभिलाषाओं की पूर्ति करने वाले भगवान जगन्नाथ को प्रसन्न करना चाहिए। प्रतिदिन व नियमित रूप से प्रार्थनाओं, प्रणाम और अन्यान्य क्रियाओं से ईश्वर की प्रसन्नता का प्रयास करना चाहिए।

शुद्धद्रव्यैः कृषिप्राप्तैः पक्वं प्रत्यहमादरात्।
वासुदेवाय कृष्णाय विष्णवे परमात्मने
ततस्त्वतिथिवर्गाय स्वकुटुम्बकाय च क्रमात्॥ २५॥

कृषि से प्राप्त शुद्धद्रव्यों से निर्मित खाद्य सामग्री को प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक वासुदेव, कृष्ण, विष्णु तथा परमात्मा के बाद ही अतिथियों व स्वयं के कुटुम्ब को भेंट करना चाहिए।

भोज्यमन्नं खाद्यवर्गमन्यत्पक्वं महानसे।
विविधं षड्रसोपेतमात्मरक्षणहेतवे॥ २६॥

प्रत्येक को रसोईघर में बनाए गए षट्‌रस स्वादों वाले भोजन व सभी प्रकार के भागों को सुरक्षा के लिए अर्पित किया जाना चाहिए।

अर्पयेत् भोज्यपात्रेषु कदलीप्रमुखेषु च।
भोजयित्वा विशेषेण प्रीतिपूर्वं द्विजोत्तमः॥ २७॥
सचूर्णं ताम्बूलं च दत्वा तेभ्यो यथाक्रमम्।

---

१. यह पंचोपचार है। एकलिंगपुराण में आया है— धूपदीपैश्च नैवेद्यैः सुमनोभिः सुगन्धिभिः॥ पञ्चोपचारमार्गेण वित्तशाठ्यविवर्जितः। (एकलिंगपुराण १९, ६४-६५)

द्विजोत्तम को प्रसन्नतापूर्वक कदली के पत्तों से तैयार किए गए भोज्यपात्र (पत्तल-दोने) पर आहार प्रदान करना चाहिए। उन्हें भोजन के बाद पीसी हुई कपूर-कटी हुई सुपाड़ी आदि के साथ ताम्बूल अथवा पानबीड़ा[१] प्रदान करना चाहिए।

एवं नृपाज्ञयालोके द्विजा धर्मविदां वराः॥ २८॥
देवयज्ञं भूतयज्ञं द्वयमत्र महीतले।
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं पालयेत् भक्तिपूर्वकम्॥ २९॥

इस प्रकार प्रजा में पवित्र ज्ञान के ज्ञाताओं में सर्वोत्तम द्विजवरों को राजा के आदेशों की अनुपालना में नियमित रूप से एवं श्रद्धापूर्वक देवयज्ञ और भूतयज्ञ दोनों ही सम्पादित करने चाहिए और इस विश्व में धर्म, यश और भक्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहिए।

कुटुम्बस्य नृपस्यापि राष्ट्रस्य विशेषतः।
क्षेमसिद्धर्थमेवं हि कर्तव्यमिति शास्त्रतः॥ ३०॥
सर्वलोकहितार्थाय काश्यपो मुनि ब्रवीत्।

उसे स्वयं के परिवार, राजा एवं विशेष तौर पर अपने राष्ट्र के हित के लिए पवित्र शास्त्रों के मतानुसार ही क्षेमसिद्धि के लिए कार्य करना चाहिए। मुनि काश्यप ने सभी लोकों की हित की अभिलाषा हेतु यह ज्ञान कहा है।

॥ इति काश्यपमुनिविरचितायां काश्यपीय कृषिसूक्तौ विविधहव्यनिवेदनक्रम कथनात्मकः चतुर्थो भागः॥ ४॥

इस प्रकार काश्यप मुनि विरचित काश्यपीय कृषि सूक्ति ग्रन्थ के अन्तर्गत विविधानेक हव्य निवेदनक्रम कथनात्मक चौथा भाग पूर्ण हुआ॥ ४॥

शुभं भूयात्।

*****

---

१. ताम्बूलमञ्जरी में पानबीड़ा के गुणधर्म बताए हैं— ताम्बूलपत्र वायुदोष का हरण कर लेता है। उसमें प्रयुक्त सुपाड़ी कफ का उन्मूलन करती है। चूना कफ और वात दोष का हरण करता है और खदिरसार या कत्था पित्त नाशक है। इसीलिए लोग सप्रसन्न ताम्बूल के सेवन को प्राथमिकता देते हैं— ताम्बूलपत्राणि हरन्ति वातं पौगं फलं हन्ति कफं च ह्यम्। चूर्णं निहन्यात् कफवातमुच्चैर्हन्याच्च पित्तं खदिरस्य सारः॥ इत्थं हि ताम्बूलमुदाहरन्ति दोषत्रयस्यापि निवारणाय। अतो हि सर्वे सुखिनो मनुष्या अहर्निशं प्रीतिकरं भजन्ते॥ (ताम्बूलमञ्जरी १-२)

सहायक ग्रन्थ सूची

अग्निपुराण : वेदव्यास प्रणीत, अनुवादक : तारणीश झा व घनश्याम त्रिपाठी, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1998 ई., गीताप्रेस गोरखपुर से कल्याण के विशेषांक के रूप में भी प्रकाशित

अत्रिस्मृति : बीस स्मृतियाँ में सम्पादित, सम्पादक-अनुवादक : श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, वेदनगर, बरेली 1994 ई.

अथर्ववेद : अनुवादक : आचार्य श्रीरामशर्मा, गायत्री शक्तिपीठ, शान्तिकुंज, हरिद्वार 2000 ई.

अभिज्ञानशाकुन्तलम् : कालिदासकृत, सम्पादक : एम. आर. काले, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, दशम संस्करण 1980 ई.

अमरसार : जीवन्धर कृत : सम्पादक-अनुवादक : भानुकुमार शास्त्री, अंकुर प्रकाशन, उदयपुर, 2009 ई.

अर्थशास्त्र : चाणक्यकृत, मूलाक्षराटीका : टी. गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरिज, त्रिवेन्द्रम, 1924 ई., सम्पादक : आर. पी. कांगले, बॉम्बे विश्वविद्यालय, मुम्बई, 1960 ई.

ऋग्वेद : अनुवादक : श्रीरामशर्मा, गायत्री शक्तिपीठ, हरिद्वार 2000 ई.

एकलिङ्गपुराण : सम्पादक-अनुवादक : श्रीकृष्ण जुगनू एवं भँवर शर्मा, आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली, 2010 ई.

काश्यपीयकृषिसूक्ति : काश्यप मुनि कृत, सम्पादक : जी. वोयतिला, अंग्रेजी अनुवाद-ए संस्कृत वर्क ऑन एग्रीकल्चर-2, ऑक्टा ऑरियण्टालिया, एकेडमी साइंटिएरम, हंगारिया 1979 ई., तथा एस. एम. अयाचित कृत अंग्रेजी अनुवाद : एग्री हिस्ट्री बुलेटिन 4, एशियन एग्री-हिस्ट्री फाउण्डेशन, सिकन्दराबाद, 2002 ई.

कृत्यकल्पतरु (दानकाण्ड) : भट्टश्रीलक्ष्मीधर कृत, सम्पादक : के. वी. रंगास्वामी अयंगार, बड़ौदा ऑरियण्टल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा, 1941 ई.

कृषिपराशर : पराशर मुनि प्रणीत, सम्पादक : प्रो. गिरिजाप्रसन्न मजूमदार,

सुरेशचन्द्र बनर्जी, द एशियाटिक सोसायटी, कोलकाता, 1960 ई., अनुवादक : चौधरी नारायणसिंह, जयभारत प्रेस बनारस, 1971 ई.

कौतुकचिन्तामणि : राजा प्रतापरुद्रदेव कृत, पी. के. गोडे कृत स्टडीज इन इण्डियन कल्चरल हिस्ट्री (खण्ड द्वितीय), पुणे, 1960 ई. में उल्लिखित

गर्गसंहिता : सम्पादक : देवीसहाय शर्मा, खेमराज श्रीकृष्णदास, मुंबई, संस्करण वि. सं. 2064

गुरुसंहिता : सम्पादक : प्रो. लल्लनजी गोपाल, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस, 1981 ई.

ज्ञानप्रकाश दीपार्णव : विश्वकर्मा कृत, सम्पादक : प्रभाशंकर ओघड़भाई सोमपुरा, पालीताणा, 1964 ई., पुनर्सम्पाद एवं हिन्दी अनुवाद : डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', शीघ्र प्रकाश्य

ज्योतिर्निबन्ध : शूरमहाठश्रीशिवराज विनिर्मित, संशोधक : रङ्गनाथ शास्त्री व विनायक गणेश आप्टे, आनन्द आश्रम संस्कृत ग्रन्थावलि क्रम 85, 1919 ई.

ज्योतिषरत्नमाला : श्रीपतिभटाचार्यकृत, सम्पादक-अनुवादक : डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2004 ई.

ज्योतिषवृत्तशतम् : महेश्वरोपाध्याय कृत, सम्पादक अनुवादक : डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, 2011 ई.

ताम्बूलमञ्जरी : अज्ञातकर्तृक, सम्पादक : द्वारकाप्रसाद शास्त्री, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 2009 ई.

देवतामूर्तिप्रकरणम् : सूत्रधार मण्डन, सम्पादक- श्रीकृष्ण 'जुगनू', न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन, चन्द्रावल दिल्ली, 2003 ई. परिशिष्ट में रूपमण्डनम्।

देवीपुराणम् : वेदव्यास प्रणीत, बांग्लाभाषा के पाठाधार पर पुनर्सम्पादित, सम्पादक : प्रो. पुष्पेन्द्रकुमार, लाल बहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली, संस्करण 2008 ई., कृत्यकल्पतरु इत्यादि ग्रन्थों में विद्यमान विविध उद्धरण

नारदीय-मनुस्मृति : (सभाष्य) सम्पादक : टी. गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरिज, त्रिवेन्द्रम, 1915 ई.

पद्मपुराणम् : मनसुखराय मोर सम्पादित, पुनर्मुद्रण : चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, 2008 ई., संक्षिप्त अनुवाद, गीताप्रेस गोरखपुर, कल्याण के वर्ष 19 का विशेषाङ्क 1945 ई.,

बृहत्संहिता : वराहमिहिर कृत, भट्टोत्पलीयविवृति सम्पादक : पं. सुधाकर

द्विवेदी, पुनर्संपादन : कृष्णचन्द्र द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, बनारस, 1996, प्रथम सम्पादक : हेन्द्रिक कर्न, बनारस, 1865 ई., अंग्रेजी अनुवाद : एन. सी. अय्यर, सम्पादक : डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2013 ई.

बृहत्पराशरसंहिता : पराशर प्रणीत (माधवीय व्याख्या सहित) : बॉम्बे संस्कृत सीरिज, मुम्बई, सानुवाद : चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, 2011 ई.

बौधायनस्मृति : बीस स्मृतियाँ में सम्पादित, सम्पादक : श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, वेदनगर, बरेली 1994 ई.

ब्रह्मवैवर्तपुराण : अनुवादक : पं. श्रीरामनारायणदत्त शास्त्री 'राम' एवं रामाधार शुक्ल गीताप्रेस गोरखपुर, कल्याण के वर्ष 37 का विशेषाङ्क 1963 ई., मूलपाठ सहित अनुवाद : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, 1998 ई.

मनुस्मृति : मनु प्रणीत, कुल्लूकभट्ट प्रणीत मन्वर्थ मुक्तावली टीका, सम्पादक : हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, संस्करण 1960 ई.

मयमतम् : मयकृत, सम्पादक-अनुवादक : श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, 2008 ई.

महाभारत : वेद व्यास प्रणीत, गीताप्रेस गोरखपुर वि. सं. 2025 तृतीय संस्करण एवं पी. सी. राय सम्पादित, कलकत्ता 1881 ई.

महाभाष्य : महर्षि पतञ्जलि कृत, सम्पादक-कीलहॉर्न, भाग 2-3

मुहूर्तचिन्तामणि : रामदैवज्ञ कृत, पीयूषधाराटीका : गोविन्ददैवज्ञ, सम्पादक : केदारदत्त जोशी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पुनर्मुद्रित संस्करण 1995 ई.

मुहूर्तकल्पद्रुम : विट्ठल दीक्षितकृत, सम्पादक-अनुवादक : डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2008 ई.

याज्ञवल्क्यस्मृति : व्याख्याकार : उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी 1967 ई. तथा विज्ञानेश्वरकृत मिताक्षरा व्याख्या और हिन्दी टीका पं. दुर्गाधर झा, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2002 ई.

राजमार्तण्ड : राजा भोजकृत, सम्पादक-अनुवादक : श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, 2008 ई.

राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् : सूत्रधार मण्डन, सम्पादक-अनुवाद : श्रीकृष्ण जुगनू, परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2004 ई.

लीलावती : भास्कराचार्य कृत, सम्पादक-अनुवादक : सीताराम झा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2000 ई.

वशिष्ठसंहिता : वृद्धवशिष्ठकृत, खेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, मुम्बई, 1915 ई.

वायुपुराण : वेदव्यास प्रणीत, अनुवादक : रामप्रताप त्रिपाठी : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1987 ई.

वास्तुमण्डनम् : सूत्रधार मण्डन कृत, सम्पादक-अनुवादक : डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2008 ई.

वास्तुरत्नावली : जीवनाथ दैवज्ञ कृत, सम्पादक-अनुवादक : डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्भा ऑरियण्टालिया, दिल्ली, 2008 ई.

विश्ववल्लभ-वृक्षायुर्वेद : चक्रपाणि मिश्र कृत, सम्पादक : डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन, दिल्ली, 2004 ई.

विष्णुपुराण : पराशर मुनि विरचित, अनुवादक : मुनिलाल गुप्त, गीताप्रेस गोरखपुर, बीसवाँ संस्करण 1998 ई., आलोचनात्मक पाठ : बड़ौदा ऑरियण्टल इंस्टीट्यूट, वडोदरा, संस्करण 2004 ई.

विष्णुधर्मोत्तरपुराण : कृष्णद्वैपायन व्यास कृत, सम्पादक : पण्डित मधुसूदन माधवप्रसाद शर्मा, खेमराजकृष्णदास, वैंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई 1911-12 ई., पुनर्सम्पादन एवं अनुवाद : डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' एवं प्रो. भँवर शर्मा (शीघ्र प्रकाश्य)

वृक्षायुर्वेद : सुरपाल कृत, सम्पादक-अनुवादक : श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, 2004 ई.

शारदातिलकम् : लक्ष्मण देशिकेन्द्र विरचित, राघवभट्ट कृत पदार्थादर्श टीका, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2003 ई.

श्रीमद्भगवद्गीता : टीका : हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण 2003 ई.

शतपथब्राह्मण : माध्यन्दिन, लक्ष्मी वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस मुम्बई 1940 ई., हिन्दी अनुवाद : गङ्गाप्रसाद उपाध्याय, प्राचीन वैज्ञानिक अध्ययन अनुसन्धान संस्थान, दिल्ली 1967 ई. विज्ञानभाष्य पं. मोतीलाल शर्मा, श्रीबालचन्द्र यन्त्रालय, मानवाश्रम, दुर्गापुरा, जयपुर 1956 ई.

समराङ्गणसूत्रधार : धाराधिप भोजदेवकृत, सम्पादक-अनुवादक : श्रीकृष्ण जुगनू, प्रो. भँवर शर्मा, चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, 2012 ई.

हरिवंश : वेदव्यास प्रणीत, टीकाकार : रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम', गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण 1999 ई.

निघण्टु, कोशादि ग्रन्थ

अमरकोश : अमरसिंह कृत, अपरनाम नामलिङ्गानुशासनम्, टीकाकार : पण्डित रामस्वरूप भोलानाथ गौड़, खेमराज श्रीकृष्णदास, मुम्बई, 1952 ई.

भावप्रकाशनिघण्टु : भावमिश्रकृत, सम्पादक-अनुवादक : प्रो. कृष्णचन्द्र चुनेकर, चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी, 2010 ई.

वनौषधि कोश (गुजराती) : केशवराम कांशीराम शास्त्री, प्राच्यविद्या मन्दिर, महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा, 1982 ई.

शब्दकल्पद्रुम : स्यार राजा राधाकान्तदेव कृत, सम्पादक : वरदाप्रसाद हरिचरण, 71 पाथुरियाघाटा स्ट्रीट, कोलकाता, शक 1808, पुनर्मुद्रण- राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली 1987 ई.

अन्य हिन्दी व अंग्रेजी ग्रन्थ

द लाईफ ऑफ ग्रीस : विल डूईरां, न्यूयार्क, 1939 ई.

टुवर्ड्स एन एन्थ्रोपॉलोजी ऑफ वुमेन : रायना आर. राइटर सम्पादित, मन्थली रिव्यू प्रेस, न्यूमार्क, 1945 ई.

प्राचीन भारतीय लिपिमाला : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पुनर्संपादन : डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', जोधपुर, 2013 ई.

भारत के प्राचीन नगरों का पतन : डॉ. रामशरण शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996 ई.

महाराणा प्रताप का दरबारी पण्डित चक्रपाणि मिश्र और उसका साहित्यः सम्पादक : डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', महाराणा प्रताप स्मारक समिति, मोतीमगरी, उदयपुर, 2004 ई.

सोसायटी एण्ड कल्चर इन द नॉदर्न इण्डिया इन द ट्वेल्थ सेंच्युरी : बी. एन. एस. यादव, इलाहाबाद, 1973 ई.

हिस्ट्री ऑफ कृषिशास्त्र : प्रो. गाइल वोजतिला, एक्ता एण्टीक्यूआ एट आर्कियोलॉजीका, सप्लीमेन्ट 9, स्ज़ेग्ड, हंगारिया, 1999 ई.

हिस्ट्री ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी इन एन्शियण्ट इंडिया (वॉल्यू 3) : डॉ. देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय, के. एल. एम. (प्रा. लि.) गांगुली स्ट्रीट, कोलकाता, संस्करण 1996 ई.

*****

श्रीकृष्ण 'जुगनू'

राजस्थान के चित्तौड़गढ़ जिले के आकोला गाँव में 2 अक्टूबर, 1964 को संत-कवि मोहनलालजी चौहान के घर जन्म। हिन्दी, अंग्रेजी और इतिहास में स्नातकोत्तर। राजस्थान की हीड़ गाथाओं पर पीएच. डी., पत्रकारिता में पी. जी. डिप्लोमा, बी. एड. और श्रव्य-दृश्य मीडिया दक्ष। सम्पूर्ण शिक्षा स्वयंपाठी स्तर पर। इतिहास-पुरातत्त्व, शिल्प-स्थापत्य, कला, शिक्षा, धर्म और संस्कृति जैसे विषयों के अध्ययन-अध्यापन, अनुसन्धान और लेखन में गहरी रुचि। इन विषयों पर 1978 ई. से लेकर आज तक सात हजार से अधिक लेखों, शोधलेखों का देश-विदेश की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन। कई शिलालेखों का सम्पादन और अनुवाद। देश-विदेश के ग्रन्थ भण्डारों में मौजूद शताधिक भारतीय ज्ञान-विज्ञान की संस्कृत पाण्डुलिपियों का पाठ सम्पादन और अनुवाद। कई पुस्तकों पर विश्व विद्यालयों में शोधकार्य सम्पन्न। काव्यपाठ आदि का 1983 से आकाशवाणी और दूरदर्शन से प्रसारण।

प्रकाशित पुस्तकें (मौलिक) : भलाभाई-बुराभाई, लिछमी पण म्हारी लिछमण कार (राजस्थानी काव्य संग्रह), कला की कालकथा, मन्दिर श्रीअम्बामाताजी उदयपुर, मेवाड़ का प्रारम्भिक इतिहास, वास्तु एवं शिला चयन, महाराणा प्रताप का युग, राजस्थान की ऐतिहासिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, राजस्थान के प्राचीन अभिलेख, रिश्ते में औरत (कहानी संग्रह) इत्यादि।

सम्पादन और अनुवाद : महाराणा प्रताप का दरबारी पण्डित चक्रपाणि मिश्र और उसका साहित्य, ज्योतिष रत्नमाला, वृक्षायुर्वेद, मनुष्यालय चन्द्रिका वास्तुसार मण्डनम्, आयतत्त्वम्, चित्रलक्षणम्, राजवल्लभ वास्तुशास्त्रम्, प्रासाद मण्डनम्, देवता मूर्ति प्रकरणम्-रूप मण्डनम्, वास्तु मण्डनम्, वास्तु मञ्जरी, कलानिधि, वास्तूद्धार धोरणी, मुहूर्त कल्पद्रुम, मुहूर्त दीपक, शिल्प शास्त्रम्, वास्तु विद्या, प्रमाण मञ्जरी, मयमतम्, शिल्पशास्त्रे आयुर्वेद, ज्योतिष वृत्तशतम् , योगगीता, कला विलास, विवेक विलास, वास्तु रत्नावली, एकलिङ्ग पुराण, अपराजित पृच्छा, राजमार्तण्ड, राजमृगांक, समराङ्गण सूत्रधार, बृहत्संहिता, आत्रेय तिलक इत्यादि 80 पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान : राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर से नवोदित प्रतिभा प्रोत्साहन पुरस्कार (1982 ई.), साहित्य मण्डल नाथद्वारा से हिंदी सेवी सम्मान (2003 ई.), महाराणा मेवाड़ फाउण्डेशन, उदयपुर से महाराणा कुम्भा सम्मान (2008 ई.), मीरा स्मृति संस्थान, चित्तौड़गढ़ (2009 ई.), त्रिवेदी ब्राह्मण मेवाड़ा समाज संस्थान, बड़ौदा (2011 ई.), भारतीय भाषा संसद, कोलकाता और जय स्मिता वास्तु प्रतिष्ठान, गोवा (2012 ई.) आदि की ओर से सम्मान।

निवास : 40 राजश्री कॉलोनी, विनायकनगर, उदयपुर- 313001

skjugnu@gmail.com

लेखक की अन्य कृतियाँ

प्रमाणमञ्जरी। श्रीमत्रुकुलसूनुसूत्रधारमल्लविरचित (वास्तु-शिल्प-कार्यार्थ काष्ठ द्वार, स्तम्भ, छाद्यादि रचना विधि) सम्पादक एवं अनुवादक–डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' 120.00

(सचित्र) मयमतम्। वास्तुशास्त्रोपदेष्टा मयमुनि विरचितम्। मयशास्त्र, मयसंग्रह व मयदीपिका सहित। मूल एवं 'मोहनबोधिनी' हिन्दी टीका सहित। भारत का प्राचीन वास्तुशास्त्र जिसमें ग्राम, पुर आदि का निवेश, राजमहल प्रासाद, मंदिर निर्माण, जीर्णोद्धार तथा प्रतिमा-शास्त्र विधियों का विशद् विवेचन है। लेखक–डॉ. श्री कृष्ण 'जुगनू'। 1-2 भाग (सम्पूर्ण) 900.00

मनुष्यालयचन्द्रिका। श्रीमत्रीलकण्ठनमूसतविरचितः। (प्राचीन भारतीय वास्तु-शिल्पशास्त्र) भूमिका, समीक्षात्मक पाठ एवं सचित्र-सोदाहरण हिन्दी व्याख्या व्याख्या श्रीकृष्ण 'जुगनू' 175.00

वास्तुउद्धारधोरणी। मेटपाटेश्वरमहाराणारायमल्लाश्रितसूत्रधारगोविन्द विरचित (जीर्णदेवार्च्चालिङ्गपीठग्रहप्रासादतडागग्रामपुरादीनानुकर्म पद्धति) अनुरक्षणविधि की भारतीय परम्परा के विस्तृत अध्ययन सहित। सम्पादक एवं अनुवादक—डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' 150.00

वास्तुमञ्जरी (An Ancient Treatise on the Construction of House, Temple, Building & Iconography) सूत्रधारनाथेनविरचितम्। सान्वय 'मोहनबोधिनी' हिन्दी व्याख्या सहित। सम्पा. एवं व्या. डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' 250.00

वास्तुविद्या। श्री के. महादेवशास्त्रिणा प्रणीतया लघुविवृत्याख्यव्याख्यया समलंकृतः स च 'मोहनबोधिनी' हिन्दी टीकोपेतः। सम्पादकोनुवादकश्च डॉ० श्रीकृष्ण 'जुगनू' 225.00

शिल्पदीपकः (An Ancient Treatise on Architecture) सूत्रधार श्रीगंगाधरसंग्रहीताः (गृहहर्म्यादिनिर्माणविषयकवास्तु शास्त्रान्तर्गतम्) हिन्दी व्याख्या विभूषित। सम्पादकोनुवादकश्च— डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' 125.00

शिल्पशास्त्र। ओड्सूत्रधारबदरीमहाराणाविरचितः विश्वकर्मीय। भवनस्थापत्य विषयक प्राचीन वास्तुग्रन्थ हिन्दी टीका सहित। श्री कृष्ण 'जुगनू' 75.00

शिल्पशास्त्रे आयुर्वेदः भूलोक मल्लसोमेश्वरकृता-भिलषितार्थ चिन्तामण्यान्तर्गते (स च धातुवादरसायनरत्नशास्त्रश्च) संग्रहयोग्य औषधिप्रमाण, पुराणोक्त निघण्टु और पर्यायवाची सहित सम्पादक एवं अनुवादक—डॉ० श्रीकृष्ण 'जुगनु', प्रो० बी. एल. शर्मा 115.00

समराङ्गणसूत्रधार-बृहच्छिल्पस्थापत्यशास्त्र। श्रीभोजदेवविरचित। 'मोहनबोधिनी' हिन्दी अनुवाद सहित। संपा. + अनु. श्रीकृष्ण 'जुगनू' सम्पूर्ण (1-2 भाग) 2000.00

ज्योतिषवृत्तशतम्। श्रीमहेश्वरोपाध्यायविरचितं। प्रयोजनं तु शुभाशुभनिरूपण ग्रहणग्रहसंक्रान्ति-यज्ञाध्ययनकर्मणां संस्कारविवाहयात्रा वास्तुकालादीनां निर्णय शास्त्रं स च 'मोहनबोधिनी'ख्य हिन्दी टीकोपेतम्। सम्पादकोनुवादकश्च डॉ. श्री कृष्ण 'जुगनू' **H.B.**175.00, **P.B.** 85.00

मुहूर्तदीपकः। दैवज्ञ श्रीमहादेवभट्टविरचितः स्वोपज्ञ संस्कृत टीका एवं 'मोहनबोधिनी' हिन्दी टीका सहित। सम्पादक एवं व्याख्याकार डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनु' 75.00

मुहूर्ततत्त्वम्। श्रीकेशव दैवज्ञ विरचितः। हिन्दी टीकोपेतः। (स च विशेष मोहनबोधिनीख्य व्याख्यया समलङ्कृतः) सम्पादकोनुवादकश्च डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' 250.00

राजमार्तण्डः स च राजमृगाङ्ककरणः। श्रीभोजराजविरचितः। ज्योतिष-धर्मशास्त्रीय महाग्रन्थ। मूलपाठ पाठान्तर टिप्पणियों एवं हिन्दी व्याख्या सहित। सम्पादकोनुवादकश्च डॉ. श्री कृष्ण 'जुगनू', प्रो. भंवर शर्मा **H.B.** 400.00, **P.B.** 275.00

Also can be had from : **Chowkhamba Krishnadas Academy, Varanasi.**

ISBN : 978-81-7080-400-0 ₹ 275.00